मैथिली लोकगीतों का अध्ययन

मैथिली लोकगीतों का अध्ययन

नागपुर विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच० डी०

उपाधि के लिए स्वीकृत

शोध-प्रबन्ध

लेखक

डा० तेज नारायण लाल, शास्त्री,

एम० ए०, एल० टी०, पी-एच० डी०

प्रवक्ता : केन्द्रीय हिन्दी शिक्षक महाविद्यालय, आगरा

विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा

प्रकाशक :

राजकिशोर अग्रवाल

विनोद पुस्तक मन्दिर

हॉस्पिटल रोड, आगरा

प्रथम संस्करण

सन्-१९६२

मूल्य १०.००

मुद्रक :

जिनेन्द्रकुमार जैन

जनता प्रेस, आगरा

परलोकवासी
माता-पिता
को
पुनीत
स्मृति
को ·····

भूमिका

डा० तेज नारायण लाल का यह ग्रंथ—'मैथिली लोकगीतों का अध्ययन' पी-एच० डी० के लिए नागपुर विश्वविद्यालय द्वारा स्वीकृत शोध-प्रबन्ध है। कई वर्षों से हम इसके प्रकाशन की बाट जोह रहे थे। आज वह सौभाग्य प्राप्त हुआ है कि यह ग्रंथ हम मुद्रित रूप में देख सके हैं।

डा० लाल परिश्रमी व्यक्ति हैं। मैथिली लोकगीतों का आपने घूम-घूम कर संग्रह किया है। आपने अपने प्राक्कथन में लिखा है कि "मैथिली लोक गीतों का वैज्ञानिक अध्ययन न हो सका और इसके बिना मिथिला के मर्म की परख भली भाँति नहीं की जा सकती। यह अभाव मेरे मन में निरन्तर खटक रहा था। इसके परिणाम स्वरूप, पिछली एक दशाब्दी के अन्तर्गत मैंने पर्याप्त मैथिली लोकगीतों का संकलन किया है...." आदि। इससे स्पष्ट है कि डा० लाल ने परिश्रम पूर्वक गीतों का संकलन ही नहीं किया है, उनका अध्ययन भी किया है।

आज दिन यह बताने की आवश्यकता नहीं कि लोकगीतों के संकलन का महत्त्व ही बहुत है, लोक साहित्य और लोकवार्त्ता की सामग्री का संकलन वैज्ञानिक विधि से करने की महती आवश्यकता है। इन संकलनों को ऐसे लोक वार्त्ता विषयक संग्रहालयों में रखना चाहिए जिनमें उन्हें व्यवस्था पूर्वक वर्गीकृत करके सुरक्षित किया गया हो। भारत के गाँव-गाँव से लोकसाहित्य विषयक सामग्री का पूर्ण संग्रह हो जाना चाहिए। यह समस्त लोकसाहित्य अब केवल लेखनी द्वारा ही अंकित करके नहीं रखना होगा, इसे टेपों पर वास्तविक लोक-वाणी में अंकित करके सुरक्षित करने की बड़ी आवश्यकता है। हमारा देश जैसे और बहुत-सी बातों में पिछड़ा हुआ है, वैसे ही इस वैज्ञानिक दिशा में भी पिछड़ा हुआ है। आज भारत के किसी भी विश्वविद्यालय में लोकवार्त्ता स्वतन्त्र रूपेण पाठ्य विषय नहीं। इसका कहीं भी एक व्यवस्थित संग्रहालय नहीं। ऐसे व्यवस्थित संग्रहालयों के अभाव में व्यक्तिगत उद्योगों का मूल्य और भी अधिक बढ़ जाता है। डा० लाल का यह प्रयत्न इसीलिए बहुत अभिनन्दनीय है।

इस पर डा० लाल ने तो इसे हमें वैज्ञानिक प्रक्रिया से एक अध्ययन में भी ढाला है, इससे हम केवल मैथिली गीतों से ही परिचित होकर नहीं रह जाते, उनमें व्याप्त लोक-मर्म का भी हृदयंगम कर सकते हैं।

मैथिली के लोक-मर्म को समझने का जो प्रयत्न इस ग्रंथ के द्वारा डा० लाल ने किया है वह इसलिए भी और महत्त्वपूर्ण है कि मैथिली साहित्यिक दृष्टि से भी एक सम्पन्न परम्परा का वहन करती रही है। मैथिली की प्रतिभा ने दूर-दूर तक अपना प्रभाव जमाया है। उस प्रभाव में लोक-मर्म भी तो निरन्तर विद्यमान रहा है। अतः काव्य-मर्म के सम्यक आनन्द को ग्रहण करने के लिए मैथिली के लोक-मर्म के ज्ञान से निश्चय ही शुभ सहायता मिलेगी।

यह तो इस ग्रंथ के अवलोकन से भली भाँति प्रकट होता है कि लेखक ने मैथिली के लोकगीतों के सभी प्रकारों को ले लिया है और उनकी अपेक्षित व्याख्या भी की है, लोकगीतों की पृष्ठभूमि पर भी पूरी तरह प्रकाश डाला है, उनमें अभिव्यक्त विविध मनोस्थितियों का भी स्पष्टीकरण किया है। इस प्रकार लेखक ने सब प्रकार से अपने ग्रंथ को पठनीय बनाने का प्रयत्न किया है। अपने पांडित्य की छाप भी बिठाने में वह चूका नहीं।

लोक साहित्य विषयक कितने ही अध्ययन हिन्दी में आज प्रस्तुत किये गये हैं, उनमें यह एक और अध्ययन हमारे समक्ष है। मुझे पूर्ण आशा है कि इसका यथोचित स्वागत होगा।

सत्येन्द्र
एम०ए०, पी-एच० डी०, डी० लिट्०
कार्यवाहक संचालक
क० मुं० हिन्दी तथा भाषा विज्ञान विद्यापीठ
आगरा विश्वविद्यालय

आगरा
२७ मार्च १९६२ ई०

प्राक्कथन

मैथिली लोक-साहित्य में मिथिला का सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन ओत-प्रोत है। उसमें मिथिला के लोक-जीवन के सुख-दुःख के भावोद्गार हैं। गीत, काव्य, कथा-गीत, कथा, कहावत, मुहावरा, पहेली आदि उसके विविध अंग हैं। यद्यपि वे अपने आप में पूर्ण हैं और उनका भी अध्ययन-विश्लेषण करना अति आवश्यक है। फिर भी प्रस्तुत शोध-प्रबंध में (थीसिस) उनमें से केवल मैथिली लोकगीतों को ही शोध का विषय चुना गया है। इसमें उनके आधार पर मिथिला के सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन की गतिविधियों का वैज्ञानिक अध्ययन करना ही अभिप्रेत है।

सर्वप्रथम सर जार्ज ग्रियर्सन ने मैथिली लोकगीतों का संकलन-सम्पादन किया था और उन्होंने उनकी विशेषताओं की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट किया था। तत्पश्चात् श्री रामइकबाल सिह 'राकेश' ने मैथिली लोकगीतों का संकलन किया और उनकी पुस्तक—'मैथिली लोकगीत' हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग द्वारा संवत् १९९९ में प्रकाशित की गयी थी। उन्होंने मैथिली लोकगीतों का सामान्य परिचय देते हुए उनके भावों की मार्मिकता पर प्रकाश डाला था।

कालान्तर में डा० जयकान्त मिश्र ने सन् १९५० ई० में दो भागों में (पद्य तथा गद्य) 'इण्ट्रोडक्शन टु दी फोक लिटरेचर ऑफ मिथिला' पुस्तिका प्रयाग विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित करायी थीं। उनमें उन्होंने मुद्रित एवं अमुद्रित मैथिली लोक-साहित्य की सामग्री के आधार पर वैज्ञानिक अध्ययन की ओर संकेत किया था। तात्पर्य यह कि अभी तक मैथिली लोक-साहित्य का यत्किंचित् संकलन एवं सम्पादन तो हुआ, किन्तु उसके लोकगीतों का वैज्ञानिक अध्ययन न हो सका और इसके बिना मिथिला के मर्म की परख भली भाँति नहीं की जा सकती। यह अभाव मेरे मन में निरन्तर खटक रहा था। इसके परिणाम-स्वरूप, पिछली एक दशाब्दी के अन्तर्गत मैंने पर्याप्त मैथिली लोकगीतों

का संकलन किया है और इसी संकलन में से बहत्तर प्रकार के उन मैथिली लोकगीतों को परिशिष्ट में स्थान दिया है जो मिथिला में अति प्रचलित और उपयोगी हैं।

सर्वांगीण वैज्ञानिक अध्ययन की व्यापकता की दृष्टि से इस शोध-प्रबन्ध में कुछ मुद्रित मैथिली लोकगीतों का भी उपयोग किया गया है और उनका उल्लेख यथास्थान कर दिया गया है। जहाँ पर कोई संकेत-चिह्न नहीं अंकित किये गये हैं वहाँ पर मैंने अपना संकलन प्रस्तुत किया है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध आठ अध्यायों में विभक्त है। स्पष्ट है कि मानव-जीवन और साहित्य से लोकगीतों का गहरा सम्बन्ध है। अतः इस शोध-प्रबन्ध के पहले अध्याय में आदि मानव के अस्तित्व की तार्किक विवेचना करते हुए जीवन और साहित्य की उपादेयता पर किंचित विचार किया गया है। साहित्य में किसी देश की संस्कृति प्रतिबिंबित होती है। इसी दृष्टि से भारतीय संस्कृति की प्राचीनता और विशिष्टता दर्शाते हुए मैथिली संस्कृति की परम्परा पर भी प्रकाश डाला गया है।

मैथिली लोकगीतों के वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करने से पूर्व मुझे यह आवश्यक प्रतीत हुआ कि लोकगीतों के स्वरूप और उनकी परिभाषा, उनके लक्षण, उप-लक्षण पर भी इस अध्याय में विचार प्रगट करना वांछनीय है। अतः इस सम्बन्ध में भी थोड़ा विवेचन किया गया है। इसमें मुझे वैदिक तथा वैदिकोत्तर साहित्य में लोकगीतों के संकेत को समझने में बल मिल सका है और मैथिली लोकगीतों की परम्परा भी इससे भली भाँति प्रमाणित हो सकी है।

अभी तक अँगरेजी, हिन्दी तथा अन्य प्रादेशिक भाषाओं के विद्वानों ने जो लोक-साहित्य संकलित एवं सम्पादित किये हैं और उनका जो वैज्ञानिक अध्ययन किया गया है, उनका भी क्रमिक विवरण दे दिया गया है और मैथिली लोकगीतों के प्रकाशित तथा अप्रकाशित संकलन का भी उल्लेख किया गया है। इस अध्याय के अन्त में यह भी स्पष्ट कर दिया गया है कि साहित्य में लोकगीतों का विशिष्ट स्थान है और वे मानव-जीवन के अति निकट हैं।

दूसरे अध्याय में मिथिला की प्राचीन सांस्कृतिक परम्परा का परिचय देते हुए उसकी भाषा तथा भौगोलिक सीमा का संकेत किया गया है और मैथिली पर उसकी पड़ोसी भाषाओं का जो प्रभाव पड़ा है, उसकी भी विवेचना की गयी है। मैथिली भाषा का वर्गीकरण कर पूर्वी और

पश्चिमी मैथिली में जो भेद और समानताएँ हैं उनका भी स्पष्टीकरण किया गया है। उनके आधार पर मैथिली लोकगीतों की भाषा की विभिन्नता की परख करने में सरलता हो सकती है और विषय-प्रतिपादन भी उचित ढंग से किया जा सकता है।

तीसरे अध्याय में यह अभिप्राय व्यक्त करने का प्रयत्न किया गया है कि मैथिली संस्कृति की मूल प्रेरणाएँ क्या हैं ? मैथिली लोकगीतों में किस प्रकार धार्मिक आदर्श भरे हुए हैं और उनमें तन्त्र-मन्त्र, जादू-टोना अन्ध विश्वास किस प्रकार पाये जाते हैं ? इनके अतिरिक्त यह भी विचार किया गया है कि मैथिली लोकगीतों में शैव, शाक्त और वैष्णव उपासना के भावों की अभिव्यंजना किस प्रकार की गयी है और मिथिला का लोक-जीवन आज उनसे कितना अनुप्राणित है।

इस अध्याय में वैज्ञानिक प्रणाली से मैथिली लोकगीतों का वर्गीकरण किया गया है जिसके द्वारा मिथिला के लोक जीवन के प्रायः सभी पक्षों का मूल्यांकन तथा पुष्टीकरण हो सकता है। जितने भी मैथिली लोकगीत परिशिष्ट में दिये गये हैं उनका सामान्य परिचय भी इस अध्याय में दे दिया गया है। मैथिली लोकगीतों के सामान्य परिचय में यह दिखलाने का प्रयत्न किया गया है कि प्रत्येक लोकगीत किस अवसर पर मिथिला में गाया जाता है और लोक-जीवन पर उसका क्या प्रभाव पड़ा है और वह कितना प्रचलित है। उसके लोकगीतकार मुख्यतया कौन-कौन हैं। उसके गाने की टेक क्या है और उसमें प्राचीनता के लक्षण हैं या आधुनिकता के निर्देश !

इस अध्याय के अन्त में यह भी लिखा गया है कि मिथिला की लोक-कला आज किस रूप में विद्यमान है और उनकी प्रगति किस प्रकार हो रही है ? इस के साथ ही साथ यह भी उल्लेख कर दिया गया है कि मिथिला में प्रायः कितने प्रकार के ताल तथा वाद्य हैं और उनमें से कौन-कौन से मैथिली लोकगीतों के गाने में प्रयुक्त किये जाते हैं और ये ताल तथा वाद्य किस प्रकार मैथिली लोकगीतों के संगीत की शक्ति को बढ़ा देते हैं, उन्हें प्रभावशाली बना देते हैं।

मिथिला में मैथिली लोकगीत गाने वाली कुछ पेशेवर जातियाँ भी बसी हुई हैं, जिनका धँधा है—लोकगीतों को गा-गाकर जीवन-निर्वाह करना। उनका भी संक्षिप्त परिचय दे दिया गया है। इस अध्याय में मैथिली लोकगीतों के उद्धरणों द्वारा मिथिला के लोक जीवन की मनोवृत्तियों का विश्लेषण किया गया है।

मैथिली लोकगीतों की अपनी विशिष्टता क्या है, उनमें सार्वभौमिकता कहाँ तक है, और अन्य प्रांतीय भाषाओं के लोकगीतों से उनका कितना निकट सम्बन्ध है, इसका अध्ययन चौथे अध्याय में तुलनात्मक और समन्वयात्मक रूप से प्रस्तुत किया गया है। विषय प्रतिपादन और उसकी व्यापकता की दृष्टि से दक्षिण भारत की तमिल, तेलुगु, कन्नड़ तथा मलयालम भाषाओं के लोकगीतों के भी यत्किंचित उद्धरण दिये गये हैं, जिनसे भारतीय संस्कृति के मूलाधार को जानने में एक नया दृष्टिकोण मिल सकता है और यह भी विदित हो सकता है कि प्रत्येक प्रान्त के लोकगीतों में भाव-साम्य के द्वारा अपनत्व की कितनी शक्ति निहित है। इस तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर भारतीय समाज विभिन्न स्वरूपों में रहते हुए भी एक ही दिखलाई पड़ता है। ऐसा लगता है कि लोक-गीतों के मधुर भावों द्वारा समस्त भारत को एकता के सूत्र में बाँध दिया गया है। लोकगीतों में कितनी सर्वव्यापकता और स्वाभाविकता होती हैं, इस अध्याय में इनका स्पष्टीकरण किया गया है।

यों तो प्रत्येक लोकगीत का कोई न कोई मनोवैज्ञानिक आधार अवश्य होता है, लेकिन उसमें दार्शनिक भावों का भी नितान्त अभाव नहीं रहता। कहीं कहीं उसमें रहस्यात्मक ढंग से भी भावों की अभिव्यंजना होती है। अतः प्रस्तुत शोध-प्रबंध के पाँचवे अध्याय में मैथिली लोकगीतों में जो कहीं कहीं दार्शनिक मनोवैज्ञानिक और सामाजिक भावों का निरूपण किया गया है उनकी भी विवेचना की गयी है। इसके अतिरिक्त इसमें यह भी प्रमाणित किया गया है कि मैथिली लोकगीतों में सामाजिकता की दृष्टि से पशु-पक्षी, वृक्ष, फूल, फल आदि के क्या महत्व हैं और गीतों में संगीत के तत्त्व क्या हैं, गीतों के साथ नृत्य का क्या सम्बन्ध है।

छठे अध्याय में मैथिली काव्य-परम्परा का उल्लेख करते हुए यह स्थापना की गयी है कि मैथिली काव्यों के साथ मैथिली लोकगीतों का पारस्परिक सम्बन्ध है और मैथिली के कुछ कवि काव्यों के साथ लोकगीतों की भी रचना करते रहे हैं और उनके ऐसे लोकगीतों का प्रचार अधिक है। इसके ज्वलन्त प्रमाण हैं मिथिला में विद्यापति।

सातवें अध्याय में मैथिली लोकगीतों के कलापक्ष पर विचार किया गया है और कुछ गीतांशों के उद्धरणों द्वारा यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है कि कहीं कहीं अनायास ही किस प्रकार लोकगीतों की शैली में व्यंग्य-ध्वनि, लाक्षणिकता, अलंकार और रस का संचार हो गया है और उनमें कितनी सूक्ष्म

तथा हृदयस्पर्शी भावों की अभिव्यंजना हुई है और उनकी छन्द-योजना भी ताल, लय, गति की रक्षा करते हुए भावों को व्यक्त करने में उपयुक्त एवं सशक्त है।

आठवें अध्याय में उपसंहार लिखा गया है, जिसमें मैथिली लोकगीतों के अध्ययन के दृष्टिकोण पर प्रकाश डाला गया है, साथ ही मैथिली लोकगीतों के गुण-दोष की युक्तिसंगत विवेचना भी कर दी गयी है, ताकि अन्य शोधार्थियों के मन में स्पष्टता आ जाएगी और श्रद्धा जगेगी, और तभी वे लोकगीतों के संकलन एवं अध्ययन में सफल सिद्ध हो सकेंगे। मिथिला में नारी और पुरुष के गीतों में भी भिन्नता देखी जाती है। उनका भी मनोवैज्ञानिक ढंग से विश्लेषण एवं स्पष्टीकरण किया गया है।

मिथिला के लोकगीतकार दो प्रकार के हैं—एक तो लोकगीतों को रचने वाले है और दूसरे हैं उनका प्रचार करनेवाले। अतएव उनकी श्रेणियों के सम्बन्ध में भी विचार किया गया है। मैथिली साहित्य पर मैथिली लोकगीतों का जो प्रभाव पड़ा है उस सम्बन्ध में भी यत्किंचित संकेत किया गया है। मैथिली लोकगीतों का भाषा-विज्ञान की दृष्टि से बड़ा महत्त्व है और इससे राष्ट्र-भाषा हिन्दी के साहित्य-भंडार को भी भरा जा सकता है। इस सम्बन्ध में भी थोड़ी-सी चर्चा की गयी है।

गीतों के संकलन की प्रणाली पर भी मैंने अपना विचार व्यक्त किया है और संकलन के पहले संग्रहकर्त्ता के मन में लोकगीतों के प्रति श्रद्धा और उत्साह कैसे उत्पन्न हो सकते हैं, इनके सम्बन्ध में भी मैंने परामर्श दिया है। इस अध्याय के अन्त में, और भी लोकगीतों के शोध-कार्य सम्बन्धी क्या कार्य शेष रह गये हैं, इनका भी यथासम्भव उल्लेख कर दिया गया है, जिससे विभिन्न प्रदेश के लोकगीतों के संकलन में भी प्रेरणा मिल सकती है। मेरा अपना अनुभव यह बताता है कि लोकगीतों के संकलन का गुरुतर कार्य वैज्ञानिक पद्धति के द्वारा ही अच्छी तरह सम्पन्न हो सकता है।

इस शोध-प्रबन्ध के परिशिष्ट में विविध प्रकार के बहत्तर मैथिली लोकगीतों को स्थान दिया गया है। उनका संकलन वैज्ञानिक दृष्टिकोण से किया गया है और प्रायः उनमें कुछ गीत अमुद्रित हैं। परिशिष्ट के अन्त में हिन्दी और अँगरेजी के कुछ आवश्यक ग्रंथों की सूची भी दे दी गयी है। इन ग्रंथों के तात्त्विक विचारों के मनन के आधार पर इस शोध-प्रबन्ध का विषय प्रतिपादित एवं सम्पादित किया गया है। मैथिली लोकगीतों के वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करने का यह प्रथम प्रयास है। कदाचित् इसके द्वारा अन्य

भारतीय लोकगीतों के वैज्ञानिक अध्ययन में भी नया दृष्टिकोण प्राप्त हो सकता है, ऐसा मेरा विश्वास है।

स्पष्ट है कि मानव भिन्न-भिन्न भाषाओं, समाजों और संस्कृतियों में बाह्य रूप से विभाजित रहकर भी आन्तरिक रूप से एक ही भाव-सूत्र में बँधा है। तत्त्वतः मैथिली लोकगीतों के इस वैज्ञानिक अध्ययन से यह बात प्रमाणित हो सकती है कि सृष्टि में जहाँ कहीं मानव-समाज हैं, उनकी मानवता में कोई भिन्नता नहीं। सब के अन्तरतम में एक ही आत्मा बोल रही है। लोकगीतों की विशिष्टता यह है कि वे मानव के सामाजिक सुख-दुःख के भावों की अभिव्यंजना करते हैं। सर्वत्र मानव-जीवन एवं प्रकृति-सुषमा ही लोकगीतों की प्रेरणाओं के उत्स हैं। लोकगीत लोकजीवन के प्राण हैं और युगयुगीन चले आ रहे हैं। भावों की प्रवणता एवं उत्कृष्टता के कारण ये निरन्तर नूतन बने रहते हैं।

प्रत्येक लोकगीत के पीछे सामाजिक समस्याएँ छिपी रहती हैं और उनमें लोकजीवन की मनोवृत्तियाँ भी अभिव्यक्त होती हैं। लोकगीत एक कला है और सच्ची कला जीवन में आत्म-संयम प्रदान करती है। उसके विकारों को वह दूर करती है।

मिथिला की यह विशेषता है कि उसने मैथिली के लोकप्रिय कवियों की रचनाओं को भी अपने में आत्मसात कर लिया है और उनसे उसका लोक-जीवन प्रभावित है। इस शोध-प्रबन्ध में ऐसे लोकगीतों का भी अध्ययन किया गया है। इनके अतिरिक्त अबतक मैथिली लोकगीतों का जो संकलन हुआ है वह प्रायः उच्च और मध्य वर्गों में प्रचलित लोकगीतों का ही। निम्न वर्ग में जो प्रचलित लोकगीत हैं उनका संकलन अबतक प्रायः नहीं हुआ है। अतः ऐसे लोकगीतों के संकलन एवं अध्ययन की ओर भी मैंने विशेष रूप से ध्यान दिया है और उनका भी वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया है। और, यह कार्य तो मानो, मिट्टी को सोना बनाने जैसा है! निम्न वर्ग के लोकगीतों की भाषा न तो अलंकारिक होती है और न उसकी कोई विशिष्ट शैली ही होती है। उनके गीतों में स्वाभाविक रूप से रस की मात्रा अपेक्षाकृत अधिक होती है। मेरा विचार है कि ऐसे लोकगीतों के वैज्ञानिक अध्ययन से सामाजिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों के मूल्यांकन करने में अधिक सफलता और प्रमाणिकता उपलब्ध हो सकती है। मिथिला के ऐसे निम्न वर्ग के लोग आज भी पश्चिमी सभ्यता और शिक्षा से दूर हैं। उनके पास जो चीजें पहले

थीं वे अब भी विद्यमान हैं। ये मिथिला के समाज को अधिक से अधिक देते हैं, उससे लेने की कामना उन्होंने किंचित ही की है। ऐसे उपेक्षित वर्ग जो अपनी संस्कृति और सभ्यता को बनाये रखने में अद्यावधि दत्तचित्त रहे, और गीत गा-गा कर अपने दुःख और कुण्ठा को पीते रहे, उनके जीवन की दयनीय दशा पर किसी का भी ध्यान नहीं जा सका।

विगत चार शताब्दियों से भारतीय संस्कृति की उपेक्षा कम नहीं होती रही है। उस पर नाना प्रकार के प्रहार होते रहे हैं। भारत के आर्थिक और राजनैतिक विकास उसकी सांस्कृतिक आधार-शिला पर ही अवलम्बित हैं। भारतीय संस्कृति को प्रतिबिंबित करने वाले जो लोकगीत परम्परा से चले आ रहे हैं, उनका संकलन एवं वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करना राष्ट्र-हित की दृष्टि से समीचीन ही नहीं, अति आवश्यक है। लोक साहित्य के अध्ययन के बिना शिष्ट साहित्य का परिचय ठीक से नहीं मिल सकता। लोकसाहित्य का विकसित परिमार्जित संस्कृत रूप है शिष्ट साहित्य। अतीत की गौरव-गरिमा को विस्मृति के गर्त में डाल कर नवनिर्माण की योजना बनाना सार्थक प्रतीत नहीं होता।

मैथिली लोकगीतों के संकलन के सम्बन्ध में भी मुझे अपना अनुभव व्यक्त कर देना आवश्यक प्रतीत होता है। सर्वप्रथम मैंने अपनी माताजी के मुख से अनेकों प्रकार के मैथिली लोकगीतों को सुन-सुनकर उनके ही चरणों में बैठ कर लिखा है। आज माता जी की मेरे मन में केवल पुण्य स्मृतियाँ ही शेष रह गयी हैं। बहेड़ा के डा० ब्रजकिशोर वर्मा ने मुझे लोरिक के कथा-गीत का संकलन देखने को दिया और संकलन सम्बन्धी अनुभव की बातें भी बतायीं। रोसड़ा के मेरे गुरुजी प्रो० बलदेव नारायण जी ने मुसहरों के गीतों को संकलन करने की मुझे प्रेरणा प्रदान की। विशेषतया उन्होंने रन्नू सरदार के कथा गीत के सम्बन्ध में कुछ बतलाया था।

अपने इस शोध-कार्य को पूरा करने में मुझे जिन महानुभावों से पूर्ण प्रेरणा एवं सहायता प्राप्त हुई, उनमें से सर्वप्रथम स्थान मेरे गुरुदेव डा० विश्वनाथ प्रसाद जी और डा० हीरालाल जी जैन का है। मैंने आप दोनों के तत्त्वावधान में रह कर ही इस कार्य को पूर्ण किया है। आप दोनोंने मेरे अध्ययन-मनन का मार्ग-निर्देश ही नहीं किया है, बल्कि सभी प्रकार की सहायता एवं सुविधाएँ प्रदान करने की भी अनुकम्पा की है। इस शोध-कार्य को पूरा करने में समय-समय पर जो जो कठिनाइयाँ मेरे सामने आयी हैं, उनको दूर कर अपने सत्परामर्श द्वारा मार्ग-निर्देश करने में आप दोनों ने जो मेरी सहायता की है उसके लिए मैं आप दोनों के प्रति कृतज्ञता अर्पित करता हूँ।

आप दोनों के अतिरिक्त मिथिला के जिन विद्वानों ने इस शोध-कार्य में मेरी सहायता की है, उनमें से प्रमुख स्थान हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि और मैथिली लोक-गीत के सम्पादक श्री रामइकबाल सिंह 'राकेश' का है, जिनके पास सन् १९५५ ई० में उनके गाँव भदई (मुजफ्फरपुर, बिहार) पहुँच कर मुझे मैथिली लोकगीतों के संकलन एवं अध्ययन करने का बल और उत्साह प्राप्त हुआ। अतः आपके प्रति भी हृदय से आभार प्रकट करता हूँ। इसके साथ ही साथ मिथिला के अन्य साहित्यकारों में से डा० सुधाकर झा, डा० जयकान्त मिश्र, श्री भोलालाल दास और श्री उदित नारायण दास के प्रति मैं अतिशय कृतज्ञ हूँ। आप सबने मुझे मैथिली लोकगीतों के संकलन करने में दिशा-दर्शन कराया है। इनके अतिरिक्त हिन्दी जगत के प्रसिद्ध साहित्यकार डा० विनयमोहन शर्मा, डा० रामविलास शर्मा, डा० रामनिरंजन पाण्डेय, श्री मुनीन्द्र ने मुझे इस शोध-कार्य के करने में समय-समय पर अमूल्य सम्मतियाँ दी हैं, जिनका मैं बड़ा ही आभारी हूँ। डा० सत्येन्द्र जी ने इस पुस्तक की भूमिका लिखने की कृपा करके मुझे प्रोत्साहित किया है। मैं उनके इस स्नेह को किन शब्दों में व्यक्त करूँ।

उपर्युक्त महानुभावों के अतिरिक्त मिथिला रिसर्च इन्स्टीट्यूट, दरभंगा, नागपुर विश्वविद्यालय लाइब्रेरी, नागपुर, दी नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता, कनम्बरा लाइब्रेरी, मद्रास, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा पुस्तकालय, मद्रास, स्टेट सेण्ट्रल लाइब्रेरी, हैदराबाद, पटना विश्वविद्यालय लाइब्रेरी, पटना, काशी विद्यापीठ, भगवानदास पुस्तकालय, वाराणसी; केन्द्रीय हिन्दी शिक्षणमण्डल पुस्तकालय आगरा, आगरा विश्वविद्यालय क० मुं० हिन्दी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ, पुस्तकालय आगरा, आदि के अधिकारियों ने अपने अपने पुस्तकालयों से उपयोगी सामग्री देखने की सुविधाएँ प्रदान करके इस शोध-कार्य में मेरी सहायता की है।

श्री राजकिशोर अग्रवाल और श्री भोलानाथ अग्रवाल ने इस शोध-प्रबन्ध को प्रकाशित करने का जो कष्ट उठाया है इसके लिए मैं उनके प्रति बड़ा ही उपकृत हूँ।

अन्त में मैं उन सभी गुरुजनों का हृदय से आभारी हूँ जिनकी अनेकों प्रकार की सहायताएँ मुझे प्राप्त हुई हैं और जिनकी मंगल कामनाओं से मेरा यह शोध-कार्य पूरा हुआ है।

मोती भवन
१८५, उत्तर विजय नगर कॉलोनी
आगरा (उ० प्र०) २० मार्च' ६२

—तेज नारायण लाल

विषय-सूची

दूसरा अध्याय

तीसरा अध्याय

पाँचवाँ अध्याय

छठा अध्याय

सातवाँ अध्याय

आठवाँ अध्याय

परिशिष्ट—१

परिशिष्ट--२

पहला अध्याय

उपोद्घात

मानव-जीवन और साहित्य में लोकगीतों का स्थान

१

उपोद्घात

मानव-जीवन और साहित्य में लोकगीतों का स्थान

मैथिली लोकगीतों के अध्ययन के पूर्व मानव-जीवन के अस्तित्व और उसके विकास पर थोड़ा-सा प्रकाश डालना अति आवश्यक प्रतीत होता है, क्योंकि मानव-जीवन के बिना न तो किसी भाषा का जन्म होता है, न उसमें लोकगीत रचे जाते हैं, और न उसमें संस्कृति ही झलक सकती है। अतः प्रस्तुत विषय की स्पष्टता की दृष्टि से मानव-जीवन के महत्व पर यत्किंचित् विवेचन किया जा रहा है। वह यह कि आदिकाल से ही मानव अपनी प्रत्येक क्रिया में अपने आपको अभिव्यक्त करता आ रहा है। उसने अपने जीवन का विकास मनन एवं अनुकरण के द्वारा किया है। उसका मानसिक विकास उत्तरोत्तर होता ही रहता है। उसका आन्तरिक जगत बाह्य जगत की अपेक्षा सूक्ष्म है।

चिन्तन करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि आदि मानव ने सर्वप्रथम अपने रूप को निहारा और उसी के माध्यम से पदार्थों को जानने का प्रयत्न किया। इस प्रक्रिया से उसके मन में विचारों का उदय हुआ और उन्हें व्यक्त करने के लिए उसके मुख से वाणी फूट पड़ी। उसके जीवन, में भूख वासना और

भय की चेष्टाएँ प्रमुख रहीं । उन्हीं के आधार पर उसका उत्तरोत्तर विकास हुआ । मेयर का अनुमान है कि 'आदिमानव का सांस्कृतिक विकास उसकी यौन-क्रियाओं के अनुकूल होता है'[१] श्रम के द्वारा प्रकृति के साथ सम्बन्ध जोड़ कर आदिमानव ने भूख मिटायी और जीवन की रक्षा की । श्रम ने ही उसे सभ्य बनाया । सब से बढ़ कर तो उसे मृत्यु का भय हुआ और उसने अर्चना की—'मृत्योर्माऽमृतं गमय' । सघन वन, अंधेरी गुफा, बादल के गर्जन आदि मानव को भयावह प्रतीत हुए होंगे । वे विपत्ति के रूप में दीख पड़े होंगे । उनपर उसे विजय प्राप्त करनी पड़ी होगी । यजुर्वेद में भय से मुक्ति की अभ्यर्थना की गयी है—

यतो यतः समीह से ततो नो अभयं कुरु ।
शन्नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः ।।

यजुर्वेदः अ० ३६ । मं० १७, २२

उसके अस्तित्व को सुरक्षित रखनेवाली पृथ्वी थी । वही उसकी माता थी और वह उसका पुत्र था—

माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः ।

अथर्वेद—१२।१।११

ऐसी मधुरतम उद्भावना एवं कल्पना ने ही मानव को मानव बनाया । यही कारण है कि आज वह अपने अस्तित्व को सुरक्षित रखने में सशक्त और प्रयत्नशील है ।

मानव अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति समाज में ही कर पाता है । वस्तुतः अपनी आवश्यकताओं की तृप्ति से उसे सुख मालूम पड़ता है और उनकी तृप्ति न होने पर उसे दुःख होता है । इस प्रकार सुख-दुःख के ये स्थायी भाव उसके जीवन में ताने-बाने की भाँति गुथे हैं । उसके जीवन की यह विशेषता है कि वह खाद्य पदार्थों को अपने आप में आत्मसात कर रासायनिक रीति से परिवर्तित करता है और अपनी गतिशीलता

---

१ Benoy Kumar Sarakar: Indian Historical Quaterly, December 1943 (A study of Meyer's Hindu Trilogy of Vegitation powers and festivals, Page—382. "In the view of the primitives every "becoming" in the growth of culture is not only similar to, but identical with sex acts of human beings."

के लिए शक्ति अर्जित करता है, साथ ही अपने अनुरूप जीवन का जन्म भी देता है। सच तो यह है कि मानव का समस्त जीवन कला से ओतप्रोत है। वह सृष्टि की अनुपम देन है।

जीवन और साहित्य

सृष्टि की सीमा बनाने और उसे (सृष्टि) परिवर्तित करने में विचारों का प्राधान्य है। मानव ने प्रकृति के अन्तराल का गंभीरतम अध्ययन कर जिन सूक्ष्म विचारों का परिचय दिया है वे ही उसकी प्रगति के प्रतीक हैं। अपने विचारों को मूर्तिमत्ता प्रदान करने के लिए उसने साहित्य का सृजन किया है। साहित्य का सम्बन्ध समाज से है—'सहितस्य भावः साहित्यम्।' अर्थात् साहित्य का लक्ष्य मानव-कल्याण ही है।

साहित्य में साहित्यकार अपनी निगूढ़ आत्मा की अभिव्यक्ति करता है। उसमें उसका व्यक्तित्व प्रतिबिम्बित होता है। उसका अस्तित्व निखरता है। साहित्य की रचना पुरानी होने पर भी नवीन इसलिए जान पड़ती है कि उसके भाव पुराने नहीं होते। साहित्यकार अपनी रचना में जिन भावों का निरूपण करता है वे ही भाव हमारे मन में भी उदित हो जाते हैं और हम साहित्यकार के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं। अनुभूति की इस स्थिति को ही रस कहते हैं। जीवन की मूल प्रेरणाएँ ही साहित्य की प्रेरक शक्तियाँ हैं। जीवन के बिना साहित्य का अस्तित्व सम्भव नहीं है।

चेतन और अचेतन मन की कल्पनाओं में जो भिन्नता एवं संघर्ष हैं, साहित्य में उन्हीं का तथ्यातथ्य छन-छन कर आता है। जीवन में जो गति है, प्रेरणा है, सुख-दुःख के भाव हैं, साहित्य उन्हीं की अभिव्यक्ति है। साहित्य मानव-जीवन की अस्पष्टता को स्पष्ट कर उसे मधुमय बनाता है। जीवन गति है और साहित्य उसकी मधुर भावना है।

मानव-जीवन ज्ञान और भाव के सामंजस्य से ही गतिशील है और मानव भी इसी से कर्मोन्मुख होता है। उसकी भावात्मक अनुभूतियों के साथ साहित्य का गहरा सम्बन्ध है। साहित्य से उसमें सहानुभूति की शक्ति बढ़ती है और भाव-साम्य के कारण मानव-जाति एक परिवार बन जाती है—'वसुधैव कुटुम्बकम्'। साहित्य में मानव के हृदय को उदार और विशाल बनाने की अपार शक्ति है। उसमें मानव-जाति की मधुरतम अनुभूति अक्षुण्ण बन जाती है। इतना ही नहीं, अतीत कालीन संस्कृति की महत्ता भी साहित्य के द्वारा ही विदित हो सकती है। उसकी दृष्टि में आत्मा भौतिकता से ऊपर है। वह स्वतन्त्र है। मानव सुन्दर है। वह सौंदर्य का स्रष्टा है।

अपनी परम्परा को बनाये रखने के लिए यह प्रकृति सृजन करती है और इसीसे उसके सौंदर्य में आकर्षण है। आनन्द है। मानव युग-युगों से उसके प्रति आकृष्ट होता रहा है। सौंदर्य की सुन्दरतम अभिव्यक्ति ही कला है। सौंदर्य की सूक्ष्म अनुभूति से मानव की वासना संयमित एवं परिष्कृत होती है। उसमें मानवता आती है। सुसंस्कृत व्यक्ति सौंदर्य की अनुभूति की गहराई में उतर सकता है। साहित्य की विशिष्टता यह है कि वह असुन्दर को भी सुन्दर रूप में निरूपित करता है। जिस साहित्य में गहरे भाव होते हैं, व्यापक दृष्टिकोण होते हैं वह सर्वोत्तम माना जाता है। साहित्य-सृजन की यह परम्परा मानव-जीवन में युग-युगों से चली आ रही है। साहित्य के बिना उसका जीवन सूना है।

भारतीय संस्कृति की प्राचीनता और विशिष्टता

स्पष्ट है कि साहित्य के द्वारा ही मानव-समाज की संस्कृति की अभिव्यक्ति होती है, क्योंकि संस्कृति मानव की अन्तरात्मा की अभिव्यक्ति है और इसी के द्वारा मानव का निरन्तर विकास होता है। सहिष्णुता, समुदारता और सहृदयता मानवता के विशिष्ट गुण हैं। 'स्व' की भावना से जो जितना ही ऊपर उठ सका है उसका संस्कार उतना ही परिष्कृत एवं परिमार्जित कहा जा सकता है और ऐसा सामुदायिक संस्कार ही संस्कृति है।

संस्कृति मानव का आन्तरिक उदात्त गुण है और सभ्यता बाह्य गुण है। सच तो यह है कि हमारी आन्तरिक प्रवृत्तियों का प्रभाव प्रकृति के बाह्य पदार्थों पर पड़ता है और बाह्य पदार्थ हमारी आन्तरिक प्रवृत्तियों को रूप देते हैं। अतः संस्कृति और सभ्यता के अन्तर को स्पष्ट करना कठिन है। संस्कृति सभ्यता की वस्तुओं को रंजित करती है और सभ्यता संस्कृति के स्वरूप को। संस्कृति का प्रत्यक्ष दर्शन सभ्यता में होता है—आचार-विचार में होता है और वह कला एवं साहित्य के द्वारा निखर उठती है।

प्रत्येक व्यक्ति अपने विचारों द्वारा ही बाह्य जगत का नियन्त्रण करता है और भौतिक साधनों में प्रगति भी। वस्तुओं की उपयोगिता के साथ उनकी सुन्दरता को भी प्रश्रय देना कम आवश्यक नहीं है। और, यह संस्कृति के बिना संभव नहीं हो सकता। मेकआइवर ने ठीक ही कहा है—"हमारी संस्कृति वह है जो हम हैं, और हमारी सभ्यता वह है जिसका हम उपयोग करते

हैं'[1]। संस्कृति और सभ्यता मानव-जीवन से भिन्न नहीं हैं। दोनों ही मानव के अस्तित्व को सुदृढ़ बनाने में समर्थ हैं।

यों तो इस सृष्टि में सबसे प्राचीन यह प्रकृति है और उसका सर्वोत्तम प्राणी मानव भी कम प्राचीन नहीं है। भारत की प्राचीनता का प्रहरी हिमालय है। उसकी संस्कृति के प्रतीक ऋग्वेद, महंजोदरो (सिंधु) और हड़प्पा की (पंजाब) कलाएँ हैं। भारतीय संस्कृति में अनेक जातियों का समावेश हुआ है और प्रत्येक ने अपनी-अपनी विशेषताएँ प्रदान की हैं। उसे सजाया तथा संवारा है। आर्य तथा आर्येतरोंके मिलन के साथ ही साथ अनेक जातियों, धर्मों, संस्कृतियों को पचा कर भारत ने एक नयी संस्कृति को जन्म दिया है।[2]

हमारी भारतीय संस्कृति का मुख्य लक्ष्य आत्मानन्द की प्राप्ति है जो कि कर्म द्वारा संभव है। अतः यहाँ कर्म की प्रधानता परम्परा से चली आ रही है। वेदों की विलक्षणता यह है कि उनमें प्रकृति के प्रत्येक तत्व का सजीव रूप में वर्णन किया गया है। संभवतः प्रकृति के प्रत्येक तत्व में एक देवता की कल्पना करते रहने से वैदिक आर्य विभिन्न देवी देवताओं की अर्चना भी करने लग गये थे, किन्तु वे मानते थे कि सब के मूल में एक ही ब्रह्म है और प्रकृति की प्रत्येक शक्ति उसी के अधीन में संचालित होती है। उसकी पूजा करने से भलाई होती है। इसी से वे स्वर्ग में भी पृथ्वी की भाँति ही सुख चाहते थे।[3]

जब जैन धर्म और बौद्ध धर्म का प्रभाव फैला तब इसके कारण अहिंसा का महत्व भी बढ़ गया। मंदिरों और मूर्तियों का निर्माण भी जैनियों द्वारा हुआ। बौद्ध भी स्तूप बनवाते थे। तत्त्वतः यदि देखा जाय तो नाना संस्कृतियों का समन्वय ही भारतीय संस्कृति है। यों तो मानव-जाति की संस्कृति मूल रूप में एक ही है। किन्तु, हाँ, देश काल और जलवायु के कारण संस्कृति में भी भेद हो जाता है। और उस भिन्नता में थोड़ी-सी विशिष्टता भी उत्पन्न हो जाती है। इस दृष्टि से देखें तो मिथिला की अपनी संस्कृति है जिसमें भारतीय संस्कृति का निदर्शन है और जो अभी तक अक्षुण्ण है।

---

१ Make Iver : The Modern state, Page—325,
"Our culture is what we are, our civilization is what we use".

२ दिनकरः संस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ ३७।

३ वही।

मैथिली संस्कृति की परम्परा

प्राचीन काल से ही मिथिला संस्कृत साहित्य की अभूतपूर्व सेवा करती आ रही है और बौद्धधर्म के पश्चात मिथिला को चिन्तन करने का अवसर भी पूर्ण रूप से प्राप्त हुआ। वैदिक काल में मिथिला में अनेक ऋषियों का आविर्भाव हुआ था जिनमें गोतम रहूगण, वामदेव, याज्ञवल्क्य, विश्वामित्र, कपिल आदि के नाम बड़े आदर के साथ लिये जा सकते हैं। गौतम रहूगण, ऋग्वेद, शुक्ल यजुर्वेद और सामवेद के अनेक मन्त्रों के रचयिता माने जाते हैं। गौतम रहूगण, विश्वामित्र और वामदेव ने ऋग्वेद के दशमंडल में तीन, प्रथम और चतुर्थ भाग रचे थे। याज्ञवल्क्य की रची हुई याज्ञवल्क्य-स्मृति प्रसिद्ध है। उनका आश्रम कुसुमा ग्राम में (नेपाल राज के कोराडी परगना) था[1]। उनके आसपास आज धनुक्षेत्र (धनुखा) भी वहाँ ही विद्यमान है। उनकी पत्नी मैत्रेयी अध्यात्म-ज्ञान में निपुण थी। कपिल ककरौड़ के (दरभंगा के हाटी परगना) निवासी थे। उन्होंने सांख्य दर्शन लिखा था[2]। उनके पश्चात मण्डन मिश्र, उदयनाचार्य, वाचस्पति मिश्र, गंगेश उपाध्याय मिथिला में अवतरित हुए। मंडन मिश्र पूर्व मीमांसा और न्याय के अद्वितीय विद्वान थे। उन्होंने विधिविवेक, मण्ड त्रिशतक, नैस्कर्म्य-सिद्धि और वेदान्त-वार्तिक लिखे थे। कालान्तर में वे मिथिला छोड़ कर उत्तर प्रदेश के मण्डला में रहने लगे। मण्डन की प्रतिभा का लोहा शंकराचार्य ने भी मान लिया था। वेदान्त में उनकी एक पुस्तक है 'ब्रह्मसिद्धि' जिसकी टीका वाचस्पति मिश्र ने 'ब्रह्मतत्व समीक्षा' में की है। उदयनाचार्य करिअन गाँव (दरभंगा के दक्षिण) के निवासी थे। उन्होंने बौद्धों को दर्शन में पराजित कर आत्मा के अस्तित्व के साधन के निमित्त 'आत्म-तत्व-विवेक' और ईश्वर अस्तित्व के निमित्त 'न्याय कुसुमांजलि' लिखी थी। वाचस्पति मिश्र ठाढ़ी के (झंझारपुर के दक्षिण) निवासी थे। उनकी पत्नी भामती के नाम से मिश्राइन तालाब अभी तक प्रसिद्ध है। उन्होंने सांख्य तत्व कौमुदी,, तत्व बिन्दु न्याय-कणिका, भामती आदि ग्रन्थ लिखे थे। कहते हैं कि जैमिनी ऋषि ने मिथिला में ही पूर्व मीमांसा शास्त्र की रचना की थी और बौद्धों के आक्षेप को दूर कर वेदों के महत्व पर प्रकाश डाला था। शबर, कुमारिल, पक्षधर,

---

१ **गौरीनाथ झा (प्राचीन मिथिला) मिथिला मिहिर-मिथिलांक—१९३५: पृष्ठ—२५।**

२ **त्रिलोकनाथ मिश्र (मिथिला के विद्वान) वही : पृष्ठ ९०।**

मुरारि, शालिकनाथ, पार्थसारथि आदि प्रसिद्ध मीमांसक मिथिला के थे[1]। मिथिला में न्याय शास्त्र, मीमांसा, ज्योतिष, धर्मशास्त्र, आगमशास्त्र, व्याकरण शास्त्र आदि की रचना परम्परा से होती चली आ रही है। बौद्ध युग में भी मिथिला की शास्त्रार्थ परिपाटी प्रसिद्ध हो चुकी थी। इसी से वहाँ शास्त्र की व्युत्पत्ति और तर्क शक्ति बढ़ती रही। इन्हीं विभूतियों से मिथिला आज भी मिथिला है।

जातकों से पता चलता है कि नाभाग वंश के विशाल नामक राजकुमार ने वैशाली की संस्थापना की थी[2]। जब उसकी शक्ति घट गयी तो विदेहों ने वैशाली को भी मिथिला में मिला लिया था। बौद्धकाल में वैशाली गणतन्त्र राज्य थी। वहाँ लिच्छवियों का आधिपत्य था। मनु ने लिच्छवियों को 'व्रात्य क्षत्रिय' कहा है—'झल्लो मल्लश्च राज्यन्याद् व्रात्यान्निच्छविरेव च'—मनुस्मृति। और, वह लिच्छवि से बना है। अंगरेज इतिहासकारों ने लिच्छवियों को तिब्बती बताया है और उन्हें वृजि जाति का कहा है। बुद्धदेव के समय में ही लिच्छवियों ने मगध पर भी अपना अधिकार जमा लिया था। लेकिन मगध का सेनापति बिम्बसार ने अपने मालिक को मार कर मगध की गद्दी ले ली थी और लिच्छवियों को मार भगाया था।

विदेहों का राज्य दो हजार तीन सौ मीलों तक फैला हुआ था। उसकी राजधानी मिथिला थी जो पचास मीलों तक घिरी थी। मगध के राजा बिम्बसार ने लिच्छवि नरेश चेटक की कन्या चेलना से विवाह किया था। बिम्बसार के पुत्र अजातशत्रु ने लिच्छवियों को हराकर अपने अधीन कर लिया था, किन्तु तो भी उसे वृज्जी गणतन्त्र का भय बराबर बना ही रहता था[3]। उनके आक्रमणों को रोकने के लिए गंगा और सोन के संगम पर उसने 'पाटलि' नाम का किला बनवाया था जो आगे चलकर पाटलिपुत्र हुआ और वही उसकी राजधानी थी[4]।

वैशाली नगर बहुत बड़ा था। वृज्जी साम्राज्य गणतंत्र था। उसके शासन के लिए केन्द्रीय सभा स्थापित की गयी थी जिसमें प्रत्येक शाखा के प्रतिनिधि

---

१ डा० लक्ष्मण झा : मिथिला पृष्ठ १०६।

२ मिथिला मिहिर (मिथिलांक १९३६) बौद्धकालीन मिथिला, पृष्ठ—७९।

३ डा० लक्ष्मण झा (मिथिला) १९५२ : पृष्ठ—९६।

४ अवधबिहारी पाँडेय, भारतवर्ष का इतिहास, पृष्ठ—३९।

रहते थे और वे राजा कहलाते थे। इस प्रकार करीब ७७०७ राजा थे। प्रत्येक राजा की सहायता के लिए राजप्रतिनिधि, सेनापति और कोषाध्यक्ष रहते थे। वृज्जियों के मुख्य व्यवसाय कृषि, व्यापार और युद्ध थे। २५० ई० पूर्व में सम्राट् अशोक ने मिथिला का भ्रमण किया था। उन्होंने वैशाली, लौरिया, अरराज, वेतिया, नन्दनगढ़, जानकीगढ़, रमपुरवा, पिपरिया आदि स्थानों को भी देखा था। उनके समय में मिथिला मगध राज के अन्तर्गत थी। वृज्जियों की संघशक्ति छिन्न-भिन्न हो गयी थी और वे मौर्य सम्राट् के अधीन थे।

'मौर्य वंश के बाद सुंग, कण्व और आँध्र वंशवालों ने मगध पर अपना आधिपत्य जमाया। सन् १२० ई० पूर्व में कुशन सम्राट् कनिष्क मिथिला देखने के लिए आया था। उसने वैशाली (बसाढ़) नगर को देखा था और वहाँ से बुद्ध भगवान का भिक्षा-पात्र लेकर वह लौट गया था'।[1] आन्ध्र साम्राज्य की शक्ति घटने पर लिच्छवियों ने जोर पकड़ा और फिर उनकी शक्ति बढ़ती गयी। उन्होंने मगधराज पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। सन् ३०८ ई० पूर्व में चन्द्रगुप्त ने वैशाली की लिच्छवी राजकुमारी देवी के साथ विवाह किया और वह मगध का राजा हुआ। लिच्छवियों की सेना द्वारा उसने सारे उत्तरी भारत पर अपना अधिकार जमा लिया। अपने सिक्कों पर अपने साथ अपनी सहधर्मिनी और लिच्छवी जाति के नाम भी उसने खुदवाये। गुप्त सम्राट बड़े गौरव से अपने को लिच्छवी संतान कहा करते थे। आज भी वैशाली की (बसाढ़) खुदाई होने पर बौद्धधर्म सम्बन्धी बहुत सी चीजें पायी गयी हैं। फाहियान, ह्वेनसाँग, संगयून चीनी यात्रियों ने वैशाली को देखा था।

लिच्छवियों ने यद्यपि बौद्धधर्म स्वीकार कर लिया था और सारी मिथिला पर उनका आधिपत्य था, फिर भी बौद्धधर्म का प्रभाव पश्चिमी मिथिला तक ही रहा। वृज्जि गणतन्त्र की विदेह शाखा पर बौद्धधर्म का प्रभाव नहीं के बराबर ही पड़ा। पूर्व भाग की मिथिला के ब्राह्मणों ने अपनी प्राचीन वैदिक संस्कृति को बनाये रखने में सफलता प्राप्त की। और, पश्चिमी मिथिला पर भी बौद्धधर्म का प्रभाव अधिक दिनों तक नहीं रह सका। गुप्त सम्राट् ने भी हिन्दू धर्म की ही पुष्टि की और विचित्र बात तो यह है कि लिच्छवियों ने भी आगे चल कर बौद्धधर्म त्याग दिया। बौद्धकाल में भी

---

१ मिथिला मिहिर (मिथिलाँक) १९३६ : पृष्ठ—८१।

मिथिला में बड़े-बड़े विद्वान पैदा हुए थे। बौद्धधर्म का मूलोच्छेदन करने में मिथिला के मराडन, कुमारिल, वाचस्पति, उदयनाचार्य आदि का प्रमुख हाथ था।

बौद्धधर्म की प्रतिक्रिया इसलिए हुई कि बौद्धभिक्षुओं के लिए जो नियम बनाये गये थे वे बड़े ही कड़े और कठोर थे। उन नियमों के भंग होने पर बौद्ध भिक्षुओं को कठिन दराड दिया जाता था। बुद्ध के समय ही बहुत से भिक्षुओं ने इन नियमों के विरुद्ध विद्रोह किया था। बुद्ध के उठ जाने के पश्चात् योग, तंत्र-मंत्र और बौद्ध-पद्धतियों का सम्बन्ध होता चला। इस प्रकार बौद्धधर्म की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप तान्त्रिक साधना का प्रचार होने लगा। मैथिली संस्कृति में लोकगीतों का जो महत्व है उसका स्पष्टीकरण अब उनके कुछ लक्षणों के द्वारा किया जा रहा है।

लोकगीतों का स्वरूप और उनकी परिभाषा

ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में 'लोक' का अर्थ जीव तथा स्थान के रूप में किया गया है—

नाभ्या आसीदंतरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तन।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ अकल्पयन॥

ऋग्वेद : १०।९०।१४

पर उसमें कहीं-कहीं इसके लिए 'जन' का भी प्रयोग किया गया है। जिसका अर्थ साधारण जनता के रूप में होता है—

'य इमे रोदसी उभे अहमिंद्रमतुष्टवं।
बिश्वामित्रस्य रक्षति ब्रह्मेदं भारतं जनं॥

ऋग्वेद : ३।५३।१२

लोक शब्द संस्कृत के 'लोकृ दर्शने' धातु से घञ् प्रत्यय लगने पर बना है। इस धातु का अर्थ है देखना। लट् लकार में अन्यपुरुष एक वचन का रूप लोकते है। इस प्रकार लोक शब्द का अर्थ है—देखनेवाला। अर्थात् समस्त जन-समुदाय को जो इस कार्य को करता है 'लोक' कहा जा सकता है। 'लोक' शब्द अति प्राचीनतम है। जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण में इसकी व्यापकता का उल्लेख किया गया है—

बहु व्याहितो वा अयं बहुतो लोकः।
क एतद् अस्य पुनरीहतो अयात्॥

—जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण : ३०।२८

पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी में 'लोक' तथा 'सर्वलोक' के साथ ठञ् प्रत्यय लगाकर 'लौकिक' और सार्वलौकिक' की रचना की है—

लोक सर्वलोकाठ्ठञ ।
तत्र विदित इत्यर्थे । लौकिकः । अनुशातिकादित्वा दुभय पद वृद्धिः । सार्वलौकिकः ।

अष्टाध्यायी : ५।१।४४

कुछ विद्वान् लोक गीत को केवल ग्राम गीत की सीमा में बाँधकर उसके व्यापकत्व को कम करते हैं और कहीं-कहीं उसे जनगीत भी कहते हैं, किन्तु जनगीत भी किसी विशिष्ट वर्ग का ही परिचायक है। बम्बई, मद्रास, कलकत्ता आदि बड़े नगरों में रहनेवाले निम्न वर्ग के लोग गीत गा गाकर अपना मनोरंजन करते हैं। वे गीत लोकगीत हैं, ग्रामगीत तो ग्राम तक ही सीमित हैं। गुजराती, मराठी और मैथिली में 'लोकगीत' नाम ही प्रचलित है। नगरों और ग्रामों की जनता को 'लोक' कहना उचित है। मैथिली में किसी से कुछ कुशल समाचार पूछते समय 'लोकवेद' का प्रयोग किया जाता है।

लोकवेद की प्राचीनता इससे मालूम होती है कि अष्टाध्यायी के ६।१।१२३ सूत्र—सर्वत्र विभाषा गोः के अनुसार लोक और वेद में एङन्त गो शब्द का पद के अन्त में विकल्प से प्रकृतिभाव हैः—

लोके वेदे चैङन्तस्य गोरिति का प्रकृतिभावः
स्यात्पदांते । गो अग्रम् । गोऽग्रम् ।

—अष्टाध्यायी ६।१।१२२

स्पष्ट है कि पाणिनि ने लोक की सत्ता को वेद से अलग माना है। व्यास ने लोक का साधारण जनता के रूप में व्यवहार किया हैः—

अज्ञान तिमिरांधस्य लोकस्य तुविचेष्टतः ।
ज्ञानांजन शलाकाभिर्नेत्रोन्मीलन कारकम् ॥

—महाभारत, आ० प० १।८४

और

प्रत्यक्षदर्शी लोकानां सर्वदर्शी भवेन्नरः ।

आ० प०१।१०१–२

भगवद्गीता में 'लोक' तथा 'लोकसंग्रह' का प्रयोग काफी किया गया है—

कर्मणैव हि सांसिद्धिमास्थिता जनकादयः ।
लोकसंग्रह मेवापि संपश्यन्कर्तुं मर्हसि ॥

गीता ३।२०, और ३।३;३।२२; ३।२४,

डा० कुंजबिहारी दास की स्थापना है कि लोकगीत उन लोगों के जीवन की अनायास प्रवाहात्मक अभिव्यक्ति है जो सुसंस्कृत तथा सुसभ्य प्रभावों से बाहर रहकर कम या अधिक रूप में आदिम अवस्था में निवास करते हैं।[१]

तात्पर्य यह कि जो लोग संस्कृत तथा परिष्कृत लोगों के प्रभाव से बाहर रहते हुए अपनी पुरातन स्थिति में जीवन यापन कर रहे हैं, उन्हें लोक कह सकते हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का कथन है कि लोक शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम्य नहीं है, बल्कि नगरों और गाँवों में फैली हुई वह समूची जनता है जिनके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं है। ये लोग नगर में परिष्कृत, रुचिसंपन्न तथा सुसंस्कृत समझे जानेवाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिष्कृत रुचिवाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारता को जीवित रखने के लिए जो भी वस्तुएँ आवश्यक होती हैं उनको उत्पन्न करते हैं।[२]

हिन्दी साहित्य कोश में लोकगीत शब्द के ये अर्थ दिये गये हैं:—

(१) लोक में प्रचलित गीत

(२) लोक निर्मित गीत

(३) लोक विषयक गीत

वस्तुतः लोक विषयक गीत शब्द का अर्थ इस प्रसंग में अभिप्रेत नहीं। लोकगीत में लोक में प्रचलित गीत ही होता है, पर इस प्रचलन के दो अर्थ हो सकते हैं, एक तो किसी समय विशेष मात्र में प्रचलित। ऐसा होता है कि कभी-कभी कोई गीत कुछ समय के लिए लोक में बहुत प्रचलित हो जाता है। यह प्रचलन अस्थायी होता है, कुछ समय उपरान्त वह समाप्त हो जाता है। ऐसे अत्यन्त अस्थायी गीत लोकगीत के अन्तर्गत नहीं आएँगे। दूसरे अर्थ में ऐसा प्रचलन आता है, जिसकी एक परम्परा बनती है जो कुछ पीढ़ियों तक चलती जाती है, किन्तु ऐसे गीतों के भी दो प्रकार होते हैं। हमें आज भी तुलसी, सूर, कबीर के भजन परम्परा से पीढ़ी-दर पीढ़ी चले आते मिलते हैं। ये गीत भी यथावत लोकगीत की सीमा में नहीं आ सकते। लोकगीत तो वह प्रकार है, जिसको ऐसे किसी व्यक्तित्व से सम्बन्धित नहीं किया जा सकता,

---

१ Dr. Kunj Bihari Das : A study of Orissian Folklore.

२ **आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी : जनपद (पत्रिका) वर्ष १, अंक १ पृ०६५।**

जिसकी मेधा लोक-मानस की स्वाभाविक मेधा नहीं। जब ऐसा है तभी यह प्रश्न प्रस्तुत होता है कि तो क्या लोकगीत लोक द्वारा निर्मित होते हैं ?

अभाववादी व्यक्ति यह मानेंगे कि लोक कोई ऐसी सत्ता नहीं जो गीत बना सके। लोक तो मनुष्यों का ही समूह है, उसमें से कोई एक व्यक्ति ही गीत बना सकता है। इस कथन में सत्य अवश्य है, पर लोकगीत वस्तुतः वही हो सकता है जिसमें रचयिता का निजी व्यक्तित्व नहीं होता। वह लोकमानस से तादात्म्य रखता है और ऐसी व्यक्तित्वहीन रचना करता है कि समस्त लोक का व्यक्तित्व ही उसमें उभरता है और लोक उसे अपनी चीज कहने लगता है। वह लोक का अपना गीत होता है, जो परम्परा में पड़ जाता है और परम्परा उसमें समय-समय पर अनुकूल परिवर्तन करती रहती है।

ऐसे लोकगीतों में एक ओर तो ऐसे गीत हो सकते हैं, जिनमें लोकवार्ता तत्त्व समाविष्ट हो। ऐसे गीतों में भूविज्ञानविद् के लिए बहुत सामग्री रहती है। दूसरी ओर ऐसे भी लोकगीत होते हैं, जिनमें लोक अपने मनोरंजन के उपकरण जुटाता है। इन दोनों प्रकार के गीतों में लोकसंस्कृति के विविध चरण परिलाक्षित होते हैं। एक ओर लोकगीत अपौरुषेय भी होते हैं, ऐसे गीत जिन्हें स्त्रियाँ भी गाती हैं। विविध अनुष्ठानों के अवसरों पर ये अपौरुषेय गीत गाये जाते हैं। दूसरी ओर केवल पुरुषों के गाने के भी गीत होते हैं। ये प्रायः लोकरंजक होते हैं। स्त्री पुरुष दोनों मिलकर सामूहिक रूप में भी गाते हैं। बच्चों के गीतों में अद्भुत कल्पना का छटाक्षेप होता है अथवा शिक्षा होती है। बालिकाओं के गीत भी अलग मिलते हैं। ये गीत उनके खेलों से सम्बन्धित रहते हैं। जैसे प्रत्येक अनुष्ठान के साथ कोई न कोई गीत रहता ही है, वैसे ही ऋतुओं के अनुकूल भी गीत होते है। गीतों का सम्बन्ध मनुष्यों के कामों और गतियों से भी रहता है। चक्की पीसते समय, पैर चलाते समय, कोई न कोई गीत गाये जाते हैं। गीत छोटे भी होते हैं और बड़े भी। इतने बड़े हो सकते हैं कि कई दिन उनके गाने में लगे। इन बड़े गीतों में प्रायः कोई लम्बी कथा दी रहती है। ऐसे गीतों के नाम उनके विषय के अनुरूप होते हैं और उनकी तर्ज भी बँध जाती है। ढोला नामक गीत नल के पुत्र ढोला के नाम पर है और ढोला गीत की एक तर्ज का भी नाम हो गया है, ऐसे ही आल्हा। कुछ गीत किसी विशेष गायक वर्ग से सम्बन्धित होते हैं। यह वर्ग उन गीतों को गा-गा कर अपनी आजीविका चलाते हैं। भोया 'भैरों' के गीत गा-गा कर भिक्षा एकत्र करते हैं। कुछ विशेष नामवाले गीत भी हैं,

जैसे 'साके'। साकों में किसी वीर की गाथा रहती है। पँवारा भी ऐसा ही होता है।[1]

वैदिक काल में शिष्ट संस्कृति और लोक संस्कृति का पता हमें प्राचीन भारतीय साहित्य के मनन से भलीभाँति लग जाता है। शिष्ट संस्कृति उच्च वर्ग के लिए प्रयुक्त की जा सकती है, क्योंकि वह वर्ग बुद्धि और प्रतिभा के कारण समाज का अगुआ बना रहा। लोकसंस्कृति में जन-साधारण की संस्कृति सन्निहित की जा सकती है, उसे लोक से प्रेरणा मिलती है। लेकिन यह शिष्ट संस्कृति को परिपुष्ट करनेवाली है। ऋग्वेद शिष्ट संस्कृति का द्योतक है, और अथर्ववेद लोक संस्कृति का। ऋग्वेद में विशिष्ट लोकजीवन का मूल्यांकन किया गया है और अथर्ववेद में सामान्य लोक जीवन या जनता का। ऋग्वेद में यज्ञ यागादि का विधान पाया जाता है और अथर्ववेद में अंधविश्वास, टोना, टोटका जादू, तंत्र-मंत्र का।

लोक संस्कृति और लोक-साहित्य

लोकसंस्कृति और लोकसाहित्य में अन्तर है। वह यह कि सोफिया बर्न ने फोकलोर के क्षेत्र विस्तार के सम्बन्ध में लिखा है कि यह एक जाति बोधक शब्द की भाँति प्रतिष्ठित हो गया है जिसके अन्तर्गत पिछड़ी हुई जातियों में प्रचलित अथवा अपेक्षाकृत समुन्नत जातियों के असंस्कृत समुदायों के अवशिष्ट विश्वास, रीति-रिवाज कहानियाँ तथा कहावतें आती हैं। प्रकृति के चेतन तथा जड़ जगत के सम्बन्ध में भूत प्रेतों की दुनिया तथा उनके साथ मनुष्यों के सम्बन्धों के विषय में जादू, टोना, संमोहन, वशीकरण, ताबीज, भाग्य, शकुन, रोग तथा मृत्यु के सम्बन्ध में आदिम तथा असभ्य विश्वास इसके क्षेत्र में आते हैं। इनके अतिरिक्त इसमें विवाह, उत्तराधिकार, बाल्यकाल तथा प्रौढ़ जीवन में रीति रिवाज तथा अनुष्ठान और त्योहार, युद्ध, आखेट, मत्स्य व्यवसाय, पशुपालन आदि विषयों के भी रीति रिवाज और अनुष्ठान इसमें आते हैं तथा धर्मगाथाएँ, अवदान (लीजेंड) लोक कहानियाँ, बैलेड, गीत किंवदंतियाँ, पहेलियाँ और लोरियाँ भी इसके विषय हैं। संक्षेप में लोक की मानसिक सम्पन्नता के अन्तर्गत जो भी वस्तु आ सकती है वे सभी इसके क्षेत्र में हैं। यह किसान के हल की आकृति नहीं है जो लोक संस्कृति के विद्वान को

---

१ **डा० धीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी साहित्य कोश, पृष्ठ ६८६, २०१५ वि० सं० ज्ञानमण्डल, वाराणसी।**

अपनी ओर आकर्षित करती हैं—प्रत्युत वे उपचार तथा अनुष्ठान हैं जिन्हें किसान हल को भूमि जोतने के काम में लाने के समय करता है, जाल तथा बंशी की बनावट नहीं, बल्कि वे टोने टोटके हैं जिन्हें मछुआ समुद्र के किनारे करता है, पुल अथवा किसी भवन का निर्माण नहीं है प्रत्युत वह बलि है जो उनके निर्माण के समय दी जाती हैं। लोक संस्कृति वस्तुतः आदिम मानव की मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्ति है; वह चाहे दर्शन, धर्म विज्ञान, तथा ओषधि के रूप में हुई हो, अथवा सामाजिक संगठन तथा अनुष्ठानों में अथवा विशेषतः इतिहास, काव्य और साहित्य के अपेक्षाकृत बौद्धिक प्रदेश में सम्पन्न हुई हो।[1] सोफिया बर्न ने फोकलोर के विषय को तीन भागों में विभक्त किया है[2]—

(१) लोकविश्वास और अंध परम्पराएँ।
(२) रीतिरिवाज तथा प्रथाएँ।
(३) लोक साहित्य।

लोक विश्वास और अंधपरम्परा में पृथ्वी तथा आकाश, वनस्पति जगत, पशु जगत, मानव और उसकी निर्मित वस्तु आत्मा तथा परलोकपरामानवी व्यक्ति, शकुन, अपशकुन, भविष्यवाणी, आकाशवाणी, जादू, टोना आदि से सकते हैं। रीति-रिवाज तथा प्रथाओं में सामाजिक तथा राजनीतिक संस्थाएँ व्यक्तिगत जीवन के अधिकार, व्यवसाय, उद्योग-धंधे, व्रत, त्योहार आदि के सम्बन्ध में प्रचलित रीति-रिवाजों को लिया जा सकता है। लोक साहित्य में लोकगीत, लोक कथाएँ, कहावतें, पहेलियाँ, सूक्तियाँ, बच्चों के गीत, खेल के गीत आदि अन्तर्निहित हैं। स्पष्ट है कि लोकसाहित्य (फोकलिटरेचर) लोक संस्कृति (फोकलोर) का एक भाग है। एक का क्षेत्र अति व्यापक है और दूसरे का क्षेत्र सीमित। साधारण जनता जिन शब्दों में गाती है, हँसती है, रोती हैं, खेलती है उन सब को लोक साहित्य के अन्तर्गत रखा जा सकता है। जन्म से लेकर मृत्यु तक जो सोलह संस्कार हैं, उन सभी के अवसर पर गीत गाये जाने की प्रथा परम्परा से चली आ रही है। ऋतुओं के परिवर्तन का प्रभाव जनसाधारण के जीवन पर पड़ता है। बाह्य जगत में इस परिवर्तन के नर्त्तन को देख कर हृदय में जो उल्लास की उमंगें उमड़ती हैं उनकी अनुभूति

---

१ **सोफिया बर्न : ए हैंड बुक ऑफ फोकलोर, डा० सत्येन्द्र : ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन, पृष्ठ ४-५।**

२ **ए हैंड बुक ऑफ फोकलोर।**

लोकगीतों के रूप में अभिव्यंजित होती है। खेतों की बोआई, निराई, लुनाई आदि के समय भी गीत गाये जाते हैं। जनता अपने पूर्वजों की वीरताओं को गा गा कर फूली नहीं समाती।

बच्चों को दादी-दादे, नाना-नानी, माता-पिता कहानियाँ, लोरियाँ सुनाते हैं। गाँव में नौटंकी, नाटक, नाच आदि के द्वारा मनोविनोद करते हैं। वे बोल-चाल में मुहावरों, कहावतों, व्यंगों का प्रयोग करते हैं। नन्हें-नन्हें बच्चे नाना प्रकार के गीत गाते हैं और उछलते-कूदते हैं। ये सभी गीत और कथाएँ लोक साहित्य की धरोहर हैं।

आज का साहित्य, छन्दों अलंकारों शिल्प विधानों और नियमों के बंधन से जकड़ा हुआ है। आदिम युग में विश्व-मानव प्रकृति का पुजारी था और प्राकृतिक जीवन व्यतीत करता था उसके साहित्य का प्रमुख गुण था स्वाभाविकता, सरलता एवं स्वच्छन्दता। आज उसका अवशेष ही लोक साहित्य के रूप में विद्यमान है। 'इस प्रकार लोकसाहित्य जनता का वह साहित्य है जो जनता द्वारा, जनता के लिए लिखा गया है'।[1]

अंगरेजी में 'फोक' का अर्थ है लोक, राष्ट्र जाति सर्व साधारण या वर्ग विशेष। इसी से 'फोकसौंग' के अनुरूप हिन्दी में 'लोकगीत' गढ़ा गया है जो कि युक्ति-संगत जान पड़ता है। अंगरेजी का फोकसौंग जर्मनी के 'Volkslied' का अपभ्रंश है। समस्त मानव-समाज में चेतन-अचेतन रूप में जो भावनाएँ गीतबद्ध होकर व्यक्त हुई हैं उनको 'लोकगीत' कहना उपयुक्त है। फोक शब्द की उत्पत्ति 'Folc' से हुई है। यह ऐंगलो सेक्सन का शब्द है जो जर्मनी में 'Volk' रूप में प्रचलित है। डा० बार्क ने 'फोक' शब्द की व्यख्या करते हुए लिखा है कि इससे सभ्यता से दूर रहने वाली किसी पूरी जाति का बोध होता है। परन्तु इसका यदि विस्तृत अर्थ लिया जाय तो किसी सुसंस्कृत राष्ट्र के सभी लोग इस नाम से पुकारे जा सकते हैं। आँग्लभाषी 'फोक' को असंस्कृत और मूढ़ समाज का द्योतक मानते हैं, परन्तु सर्वसाधारण और राष्ट्र के सभी लोगों के लिए भी इसका प्रयोग होता है। इस प्रकार 'लोक' तो 'फोक' से अधिक भाव प्रवण ज्ञात होता है।

---

१ **हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, पृष्ठ १६. (अध्याय १६)।**
'दि पोएट्री ऑफ दि पीपुल, बाइ दि पीपुल, फार दि पीपुल'।

ग्रिम का कथन है कि 'लोकगीत' तो अपने आप बनते हैं।[१] पैरी ने लिखा है कि 'लोकगीत आदिमानव का उल्लासमय संगीत हैं।[२] तात्पर्य यह कि गुफाओं में पनपते हुए आदिमानव में जब थोड़ी बुद्धि आयी और उसके आधार पर उसमें भावनाओं के अंकुर फूटे तो व्यक्त करने के लिए उसने विकृत आलाप लेना आरंभ किया और यही आदि संगीत पैरी के शब्दों में 'लोकगीत' है। राल्फ विलियम्स का कथन है—'लोकगीत न पुराना होता है, न नया। वह तो जंगल के एक वृक्ष के जैसा है जिसकी जड़ें तो दूर जमीन में धँसी हुई हैं परन्तु जिसमें निरन्तर नयी-नयी डालियाँ पल्लव और फल लगते रहते हैं।[3]

तत्वतः लोकगीत हमारे जीवन विकास के इतिहास हैं। उनमें जीवन के सुख-दुःख, मिलन-विरह, उतार-चढ़ाव की भावनाएँ व्यक्त हुई हैं। लोक गीतों में समाज के नाना रूप अवतरित हुए हैं। उनके क्षण-क्षण के भाव इनमें बँध गये हैं। इनमें सरल अनुभूति और भावों की गहराई है। ये ताल, लय, गति और स्वर से युक्त हैं। 'मार्ग' संगीत के विकास में 'देशी' संगीत ने काफी हाथ बटाया है। टप्पा, दादरा, कीर्त्तन, भजन आदि 'देशी' या लोक गीत के ऋणी हैं। श्री देवेन्द्र सत्यार्थी की राय में 'लोकगीत का मूल जातीय संगीत में है।[४]

लोक गीतों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में उपर्युक्त विचारों के आधार पर

---

१ **इनसाइक्लोपोडिया ब्रिटानिया, वोल्यूम ६, पृष्ठ ४४८**
"A folk song Composes itself"–Grimm."

२ **वही, पृष्ठ ४४७**
"This primitve spontaneous music has been called "folk-song"–Perey,

३ **वही, पृष्ठ ४४८**
A Folk song is neither new nor old, it is like a forest tree with its roots deeply burried in the past, but which continually puts forth new branches, new leaves new fruits, —Ralph, V, Williams,

४ **देवेन्द्र सत्यार्थी : मीट माइ पीपुल, पृष्ठ १९४**
"Its seed lies in community singing,"

जो निष्कर्ष निकलते हैं, उन्हें हम निम्न प्रकार के सिद्धान्तों द्वारा प्रतिपादित कर सकते हैं—

(अ) आदि मानव ने सर्वप्रथम अपने आपको देखने के बाद प्रकृति को ही देखा और उसे सर्वस्व समझा। इस सम्बन्ध में ऋग्वेद के इस मंत्र से यह स्पष्ट होता है—

हिरण्य गर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुते मां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥
ऋ० अ० ८। अ० ७।व०३।मं० १॥

यजुर्वेद में भी इसका पुष्टीकरण इस प्रकार होता है—

सहस्त्र शीर्षा पुरुषः सहस्त्राक्षः सहस्त्रपात्।
स भूमिँसर्वतः स्पृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥
य० अ० ३१। मं० १ ॥

आदि मानव ने अपने आपको जिस रूप में पाया उसी रूप में प्रकृति को भी देखा। प्रकृति में प्रजनन की शक्ति को देखकर उसके मन में सुख का उदय हुआ और नाश करने की शक्ति को देखकर उसे दुःख का अनुभव हुआ। इस प्रकार उसके लिए जन्म सुखदायक और मरण दुखदायक सिद्ध हुआ। इन दोनों अवस्थाओं में अपने मन को उत्साह एवं सान्त्वना देने के लिए उसने जो भावाभिव्यंजना प्रगट की वे ही भाव लोकगीत बन गये।

(आ) सन्तोष और उल्लास ने लोकगीतों को जन्म दिया। आदि मानव ने आनन्दोत्सव के समय नाचते हुए अपनी मंडली में कुछ लयबद्ध शब्दों का उच्चारण किया जिसे दूसरों ने भी गा कर लोकगीत का रूप दिया।

(इ) आदि मानव अपने कष्टों को दूर करने के लिए परिश्रम के बोझ को हलका करने की दृष्टि से गुनगुना लेता था और उस गुनगुनाहट से लोकगीत का जन्म हुआ।

(ई) आदि मानव की नाचने गाने की प्रवृतियाँ सामूहिक रही होंगी, क्योंकि आदिम युग में व्यक्ति की अपेक्षा समाज को ही महत्व मिला था। खूंखार जानवरों को मारने के लिए पूरा गिरोह फैल जाता था और एक व्यक्ति जितनी भी वीरता दिखलाता था वह पूरे समाज की वीरता मानी जाती थी।

लोक गीतों के लक्षण

(१) लोकगीत का कोई विशेष गीतकार नहीं होता। वह सामूहिक

रचना होती है। जब तक कोई रचना लिपिबद्ध नहीं होती तब तक लेखक का महत्व नहीं होता है; और वह रचना परिवर्तित होती रहती है।

(२) लोकगीत का कोई परिणति स्वरूप नहीं है। कविता की भाँति वह ज्यों का त्यों नहीं रहता, बल्कि बदलता रहता है।

(३) प्रत्येक लोक गीत का ठीक रचनाकाल मालूम नहीं हो पाता है, बाद के पद भी उसमें जुट जाते हैं।

(४) लोकगीतों का मौलिक प्रचार ही अधिकतर होता है। संभवतः वेद को लिखकर पढ़ते तो स्वर-भंग हो जाता और अर्थ-भंग भी। इसी से उसे 'श्रुति' कहते हैं। वेदों और लोक गीतों में यह बड़ी समानता है। वेद भी लिखित नहीं आया और न लोकगीत ही।

(५) लोकगीतों की शैली सहज होती है। सभी लोकगीत गाने योग्य होते हैं। कविता भी गेय होती है, लेकिन उसमें गेयता का तत्व प्रधान और अनिवार्य नहीं है। एक व्यक्ति उसे गा सकता है, लेकिन सामूहिक रूप से जब उसे गाते हैं तो गेयता का निर्वाह करना कठिन हो जाता है।

उपर्युक्त लक्षणों के अतिरिक्त लोकगीतों के कुछ उपलक्षण इस प्रकार हो सकते हैं—

लोकगीतों के उपलक्षण

(१) आशु रचना : लोकगीतों की रचना अति भावावेग में होती है। अपने आप मुँह से स्वर-लहरी फूट पड़ती है। जो गाया वही गीत बन गया।

(२) पुनरावृत्ति : लोक गीतों में कहीं न कहीं एक टेक होती है। एक पंक्ति जो पहले आती है वह प्रायः प्रत्येक कड़ी में दुहरायी जाती है।

(३) परिचित वस्तुओं का प्रयोग : तत्कालीन समाज में जिस विषय को प्रत्येक व्यक्ति जानता रहता है उसका ही विशेष उल्लेख लोकगीतों में होता है।

वैदिक तथा वैदिकोत्तर साहित्य में लोकगीतों का संकेत

संभवतः सृष्टि के आरंभ से ही लोकगीतों की परम्परा चली आ रही है। वेद में विभिन्न संस्कारों के उत्सवों पर गाथाओं के गाने का वर्णन आया है। ऋग्वेद के अनेक मंत्रों में 'गाथा' शब्द का प्रयोग पद्य या गीत के अर्थ में प्राप्त होता है।[1] उसमें गानेवाले के लिए 'गाथिन्' शब्द का व्यवहार

---

१ ऋग्वेद : ८।३२।१ 'कण्व इन्द्रस्य गाथया'

किया गया है। [1] ऐतरेय ब्राह्मण में ऋक् और गाथा में भिन्नता दिखलायी गयी है। ऋक् दैवी है और गाथा मानवी। ब्राह्मण ग्रन्थों के द्वारा यह प्रमाणित होता है कि गाथाएँ ऋक् यजुः और साम से अलग होती थीं, उनका प्रयोग मंत्र के रूप में नहीं किया जाता था, बल्कि किसी राजा के सत्कृत्य को लक्षित करके लोकगीतों के रूप में होता था, वे जनता द्वारा गाये जाते थे और 'गाथा' नाम से प्रचलित थे। यास्क के निरुक्त की व्याख्या करते हुए दुर्गाचार्य ने गाथा का यह अर्थ स्पष्ट किया है—

'स पुनरितिहास: ऋगबद्धो गाथा बद्धश्च। ऋक् प्रकार एव कश्चित् गाथेत्युच्यते। गाथाः शंसति नाराशंसीः शंसति इति उक्तं गाथानां कुर्वीतेति'।

—निरुक्त ४।६ की व्याख्या।

वैदिक सूक्तों में कहीं-कहीं जो इतिहास उपलब्ध होता है वह कहीं ऋचाओं के द्वारा और कहीं गाथाओं के द्वारा निबद्ध है।

वैदिक गाथाओं के नमूने शतपथ ब्राह्मण (कांड १३, अ० १ ब्राह्मण ५) तथा ऐतरेय ब्राह्मण (८।४) में दीख पड़ते हैं जिनमें अश्वमेध यज्ञ करने वाले राजाओं के उदात्त चरित्र का संक्षिप्त वर्णन किया गया है। ऐतरेय ब्राह्मण में गाथाएँ कहीं केवल श्लोक नाम से निर्दिष्ट हैं तो कहीं इन्हें यज्ञगाथा या केवल गाथा कहा गया है (तदेषाऽभि यज्ञ गाथा गीयते। तां गाथां दर्शयति।—ऐतरेय ब्राह्मण ३६।७, तत्र प्रथमं श्लोकमाह—वही—३६।६)

दुष्यन्त के पुत्र भरत की चर्चा यों की गयी है—

हिरण्येन परीवृतान्कृष्णाञ्शुक्लदतो मृगान्।
मष्णारे भरतोऽददाच्छतं बद्वानि सप्त च॥
भरतस्यैष दौषन्तेरग्निः साचीगुणे चितः।
यस्मिन्सहस्त्रं ब्राह्मण वद्धशो गा विभेजिरे॥
अष्टा सप्तति भरतो दौष्यन्तिर्मुमनामनु।
गङ्गायां वृत्रघ्नेऽबध्नात्पञ्च पञ्चाशतं हयान्॥

ब्राह्मण तथा आरण्यक ग्रन्थों में भ गाथाओं का वर्णन मिलता है। गाथाओं का सम्बन्ध लोकगीतों के अधिक निकट जान पड़ता है।

---

१ ऋग्वेद : १।७।१, 'इन्द्रमिद गाथिनो वृहत्।

पारस्कर ने गृह्यसूत्र में विवाह के सम्बन्ध में दो गाथाएँ दी हैं।[१] आश्वलायन गृह्यसूत्र में सीमन्तोन्नयन के अवसर पर गाथा गाने की प्रथा बतायी गयी है और सोम की प्रशंसा में यह गाथा दी गयी है।[२] वाल्मीकि रामायण में राम-जन्म के समय और श्री मद्भागवत के दशम स्कन्ध में कृष्ण-जन्म के समय स्त्रियों के एकत्र होकर गीत गाने का वर्णन है। आदि कवि वाल्मीकि ने राम-जन्म के अवसर पर गंधर्वों द्वारा गाने और अप्सराओं द्वारा नाचने का वर्णन किया है।[3] महाकवि कालिदास ने रघु के जन्म के समय राजा दिलीप के भवन में वेश्याओं द्वारा नृत्य करने तथा मंगल वाद्य बजने का उल्लेख किया है।[४]

प्राचीनकाल में धान कूटने, चक्की पीसने, खेती निराने के समय स्त्रियाँ झुण्ड बाँध कर गीत गा-गा कर के अपनी थकान हलका किया करती थीं। बारहवीं शताब्दी की कवयित्री विज्जका ने धान कूटनेवालियों का सजीव वर्णन करते हुए उनके गीत गाने का रोचक ढंग से उल्लेख किया है—

---

१ गृह्यसूत्र : १।७ अथ गाथां गायतिः
'सरस्वति प्रेदमव सुभगे वाजिनी वती।
या त्वा विश्वस्य भूतस्य प्रजायामस्याग्रतः।
यस्यां भूतं समभवद् यस्यां विश्वमिदं जगत्।
तामद्य गाथां गाष्यानि या स्त्रीणामुत्तमं यशः॥

२ आश्वलायन गृह्यसूत्र : १ अ० १५ खंड।
'सोमो नु राजावतु मानुषी : प्रजा निविष्ट चक्रासौ।'

३ जाडः कसं च गन्धर्वः, न नृतुश्चाप्सरो गणाः।
देव दुन्दभयो नेदुः पुष्पवृष्टिश्च खात्पतत्॥

४ सुख श्रवाः मंगलतूर्य निस्वनाः।
प्रमोद नृत्यैः सहवारियोषिताम्॥
न केवलं सदनानि मागधीपतेः।
पथि व्यजृम्भन्त दिवौक सामपि॥'

—रघुवंश ३।१९

महाकर्म भरतस्य न पूर्वे नापरे जनाः।
दिवं मर्त्य इव हस्ताभ्यां नोदायुः पञ्च मानवाः।

विलासमस्टरणोल्लन्मुसल लोलदोः कन्दली—
परस्पर परिस्खल द्वलयनिः स्वनोद् बन्धुराः ।
लसन्ति कलहुंकृति प्रसभ कम्पिरोरः स्थल—
त्रुटद्गमक संकुलाः कल भंडनी गीतयः ॥

पाली जातकों के अनुशीलन से पाली भाषा में उपनिषद् गाथाओं का पता चलता है, जो कि प्राचीन काल से ही प्रचलित थीं। उनमें उस समय की लौकिक कथाओं का सारांश दिया गया है। जातक भी (गौतमबुद्ध का जीवन चरित्र) इन्हीं गाथाओं के आधार पर लिखा जान पड़ता है और ये गाथाएँ बुद्ध भगवान की समकालीन मालूम पड़ती हैं। सिंहचर्म जातक में दी गयी दो गाथाओं से कथा की मूलघटना का पता भलीभाँति लग सकता है—

नेतं सीहस्स नदितं न व्यग्घस्स न दीपिनो।
पारु तो सीह चम्मेन जम्मो नदति गद्रभो ॥
चिरं पि खो तं रवांदेययगद्भो हरितंयवं।
पारु तो सीह चम्मेन रवमानो च दूसयी ॥

विक्रम संवत् की तीसरी शताब्दी में प्राकृत भाषा में भी लोकगीतों का प्रचलन था। शालिवाहन द्वारा संकलित प्राकृत भाषा की गाथासप्तशती से पता चलता है कि उस सयम लोकगीतों के रचने और गाने की धुन जोरों पर थी। उस समय की असंख्य गाथाओं को लोकगीत कह सकते हैं। आज सात सौ तक ही गीत प्राप्त हैं। रसोई बनाते समय एक गृहिणी फूँक-फूँक कर आग जलाना चाहती है, किन्तु आग जलती नहीं। इसका सरस वर्णन है—

रन्धण कम्मणिण उणिए मा जूरसु रत्तपाडल सुअन्धम्।
मुइ मारु अं पिअन्तो धूमाइ सिही न पज्जलइ ॥

एक वियोगिनी ने प्रियतम के जाने के दिवसों को दीवाल पर रेखा खींच कर चित्रित कर डाला है। उसकी विलकता का सजीव चित्रण यों है—

अज्जं गओत्ति अज्जं गओत्ति अज्जं गओत्ति गणरीए।
पढ़म व्विअ दिअ हद्धे कुड्डो रेहाहिं चित्त लिओ ॥

—गाथासप्तशतीः ॥३।८॥

मागधी प्राकृत में एक लोकगीत इस प्रकार है—

कि याशि धापशि पलाअशि पक्खलन्ती
वाशू पशीदग्ग मलिश्शि चिट्ठ दाव ।
कामेण दंभदि हु मे हडके तवश्शी
अंगाल लाशि पाडिदेइस मंश खराडे ।।

।। मृच्छकटिक ।।१।१८।।

हेमचन्द्र ने 'चूलका पैशाची'' में किये गये रुद्र के मार्मिक वर्णन का उल्लेख किया है—

पनमथ पनय-पकुप्पित गौली चल नग्ग पतिबिम्बं ।
तमसु नख-तप्पनेसुं एकातस तनु थलं लुद्दं ।।
नच्चन्तस्स य लीला-पातुवखेवेन कम्पिता वसुथा ।।
उच्छल्लन्ति समुद्दा सइला निपतन्ति तं हलं नमथ ।।

अपभ्रंश काल में लोकगींतों का उत्तरोत्तर विकास हुआ। उस समय के अनेक कथाग्रंथों में गाथाओं का उल्लेख आया है। सबसे पहले सिद्धों और संतों ने धार्मिक विचारों के प्रचारार्थ अपभ्रंश भाषा का प्रयोग किया। सिद्धों में सबसे पुराने हैं—सरह, जिनका काल डा० विनयतोष भट्टाचार्य ने अपनी पुस्तक 'बुद्धिस्ठ एसोटेरिज्म' में विक्रम संवत् ६९० माना है। सरह की एक रचना है जिसमें उन्होंने अंतस्साधना पर जोर डाला है और पंडितों को फटकारा भी है—

पंडित सअल सत्त बक्खाणइ ।
देहहि रुद्र बसंत न जाणइ ।।
अभणा गमणागतेन बिखंडिअ ।
तोवि णिलज्ज भणइ हउं पंडिअ ।।
जेहि मन पवन न सँचरइ, रवि ससि नाहि पवेस ।
तहि वट चित्तबिसाम करु सरेहो कहिअ उदेस ।।

जैनाचार्य हेमचंद के (संवत् ११५०-९९) 'सिद्ध हेमचन्द्र शब्दानुशासन' में कुछ प्राचीनतम अपभ्रंश के दोहे हैं—

भल्ला हुआ जु मारिया बहिणी महारा कंतु ।
लज्जेजं तु वयंसिअहु जइ भग्गा घरुएं तु ।।
जइ सो न आवइ, दुइ । घरु काइं अहोमुहु तज्झु ।
वयणु ज खंडइ तउ सहि ए । सो पिउ होइ न मज्झु ।।

मेरुत्तुंग ने (सं० १३६१) अपनी पुस्तक 'भोज-प्रबंध' में कहीं-कहीं अपभ्रंश के पद्य भी दिये हैं जो पूर्वकाल से चले आ रहे थे। कुछ दोहे तो राजा भोज के चाचा मुंज के कहे हुए हैं जो अपभ्रंश के पुराने नमूने कहे जा सकते हैं—

बाँह विछोड़वि जहि तुहुँ, हउं तेवइं का दोसु।
हिअयट्ठिय जइ नीसरहि, जाणउं मुंज सरोसु॥

भक्त सूर ने भी ठीक ऐसा ही लिखा है—

बाँह ममोड़े जात हों, निबल जानि के मोहि।
हृदय से जब जाइहों, सबल सराहों तोहि॥

विक्रम की पन्द्रहवीं शताब्दी के मध्य तक अपभ्रंश की परम्परा चलती रही। मिथिला के एक ही कवि विद्यापति ने पुरानी अपभ्रंश भाषा तथा बोल-चाल की देशी भाषा का प्रयोग किया है—

देसिल बअना सबजन मिट्ठा।
तें तैसन जंपओं अवहट्ठा॥

देश भाषा में रचित चंदवरदाई के (सं० १२२५-४९) पृथ्वीराज रासो का 'पद्मावती समय' कम मोहक नहीं—

मनहुं कला ससभान कला सोलह सो बन्निय।
बाल बैस ससिता समीप अम्रित रस पिन्निय॥
बिगसि कमल-स्रिग, भ्रमर बेनु खंजन मृग लुट्टिय।
हीर कीर अरु बिम्ब मोति नखसिख अहि घुट्टिय॥

राजा शिवसिंह के दरबार में विद्यापति सं० १४६० में रहते थे। उन्होंने मैथिली में मधुर गीत लिख कर रस की धारा बहा दी है—

सरस बसंत समयभल पावलि, दछिन पवन बह धीरे।
सपनहुँ रूप बचन इक भाषिय, मुख सँ दूरि करु चीरे।
तोहर बदन सम चाँद हौअथि नहि,कैयो जतन बिह केला।
कै बेरि काटि बनावल नव कै, तैयो तुलित नहिं भेला॥

उपर्युक्त उद्धरणों से यह भलीभाँति विदित होता है कि लोकगीतों की परम्परा प्राचीन काल से ही चली आ रही है। लोकगीतों के संकलन का संक्षिप्त इतिहास यह बताता है कि अभी तक कहाँ तक संकलन और अध्ययन का कार्य सम्पन्न हुआ है।

लोकसाहित्य-संकलन[1]

अंग्रेजी—लोकगीतों की महत्ता और उपयोगिता पर पाश्चात्य देशों में सत्रहवीं शताब्दी में ही ध्यान आकृष्ट हुआ था। जैसा कि जॉन आंब्रे ने सन् १६८७ ई० में अपनी पुस्तक 'रिमेन्स आफ जैण्टिलस्मे एण्ड गुडाइज्म' में लिखा है। वह पुस्तक सन् १८८१ ई० में प्रकाकित हुई। उन्नीसवीं शताब्दी में विशप पेरी ने इस सम्बन्ध में चर्चा की और ग्रिम ने थोड़ा वैज्ञानिक रूप भी दिया। कौक्स और मैक्समूलर ने वैदिक साहित्य का अध्ययन किया। टेलर ने इसका अनुसंधान-कार्य किया। जेम्सफ्रेजर ने सन् १८९० ई० में 'दी गोल्डेन बाउ' लिखकर लोकगीतों के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न करदी जिसकी लहर पौर्वात्य देशों में भी फैली।

उन्नसवीं शताब्दी के मध्य में जब अंगरेजों ने भारतीय शासनसूत्र को भलीभाँति हस्तगत कर लिया तो जन-मानस और भारतीय संस्कृति के अध्ययन की दृष्टि से लोकसाहित्य का संकलन भी कुछ अंगरेज विद्वानों ने प्रारम्भ किया। १८ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध सन् १७८४ ई० में कलकत्ते में सर विलियम जोन्स के प्रयत्न से 'एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल नामक शोध संस्थान की स्थापना हो चुकी थी। १९ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में जो अंग्रेज सिविलियन यहाँ शासन करने के लिए आये उनमें से अधिकांश योग्य शासक होने के साथ गंभीर विद्वान भी थे। वे हमारी संस्कृति और हमारे देश के प्राचीन इतिहास की खोज करना चाहते थे। इसी दृष्टि से लोकगीतों का संकलन प्रारंभ किया गया। इस दिशा में अँग्रेज सिविलियन और ईसाई मिशनरी इस देश की विभिन्न भाषाओं एवं साहित्यों का अध्ययन कर जनता से संपर्क स्थापित करना चाहते थे, क्योंकि ईसाई धर्म प्रचार के लिए साधारण जनता की भाषा और साहित्य को जानना उनके लिए आवश्यक था।

कर्नल जेम्स टाड के 'एनल्स एण्ड एण्टिक्विरीज आफ राजस्थान' (१८२९ ई०) से यह कार्य शुरू हुआ। जे० ऐबट ने १८५४ ई० में पंजाबी लोकवीतों तथा लोककथाओं पर लेख प्रकाशित किया। सी० आई० गोवर की सन् १८९२ ई० में प्रकाशित पुस्तक 'फोक साँग्स आफ सदर्न इण्डिया' लोकगीतों का संकलन है। यह भारतीय लोकगीतों का सर्वप्रथम संग्रह है। यह महत्वपूर्ण पुस्तक है। इसमें तमिल, तेलुगु, कन्नड़ मलयालम, बड़गा कूरल

---

१ **श्याम परमार : भारतीय लोक साहित्य, पृष्ठ २२-३४ : संक्षिप्त रूप।**

कुर्ग के लोक गीतों का संकलन और उनका अंगरेजी में अनुवाद दिया गया है। रेवेरेंड एस० हिस्लप ने मध्य प्रदेश की जंगली जातियों के बारे में लिखा। सन् १८६६ ई० में टेम्पल महोदय के प्रयत्न से रेवरेण्ड एस० हिस्लप के मध्य प्रदेश तथा मध्य भारत के आदिवासी सम्बन्धी लेखों का प्रकाशन हुआ जिनमें कुछ मूल लोककथाएँ भी आयी हैं। सन् १८६८ ई० में मिस फेयरे की कहानियों का एक संग्रह 'ओल्ड डेकन डेज' के नाम से निकला। सन् १८७२ ई० में डाल्टन ने डिस्क्रिप्टिव एन्थनालाजी ऑफ बंगाल प्रकाशित किया। इसी वर्ष आर० सी० कालबेल ने 'तमिल पपुलर पोयट्री' नामक अपना लेख प्रकाशित किया जिसमें तमिल लोकगीतों पर प्रकाश डाला गया है।[1] सन् १८७६ में एफ० टी० कोल ने राजमहल में निवास करने वाली पर्वतीय जातियों के लोकगीतों के सम्बन्ध में लिखा।[2]

इसी समय डैमण्ड ने 'इण्डियन ऐंटी क्वेरी' में बंगाल की लोककथाओं का प्रकाशन प्रारम्भ किया। १८८२ ई० तरुदत्त कवयित्री ने (बंगाल) 'ऐंशेंट बैलेडस ऐंड लीजेंडस आफ हिन्दुस्तान' प्रकाशित किया। सन् १८८३ ई० लालबिहारी दे की पुस्तक 'फोक टेल्स आफ बंगाल' छपी, उसके पश्चात् बंगाल पीजेंट लाइफ भी। सन् १८८४ ई० में टेम्पल की 'लीजेंडस ऑफ दी पंजाब' तीन भागों में प्रकाशित हुई। श्रीमती एफ० ए० स्टील के सहयोग से उन्होंने 'अवेक स्टोरीज' भी प्रकाशित (सन् १८८५) में की। इसो वर्ष ई०जे०राबिन्सन का टेल्स ऐंड पोयम्स ऑफ साउथ इण्डिया प्रकाशित हुआ।

सन् १८८४ ई० में ग्रियर्सन ने 'सम बिहारी फोक साँग्स' और दो वर्ष वाद 'सम भोजपुरी फोक साँग्स' प्रकाशित किये। सन् १८८४ ई० में विजयमल की लोकगाथा को बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी पत्रिका में उन्होंने प्रकाशित किया और उनका सन् १८८५ ई० में 'साँग ऑफ आल्हाज मैरेज' इण्डियन ऐंटिक्वेरी में छपा और इसी वर्ष 'टू वर्शन्ज आफ दि साँग ऑफ गोपीचन्द' भी उसमें प्रकाशित कराया। उन्होंने बिहार 'पीजेंट लाइफ' नामक ग्रन्थ भी लिखा। नटेश शास्त्री की 'फोक लोर इन सदर्न इंडिया' छपी। सन् १८९० ई० में डब्ल्यू क्रुक ने 'नॉर्थ इंडियन नोट्स एण्ड क्वेरीज' नाम की पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया, इन्होंने १८९६ में पापुलर रिलिजन एण्ड फोकलोर

---

१ **इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, भाग १, पृष्ठ ९७-१०३**

२ **दि राजमहल हिलमेंस साँग, भाग ५, पृष्ठ २२१-२२**

ऑफ नॉदर्न इण्डिया' प्रकाशित किया जिसमें टोने, टोटके, भूतप्रेत, रीति-रिवाज का विवेचन है।

कुछ दिनों बाद कैम्बेल और नौलीज ने संथाल और काश्मीर की कहानियाँ संग्रह करना शुरू किया। आर० सी० मुखर्जी की 'इंडियन फोकलोर' श्रीमती डूकोर्ट की 'शिमला विलेज टेल्स,' रेवरेण्ड सी० स्वीनटर्न की 'रोमांटिक टेल्स फ्रोम पंजाब' आदि लोक कथाएँ प्रकाशित हुईं। सन् १६०६ ई० में श्री जी० एच० बोम्पस ने रेवरेण्ड ओ० बौडिग द्वारा संकलित संथाली कहानियों का अनुवाद प्रकाशित कराया। एम० कुलक की 'बंगाली हाउस होल्डटेल्स' और शोभना देवी की 'ओरियंट पर्ल्स' पुस्तकें प्रकाशित हुईं। पार्थर का 'विलेज फोक टेल्स ऑफ सीलोन' तीन भागों में प्रकाशित हुआ। टानी ने कथा सरित्सागर का अनुवाद किया और जिसका पेंजर ने सम्पादन किया। उसका स्थान लोकवार्ता में कम महत्वपूर्ण नहीं। रामस्वामी राजु का इंडियन फेबुल्स, जी० आर सुब्रह्मण्यम पंतुलु का फोकलोर ऑफ दी तेलुगु, दिनेशचन्द्र चन्द्रकुमार का इस्ट बंगाल बैलेडस, आर० ई० एन्थावेन का 'फोकलोर ऑफ बाम्बे' और 'फोकलोर नोटस ट्राइब्स एण्ड कास्टस ऑफ बाम्बे' प्रकाशित हुए। ग्रियर्सन ने 'लिंग्विस्टिक सर्वे आँफ इण्डिया' में सन् १६०७-८ : कुछ मूल गीतों को अनुवाद सहित प्रस्तुत किया है। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त 'इंडियन हिस्टोरिकल क्वाटरली', 'जनरल ऑफ रायल एशियाटिक सोसायटी', 'इंण्डियन ऐंटिक्वेरी', 'नार्थ इडिया नोटस एण्ड क्वेरी, बिहार उड़ीसा रिसर्च सोसायटी जनरल' में प्रकाशित विनय मोहन सरकार, डैमेंट, कुक ज़े० एच० नालीज, बोम्पस, बोडिंग, ब्लूमफील्ड शरतचन्द मित्र, पेंजर, ग्रियर्सन, जोगेन्द्रनाथ, हॉपमैन, ब्राउन आदि के लेख बहुत उपयोगी हैं। अमेरिकन विद्वान मारिस-ब्लूमफील्ड, नार्मन ब्राउन, रुथार्टन, एम० वी० ऐमेन्यू और रूसी विद्वान शोकोलव ने लोकसाहित्य के अध्ययन में महत्वपूर्ण कार्य किया है।

अन्य प्रान्तीय भाषाओं में जो लोक साहित्य सम्बन्धी कार्य हुए हैं, (विशेषतया गुजराती, बंगला, पंजाबी, मराठी) वे सराहनीय हैं।

गुजराती—गुजराती में झवेरचन्द मेघाणी द्वारा सम्पादित 'रढ़ियाली रात' (३ भाग) 'चुन्दड़ी' (दो भाग) तथा 'लोक साहित्य' रणजीत राय मेहता द्वारा लिखित 'लोक गीत' और नर्मदाशंकर द्वारा संग्रहीत 'नागर स्त्रियों मा गावता गीत' विशेष उल्लेखनीय हैं।

बंगला—बंगला में 'खूकूमणीर छड़ा' (योगीन्द्रनाथ सरकार) 'बंगलार व्रत' (अवनीन्द्रनाथ ठाकुर १९१९) 'हारामणि' (महम्मद नासुरुद्दीन) और 'बंगलार बाउल' (जासीमुद्दीन) हैं।

पंजाबी—पंजाबी में 'पंजाब दे गीत' (रामशरण दास) गिद्धा (देवेन्द्र सत्यार्थी, १९३६)

मराठी—मराठी में 'स्त्री जीवन' (साने गुरुजी) 'साहित्याचें मूलधन' (वामण चोरघड़े) अपौरुषेय वांगमय (कमला बाई देशपांडे) 'वरहाड़ी लोक गीतें' (गोरे) 'लोकगीतें व लोककथा' (जोशी) 'लोक साहित्याचें लेणों' (मालती दाण्डेकर) और का० न० केलकर द्वारा संकलित ऐतिहासिक पोवाडे, कु० दुर्गा भार्गव तथा डा० सरोजिनी बाबर के फुटकर लेख बड़े उपयोगी हैं।

डा० बी० रामराजु ने 'तेलुगु जनपद गेयुलु' पर शोध प्रबन्ध लिखा है। नन्दूरी गंगाधरन ने तेलुगु लोकगीतों का संकलन किया है। के० बी० जगन्नाथम ने तमिल लोक कथाओं के दो संग्रह और गोपाल पिल्लई ने मलयालम लोकगीत संग्रहीत कर प्रशंसनीय कार्य किया है।

हिन्दी—मन्नन द्विवेदी ने 'सरवरिया' नामक पुस्तक में गोरखपुर जिले के गीतों का छोटा-सा संग्रह सन् १९१३ ई० में प्रकाशित किया था। लाला संतराम ने सरस्वती में उन्हीं दिनों 'पंजाबी लोकगीत' प्रकाशित कराये जिनका संवर्द्धित संस्करण सन् १९२५ ई० 'पंजाबी गीत' के नाम से प्रकाशित हुआ जिससे पं० रामनरेश त्रिपाठी प्रभावित हुए और सन् १९२६ ई० के पश्चात् वे लोकगीतों के संकलन में जुट गये। उन्होंने 'कविता कौमुदी' (पाँचवाँ भाग) 'हमारा ग्राम साहित्य' तथा 'मारवाड़ी गीत संग्रह' को प्रकाशित कराया। सन् १९३० ई० के पश्चात् श्री देवेन्द्र सत्यार्थी ने भी लोकगीतों की खोज में कठोर परिश्रम किया और करीब तीन लाख गीतों का संग्रह किया। सन् १९२७ ई० से सन् १९४२ ई० तक सत्यार्थी जी इस संकलन में व्यस्त रहे।

सन् १९४२ ई० तक प्रथमोत्थान के पश्चात् लोकगीतों के प्रति हिन्दी में एक नयी चेतना आयी। पं० बनारसीदास चतुर्वेदी की 'विकेन्द्रीकरण योजना' तथा डा० वासुदेवशरण अग्रवाल की 'जनपद-कल्याणी-योजना' प्रेरणादायी सिद्ध हो रही थीं। राहुल सांकृत्यायन ने हंस में (सितम्बर ४३) 'मातृभाषाओं का प्रश्न' नाम का लेख लिखा और श्री शिवदान सिंह चौहान

की प्रान्तीय भाषाओं पर निबन्ध रूप में लिखी गयी रिपोर्ट छपी और इनसे वैज्ञानिक दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से झलक उठा।

दूसरे उत्थान में लोक संस्कृति के अध्ययन और लोक साहित्य के संकलन के निमित्त कुछ जनपदीय संस्थाएँ खोली गयीं। ब्रज में 'ब्रज साहित्य मंडल' मथुरा, गढ़वाल में 'गढ़वाली साहित्य परिषद्' बघेल खण्ड में 'रघुराज साहित्य परिषद्' बुन्देलखण्ड में 'लोकवार्ता साहित्य' टीकमगढ़, ईसुरी परिषद्, झाँसी, भोजपुर में 'भोजपुरी लोक साहित्य परिषद्' शार्दूल राजस्थानी रिसर्च इंस्टिच्यूट, बीकानेर, राजस्थान रिसर्च सोसाइटी कलकत्ता, राजस्थान साहित्यसमिति, बिसाऊ मरुभारती, पिलानी, प्रयाग में 'अखिल भारतीय मैथिली साहित्य परिषद्' राजस्थान में 'भारतीय लोक कला मण्डल', उदयपुर तथा मालव 'लोक-साहित्य परिषद्' इस दिशा में अग्रसर हैं। देश में लोक-साहित्य एवं संस्कृति की रक्षा के लिए प्रयाग में सन् १९५८ ई० में 'भारतीय लोक संस्कृति-शोध-संस्थान' की स्थापत की गयी। इसके द्वारा 'लोकसंस्कृति' नामक त्रैमासिक पत्रिका प्रकाशित हो रही है। इसमें एक 'लोककला संग्रहालय' भी खोला गया है। इसके द्वारा लोक साहित्य के विद्वानों का परिचय और लोक साहित्य तथा लोक संस्कृति सम्बन्धी पुस्तकों का विवरण भी प्रकाशित होने जा रहा है। इस द्वितीय उत्थान में लोकगीतों का संकलन शास्त्रीय अध्ययन, अनुशीलन युक्त लोकगीतों का संकलन और भावात्मक रूप से लोकगीतों पर लिखे लेखों का विशेष महत्व है।

द्वितीय उत्थान के अर्द्धशतक में हिन्दी प्रदेश की वर्तमान बोलियों के जो गीत संग्रह हिन्दी में प्रकाशित हुए हैं वे मुख्यतया यों हैं—

मारवाड़ी

खेताराम माली : मारवाड़ी गीत संग्रह।

मदनलाल वैश्य : मारवाड़ी गीत संग्रह।

निहालचन्द वर्मा : मारवाड़ी गीत।

ताराचन्द ओझा : मारवाड़ी स्त्री गीत संग्रह।

जगदीशसिंह गहलोत : मारवाड़ के ग्राम गीत।

राजस्थानी

नरोत्तम स्वामी : राजस्थान रा दूहा।

सूर्यकरण पारीक, ठाकुर रामसिंह : राजस्थान के लोक गीत।

नरोत्तम स्वामी : राजस्थान के ग्राम गीत।

भोजपुरी

कृष्णदेव उपाध्याय : भोजपुरी ग्राम गीत, दो भाग।

दुर्गाशंकर प्रसादसिंह : भोजपुरी लोक गीतों में करुण रस।

मैथिली

रामइकबालसिंह 'राकेश' : मैथिली लोक गीत।

बंगला

कृपानाथ मिश्र, रामनरेश त्रिपाठी : कविता कौमुदी (बंगला) सातवाँ भाग।

छत्तीसगढ़ी

श्यामाचरण दुबे : छत्तीसगढ़ी लोकगीत।

बुन्देलखण्डी

कृष्णानन्द गुप्त : इसुरी की फागें।

मालवी

श्याम परमार : मालवी लोकगीत।

ब्रजभाषा

सत्येन्द्र : ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन।

नीमाड़ी

रामनारायण उपाध्याय : नीमाड़ी ग्राम गीत।

कौरवी

राहुल सांकृत्यायनः आदि हिन्दी की कहानियाँ और गीतें।

जिन क्षेत्रीय भाषाओं के समुदाय में अब तक लोक साहित्य पर जो कार्य हुए वे यों हैं—[1]

समुदाय	बोलियाँ या भाषाएँ
(१) मागधी समुदाय	(१) मैथिली (२) मगही (३) भोजपुरी
(२) अवधी समुदाय	(४) अवधी (५) बघेली (६) छत्तीसगढ़ी
(३) ब्रज समुदाय	(७) बुन्देली (८) ब्रज (९) कनउजी
(४) राजस्थानी समुदाय	(१०) राजस्थानी (११) मालवी

१ **हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, षोडशभाग, ना० प्र० सभा, काशी सं० २०१७ वि०, पृष्ठ १७।**

(५) कौरव	(१२) कौरवी
(६) पंजाबी समुदाय	(१३) पंजाबी (१४) डोगरी
	(१५) काँगड़ी
(७) पहाड़ी समुदाय	(१६) गढ़वाली (१७) कुँमाऊँनी
	(१८) नेपाली (१९) कुलुई
	(२०) चंबियाली

इनका विवेचन मुख्यतः तीन दृष्टियों से किया गया है—

(१) अति सँक्षेप (२) मौखिक साहित्य (३) मुद्रित साहित्य ।

ऊपर के संकलन में गीतों के वैज्ञानिक विवेचन बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। भोजपुरी 'ग्राम गीत' की भूमिका ४५ पृष्ठों में प्रस्तुत करते हुए पं० बलदेव उपाध्याय ने गीतों के परिचय, भारतीय और पाश्चात्य परम्पराओं, गाने के ढंग आदि पर प्रकाश डाला है। रामइकबालसिंह 'राकेश' ने भी मैथिली लोकगीतों की भूमिका में अपनी दूरदर्शिता दिखायी है। सूर्यकरण पारीक ने ३२ पृष्ठों में राजस्थानी लोकगीतों का विवेचन-विश्लेषण वैज्ञानिक पद्धति से किया है। कृष्णानंद ने 'इसुरी की फागें' में लोककवि के जीवन और रचनाओं पर प्रकाश डाला है। डा० सत्येन्द्र ने ब्रजलोक साहित्य का वैज्ञानिक विवेचन प्रस्तुत किया है। डा० वासदेव शरण अग्रवाल और आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लोकगीतों के सम्बन्ध में अनेकों खोजपूर्ण निबंध लिखे हैं। इन संग्रहों के द्वारा लोकगीतों के वैज्ञानिक अध्ययन की नींव पक्की हो गयी और वैज्ञानिक दृष्टिकोण मिला।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण से और भी हिन्दी में लिखे गये ग्रन्थ हैं—श्री श्याम परमार के 'भारतीय लोकसाहित्य', श्री श्रीकृष्णदास की 'लोकगीतों की सामाजिक व्याख्या' श्रीमती सीतादेवी द्वारा लिखी गयी 'धूलधूसरित मणियाँ' और डा० कृष्णदेव उपाध्याय की 'लोक साहित्य की भूमिका'। इनके अतिरिक्त कुछ पत्रिकाएँ भी हैं—नारायणसिंह भाटी द्वारा संपादित 'परम्परा' का राजस्थानी लोकगीत अंक, सम्मेलन पत्रिका का लोकसंस्कृति अंक, 'आजकल' का 'लोक गीत' अंक, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी द्वारा सम्पादित 'जनपद' पत्रिका।

भावात्मक रूप से लिखे गये लोकगीतों के संग्रहों में केवल देवेन्द्र सत्यार्थी के ग्रंथ हैं—'धरती गाती है' (१९४८) 'धीरे बहो गंगा' (१९४८) 'बेला फूले आधी रात' (१९४९) और 'बाजत आवे ढोल' (१९५२)। संक्षेप में लोकगीतों के संकलन का यही इतिहास है।

उपर्युक्त अंगरेजी और हिन्दी में अभीतक लोकगीत सम्बन्धी जितने कार्य हुए हैं उनके विवरण का उल्लेख किया गया है। अब मैथिली लोकगीतों के सम्बन्ध में भी थोड़ा प्रकाश डाला जा रहा है—

मैथिली लोकगीतों के संकलन का इतिहास

मैथिली लोकगीतों के संकलन के दो भाग हैं—प्रकाशित संकलन और अप्रकाशित संकलन।

प्रकाशित संकलन

मिथिला में जितने भी लोकगीत हैं उनका संकलन और प्रकाशन पूर्णरूप से अभी तक न हो सका है। यहाँ पंजी (पीढ़ी दर-पीढ़ी वंशावली लिखने की प्रथा) लिखने की परम्परा प्राचीन काल से ही चली आ रही है। और संभवतः इसी की देखा-देखी मिथिला की उच्च और मध्य वर्ग की थोड़ी पढ़ी-लिखी कन्याएँ लोकगीतों को लिखकर अपने पास रखती रही हैं। उनके लिए ये लोकगीत ज्ञान और कला के भंडार की बड़ी पूँजी हैं। लेकिन यह तो संकलन का केवल प्रारम्भिक रूप ही है।

सर्व प्रथम ग्रियर्सन ने अपनी पुस्तक—'बिहारी फोक साँग्स',[१] 'बिहार पीजेंट लाइफ',[२] 'मैथिली क्रेस्टोमैथी',[३] 'बिहारी ग्रामर्स',[४] 'दीना भद्री क गीत' और नेबारक गीत आदि को प्रकाश में लाकर मैथिली लोकगीतों के संकलन की ओर ध्यान आकृष्ट किया था। लेकिन यह संकलन अँगरेजी में अनुवाद के रूप में प्रस्तुत किया गया था। यों तो सोहर, समदाउन, तिरहुति बटगमनी, नचारी, महेशवाणी, झूमर, बारहमासा आदि कुछ गीतों के संकलन का मुद्रण छोटी-छोटी पुस्तिकाओं के रूप में उससे पहले भी हो गया था। किन्तु समग्र संकलन पर किसी का ध्यान नहीं गया था। इसका कारण यह था कि मैथिली लोक-गीत केवल कुछ महिलाओं और कुछ पुरुषों के कंठों के भीतर ही बन्द थे। और वे त्योहार, विवाह-संस्कार के सुअवसर पर गाये जाते थे। उन गीतों को प्रकाश में लाकर उनकी महत्ता पर विचार करने की उत्कंठा किसी को भी नहीं हुई।

---

१ जनरल ऑफ दी रिसर्च एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता—१८८७

२ वही, कलकत्ता—१८८५

३ मैथिली लैंग्वेज आफ नौर्थ बिहार, भाग २, १८८२

४ वही, १८८७

कालान्तर में विभिन्न लोकगीतों के संकलन, सम्पादन की देखा-देखी श्रीराम इकबालसिंह 'राकेश' ने मैथिली लोकगीतों के संकलन के निमित्त मिथिला के गाँव-गाँव में घूमना प्रारम्भ कर दिया और उन्होंने विशालभारत,[१] माधुरी[२], हंस[३], विश्वमित्र[४] तथा पारिजात[५] में मैथिली लोकगीतों की विशेषताएँ सम्बन्धी महत्वपूर्ण लेख प्रकाशित कराये। उन्होंने मैथिली लोकगीतों पर एक पुस्तक लिखी जो संवत् १९९९ में हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग द्वारा प्रकाशित की गयी। इस पुस्तक में उन्होंने मैथिली लोकगीतों के विभिन्न रूपों का परिचय देते हुए उनके भावार्थ की मार्मिकता पर प्रकाश डाला और लोगों को मैथिली लोकगीतों की विशेषताओं की ओर आकर्षित करते हुए उनकी उपादेयता बढ़ायी।

मिथिला मिहिर (राज प्रेस, दरभंगा), मिथिला-दर्शन (कलकत्ता) वैदेही (लालबाग, दरभंगा) आदि पत्रिकाओं में भी समय-समय पर मैथिली लोकगीतों के महत्व सम्बन्धी लेख प्रकाशित होते रहे हैं और धीरे-धीरे लोगो में मैथिली लोकगीतों की उपयोगिता के प्रति अभिरुचि जगती रही है।

कालिकुमार दास ने अपनी पुस्तक मैथिली गीतांजलि में मैथिली लोकगीतों का संकलन किया[६]। प्राचीन ताल-पत्र के आधार पर पं० जीवानंद ठाकुर ने १९५० ई० में 'मैथिल डाक' नामक पुस्तक लिखी[७]। इसमें उन्होंने डाक का

---

१ मैथिली ग्राम गीत : विशाल भारत कलकत्ता, जून १९३७। मैथिली लोक-साहित्य के कुछ अज्ञात कवि और उनके गीत, सितम्बर १९३९

२ मैथिली ग्राम साहित्य, फरवरी १९४०, मैथिली ग्राम साहित्य में करुण रस, जून १९३९

३ मधुश्रावणी, जून ४०, बटगमनी दिसम्बर १९३९, लोकगीत एक अध्ययन फरवरी ४०

४ जब वे विदा होती हैं, नवम्बर १९५१ ई०

५ लोक नृत्य और गीत, नवम्बर और दिसम्बर ४६
लोक कला की पगडंडी, फरवरी ४७

६ प्रकाशिका श्रीमती देवकी देवी, कन्या पाठशाला, भक्षी, मधुबनी (दरभंगा) द्वितीय संस्करण १९४०

७ जीवानंद ठाकुर : मैथिल डाक, प्रकाशक : मैथिली साहित्य परिषद्, दरभंगा, १९५०

मिथिला के निवासी होने का प्रमाण पुष्ट किया है और विशुद्ध डाक-वचन का विवेचन भी किया है। डा० जयकान्त मिश्र ने सन् १९५० ई० में अँगरेजी में इण्ट्रोडक्शन टु दी फाक लिटरेचर ऑफ मिथिला दो भागों में प्रकाशित कराया। इसके पद्य भाग में उन्होंने मैथिली लोकगीतों के वैज्ञानिक कार्य की ओर संकेत किया और उनका वर्गीकरण भी वैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया[1]। इदारा तालीम व तरक्की जामिआ, दिल्ली के द्वारा मैथिली लोकगीतों का छोटा-सा संग्रह सन् १९५१ई० में प्रकाशित किया गया। श्री नन्दीपति दास ने बाललोकगीत संबंधी 'नेना भुटका' नाम की एक पुस्तक सम्पादित की जो पुस्तक भंडार, पटना से प्रकाशित हुई। इसमें कुछ लोककथाएँ भी सम्पादित की गयी हैं जो बालकों के लिए बहुत उपयोगी हैं। ग्रंथालय प्रकाशन दरभंगा की ओर से श्री बदरीनाथ झा ने मैथिली लाकगीतों का संग्रह 'मैथिली गीत-रत्नावली' नाम से प्रकाशित कराया। इसमें प्राचीन से आधुनिक मैथिली लोकगीतों का क्रमिक संकलन है। सन् १९४९ में पब्लिकेशन डिवीजन, भारत सरकार के द्वारा 'हिन्दो की प्रादेशिक भाषाएँ" नामक छोटी पुस्तिका में श्री रामवृक्ष बेनीपुरी का भाषण 'मैथिली' नाम से प्रकाशित हुआ जिसमें मैथिली लाकगीतों की सरसता पर प्रकाश डाला गया था। श्रीमती जगदम्बा देवी ने (ग्राम-बलाट, पोस्ट-रामपट्टी, दरभंगा) समाज सुधार' में (स्त्री-धर्म-शिक्षा भाग २) कुछ संस्कार सम्बन्धी मैथिली लोकगीतों का संग्रह (सन् १३४७ साल फसली में) प्रकाशित कराया।

पं० बलदेव मिश्र और पं० ऋद्धिनाथ झा ने 'विहुलागीत' और 'कुमर ब्रजभान' के गीतों को मुद्रित कराया[2]। अपनी 'व्यवहार विज्ञान' पुस्तक में पं० भैरवनाथ झा ने मिथिला के रीति-रिवाज का अध्ययन मैथिली लोकगीतों के आधार पर प्रस्तुत किया।[3] संवत् १९९१ में पं० बलदेव मिश्र ने रागतरंगिनी को (लोचनकृत) राजप्रेस, दरभंगा से प्रकाशित कराया। इस पुस्तक से मैथिली के प्राचीन कवियों तथा लोकगीतकारों के समय और रचनाओं पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।

---

१ **डा० जयकान्त मिश्र : इण्ट्रोडक्शन टु दी फोक लिटरेचर आफ मिथिला, भाग १ व २ सन् १९५० ई०**

२ **प्रकाशक : बाबू रघुवरसिंह बुकसेलर, मधुबनी, दरभंगा।**

३ **प्रकाशक : श्री भैरवनाथ झा, चन्द्रनगर, क्यौढ़ी, राँटी, मधुबनी, दरभंगा।**

बाबू रघुवरसिंह बुकसेलर ने (मधुबनी, दरभंगा) तिरहुत गीत संग्रह को चार भागों में प्रकाशित किया। श्री भोला झा ने मिथिला गीत संग्रह को भी चार भागों में प्रकाशित कराया[1]। बम्बई पुस्तक प्रकाशन मंदिर ने (मधुबनी, दरभंगा) सोहर, समदाउन महेशवाणी नाम से पुस्तकें प्रकाशित कीं। सिया त्रिलोक शरण 'रूप लता' की अनमोल संकीर्तन नामक पुस्तिका प्रकाश में आयी[2]। 'स्नेह लता' ने वैदेही विवाह-संकीर्तन' प्रकाशित कराया[3]। बथुआ के (दरभंगा) श्री गोनर गिरि ने हिन्दू काड बिल पर नये-नये लोकगीत लिखा, जिन पर सिनेमा के गीतों का प्रभाव है। इसी प्रकार बथनाहा (मुजफ्फरपुर) के श्री मथुरा प्रसाद साह ने पंचमी मेला नाम की छोटी पुस्तिका लिखी जो सन् १९५४ में छपी। बहादुरपुर के (दरभंगा) जनाब मोहम्मद मुसा साहिब ने 'नवीन कीर्त्तन धुन सिनेमा' नाम की पुस्तक प्रकाशित करायी। 'नया जमाना के गाने' में सिनेमा के तर्ज पर श्री अमरनाथ शर्मा ने (राम नगर, मुजफ्फरपुर) कुछ मैथिली लाकगीतों को भी सम्मिलित किया। श्री अब्दुल रहमान ने (सरौती, घोंघरडीहा, दरभंगा) बेढब जमाना नाम की अपनी पुस्तक में समाज सुधार सम्बन्धी कुछ मैथिली लाकगीतों को लिखा।

अप्रकाशित संकलन

पं० जयगोविन्द मिश्र (विष्णुपुर, झंझारपुर, दरभंगा) और श्री लक्ष्मी-पतिसिंह ने (मधेपुरा, दरभंगा) मैथिली लाकगोतों का बहुत अच्छा संकलन किया है। श्री राधाकृष्ण चौधरी ने (रामपट्टी, लहेरिया सराय, दरभंगा) कोशी गीतों का संग्रह किया है। डा० ब्रजकिशोर वर्मा ने (बहेड़ा, दरभंगा) मैथिली कथागीतों का संकलन बड़े ही परिश्रम से किया है और वैज्ञानिक अध्ययन भी प्रस्तुत किया है। श्री हरिकान्त लाल ने (निमैठी, दरभंगा) मिथिला के निम्न वर्गों में प्रचलित लोकगीतों का संकलन किया है। श्री पूर्णानंद दास ने (डखराम, दरभंगा) मैथिली लोककाव्यों का खोजपूर्ण संग्रह उपस्थित किया है। श्री पंचानन चौधरी ने (मोहद्दी नगर, पोस्ट-अमरपुर, भागलपूर) विभिन्न प्रकार के मैथिली लोकगीतों का संग्रह तैयार किया है और मुजफ्फरपुर के

---

१ **प्रकाशक : कन्हैयालाल कृष्णदास, राजप्रेस, दरभंगा।**

२ **प्रकाशक : लोकबंधु पुस्तकालय, जनकपुर रोड, मुजफ्फरपुर।**

३ **प्रकाशक : श्री किशोरी कीर्त्तन समाज, लोकबन्धु पुस्तकालय, जनकपुर रोड, मुजफ्फरपुर।**

श्री सत्यनारायण अष्ठाना ने भी। डा० लक्ष्मण झा के (रसियारी, दरभंगा) पास मैथिली लोकगीतों का अच्छा संकलन है।

कुछ संस्थाओं द्वारा मैथिली लोकगीतों का संकलन

अखिल भारतीय मैथिली साहित्य परिषद, प्रयाग, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, मिथिला रिसर्च इन्स्टीच्यूट, दरभंगा आदि प्रसिद्ध संस्थाओं ने भी मैथिली लाकगीतों के संकलन की ओर ध्यान दिया है। मैथिली लोकगीतों के संकलन का यही संक्षिप्त इतिहास है। जहाँ तक संकलन की प्रणाली है, उसकी दृष्टि से ऋतुओं के अनुसार ही मिथिला के गाँवों में घूमने से प्रमुख व्यक्तियों द्वारा मैथिली लोकगीत उपलब्ध हो सकते हैं।

उपर्युक्त विवरण के अनुसार आज के वैज्ञानिक युग में मानव-जीवन और साहित्य में लोकगीतों का क्या स्थान हो सकता है, इस पर भी थोड़ी विवेचना करना समीचीन जान पड़ता है—

लोकगीतों का साहित्य में स्थान

शिष्ट साहित्य किसी विशिष्ट उद्देश्य से अथवा परिस्थिति के कारण रचा जाता है। अतः यह स्वाभाविक है कि उसमें हृदय-पक्ष की अपेक्षा मस्तिष्क पक्ष की प्रबलता और प्रधानता रहती है। अलंकारों और छन्दशास्त्र के बन्धन में पड़ कर उसमें स्वाभाविकता की कमी हो जाती है। शिष्टसाहित्य को समस्त जनता का साहित्य नहीं कहा जा सकता, क्योंकि वह केवल पढ़े-लिखों तक ही सीमित रहता है। उसमें भाषा की जटिलता आ जाती है, सरलता नहीं रहती। उसमें विचारों की प्रधानता रहती है। इसी से उसमें स्थायित्व नहीं रह पाता। लेकिन लोकगीतों की जो सबसे बढ़कर विशेषता है वह उनमें सन्निहित रस है। यही कारण है कि लोकगीत शिक्षित और अशिक्षित वर्ग के हृदय में स्पन्दन एवं कम्पन जगाने की क्षमता रखते हैं। हृदय को छूने की उनमें स्वाभाविक शक्ति होती है।

लोकगीतों का आरम्भ मानव-विज्ञान के साधन के रूप में यूरोप में उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक होता रहा। जब यूरोप के विद्वानों ने आदिम जातियों के विश्वासों, रीति-रिवाजों, रहन-सहन की प्रणालियों का अध्ययन करना शुरू किया तो उसके द्वारा उन्हें आधुनिक सभ्यता से उत्पन्न समाज की व्यवस्था को परखने के लिए प्रेरणा भी मिली। इससे मानव तथा समाज विज्ञान की खोज हुई और इसके साथ भाषा-विज्ञान की भी। यह स्पष्ट है कि धरती की भावना लोकगीतों के द्वारा परम्परा से अभिव्यक्त होती रही

है। अतः यदि साहित्य को इस धरती से सम्पर्क रखकर सरस सजीव बने रहना है तो उसे लोकगीतों के माध्यम से ही उद्भूत होना आवश्यक है। पं० रामनरेश त्रिपाठी के शब्दों में 'संस्कृत और हिन्दी के कवियों ने कविता देवी को इतने अलंकार पहना दिये हैं कि उनके बोझ से उसका रस रूपी प्राण निकल गया है। पर वे मुर्दे को अलंकार पहनाते ही जा रहे हैं।[1]

यदि साहित्य को शास्त्रीय परम्परा की बेड़ियों से मुक्त होकर जन-भूमि पर बहते रहना है, उसे समाज की धड़कन का निरूपण करना है तो उसे लोकगीतों की स्वाभाविक भावनाओं का अनुकरण करना ही होगा। आज कृत्रिम सभ्यता के कारण मानव के जीवन में हृदय और मस्तिष्क में कोई सामंजस्य नहीं रह गया है। सभ्यता मस्तिक से और स्वाभाविकता हृदय से उद्भूत होती है। हृदय की भावना को छोड़ कर मस्तिष्क ज्ञान का आडम्बर रचता है। इस कृत्रिम सभ्यता का प्रभाव कविताओं पर विशेष रूप से पड़ा है। उनमें लोकगीतों की भाँति सरलता और स्वाभाविकता नहीं हैं। कविताएँ अलंकारों के बोझ से दब गयी हैं, उनका रस सूख गया है। लेकिन लोकगीतों में रस है। रस तो मानव के निमित्त स्वाभाविक तत्व है और अलंकार कृत्रिम हैं। रस का आस्वादन मानवमात्र कर सकता है। लेकिन अलंकार तो मुट्ठी भर उच्च वर्ग के लोगों के लिए ही हैं।

सदियों से मानव का मन भावों के लिए पिपासित है, विकल है। उसे तृप्त करने के लिए रस की आवश्यकता है और वह रस लोकगीतों में है। जनसाधरण से मौलिक सम्बन्ध विच्छेद कर कोई भी साहित्य जीवित नहीं रह सकता और न वह कुछ विद्वानों द्वारा निर्मित हो सकता है। साहित्य को रस की धारा लोकगीतों से ही मिल सकती है और संगीत की स्वरलहरी भी।

उपर्युक्त विवेचन के अनुसार यह मानना पड़ता है कि साहित्य में लोक गीतों का विशिष्ट स्थान है। समूह के बिना साहित्य का सृजन सम्भव नहीं और न लोकगीतों का ही। भाषा की जटिलता एवं अलंकार की प्रधानता के कारण कविताओं का उपयोग शिष्ट समाज में भले ही हो, किन्तु लोक समाज में उसका उपयोग नहीं के बराबर ही है। महात्मा गाँधीजी का कथन ठीक ही है कि 'वही काव्य और वही साहित्य चिरंजीवी रहेगा जिसे लोग

---

१ रामनरेश त्रिपाठी : कविता कौमुदी, भाग ५, पृष्ठ–६

सुगमता से पा सकेंगे, जिसे वे आसानी से पचा सकेंगे।'[1] अतः यदि साहित्य को समूह के साथ विकासगामी होना है तो उसे लोकसमाज से गठबन्धन करना होगा। उसके प्राण उसीसे अनुप्राणित और रसान्वित हो सकेंगे।

आज गाँव के घर-घर में लोकगीतों की गूँज न होती, उसके रस की मादकता जनता के हृदय को आनन्द विभोर नहीं करती तो संभवतः साहित्य को संस्कृति के प्रतीक बनने का श्रेय न मिल पाता और न मानव की मानवता ही सुरक्षित रह सकती। साहित्य लोकगीतों से अनुप्राणित-होकर स्वाभाविकता प्राप्त कर सकता है। वह रस का स्रष्टा बन सकता है, क्योंकि लोकगीत अपने आप में पूर्ण हैं, कृत्रिमता से दूर हैं।

---

१ महात्मा गांधीजी : मेरे समकालीन, पृष्ठ ५।

दूसरा अध्याय

मैथिली भाषा और उसकी भौगोलिक सीमा। उसके विविध रूप : पूर्वी और पश्चिमी मैथिली के भेदों और समानताओं पर प्रकाश। उस पर अन्य भाषाओं का प्रभाव।

२

मैथिली भाषा और उसकी भौगोलिक सीमा

मिथिला के विविध नाम

किसी भी प्रान्त की लोकभाषा का स्वरूप लोकगीतों में ही अविकल रूप में विद्यमान है और उसकी प्राचीनता का प्रमाण भाषा है। मैथिली लोकगीतों के अध्यन के पूर्व मैथिली भाषा की विशेषता और उसकी सीमा के विषय में थोड़ा विवेचन करना भी कम आवश्यक नहीं। इसी हेतु इस अध्याय में इसकी चर्चा की जा रही है। मिथिला के विभिन्न नाम से भी उसकी (मैथिली) प्राचीनता की झाँकी मिलती है। वृहद विष्णु पुराण में मिथिला के बारह नामों का उल्लेख है—

मिथिला तैरभुक्तिश्च वैदेही नैमिकानाम् ।
ज्ञानशीलं कृपापीठं स्वर्णलांगल पद्धतिः ॥
जानकी जन्मभूमिश्च निरपेक्षा निकल्मष ।
रामानन्दकरी विश्वभावनी ,नित्यमंगला ॥
इति द्वादश नामानि मिथिलायाः ।

किन्तु 'विदेह' 'मिथिला' तिरहुत (तीरभुक्ति) नाम ही अधिक व्यवहृत होते हैं। शतपथ ब्राह्मण में माधव विदेह और गोतम रहूगण की चर्चा की गयी है—

माध्यान्दिनीये शतपथ ब्राह्मणे, पृष्ठ—५२, का० १ अ० ४
'तर्हिव्विदेघो माथवऽआस । सरस्वत्या स ततऽएव
प्राडो दहन्ननीयायेमां पृथिवीं तं गौतमश्च राहूगणो
व्विदेघश्च्च माथव पश्च्चाद् दहन्त मन्नवीयतु
सऽइमा सर्व्वा नदीरतिदाह सदानीरेच्युत्तराद् गिरेर्निद्धविति
ता हैव ना तिदाह ता ह स्म तां पुरा ब्राह्मणा
न तरन्त्य नातेदग्धाग्निना व्वेश्वानरेणेति ॥१४॥
४।३।१।१४

गोतम रहूगण ऋग्वेद के मन्त्र द्रष्टा के रूप में पाया जाता है और उसके सूक्त में दक्षिण दिशा में प्रस्थान का संकेत भी मिलता है। ऋग्वेद में (सं० १ सू० ९०) उसका विश्वदेव से 'ऋजुनीतीनोयतु विद्वान्' और 'वि नः पथः के रूप में इन्द्रादि देवता से प्रार्थना करना उक्त घटना का सूक्ष्म संकेत है। सदानीरा नदी कोशल के पूर्व में है और विदेह के पश्चिम में। उसे ही आजकल गण्डकी भी कुछ लोग कहते हैं। ऋग्वेद में पर्वत का नाम आया है जिसे हिमालय का संकेत कहा जा सकता है—

यः पृथिवीं व्यथमानामदृंह्यः पर्वतान्प्र कुपितां अरम्णात् ।
यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो वो आमस्तभात्स जनास इन्द्रः ॥
२।२।१२

इस नामहीन भूमि की सीमा सदानीरा तथा हिमालय द्वारा निश्चित हो जाती है। माथव विदेह के सम्बन्ध में शतपथ ब्राह्मण में (१।१।४) यह बताया गया है कि उन्होंने अपने मुख में अग्नि को छिपा रखा था। गौतम रहूगण उनके पुरोहित थे। उन्होंने माधव विदेह को पुकारा। मुख में अग्नि रहने से बोल न सके। तब उन्होंने उन्हें 'वीति होत्र' मंत्र से बुलाया। उत्तर न मिलने पर 'तत्वा घृतस्नवी महे' मन्त्र से जब आह्वान किया तो घृत के नाम सुनते ही अग्निदेव माथव विदेह के मुख में नहीं टिक सके और बाहर निकल पड़े और पूर्व की ओर आगे बढ़े। उनके पीछे-पीछे माथव और रहूगण चले। नदियों के कारण उधर की भूमि दलदल बन गयी थी। अग्निदेव ने भूमि को सुखा कर कठोर बना दिया। कोशल की सीमा पर बहने वाली नदी सदानीरा ही केवल जलपूर्ण रह सकी। अग्निदेव के आदेशानुसार माधव विदेह और गौतम रहूगण सदानीरा के पूर्व की भूमि में जा बसे

और उन्होंने असंख्य होम किये। इस उदाहरण से यह स्पष्ट है कि मिथिला का 'विदेह' नाम कम प्राचीन नहीं है।

विदेह वंश के एक राजा का नाम मिथि था। उसने इस भूमि के प्रत्येक भाग में अश्वमेध यज्ञ किया था। अतएव प्राचीनकाल से ही यह भूमि पवित्र मानी गयी है।[१] मिथिला विदेह की राजधानी थी।[२] बाल्मीकि रामायण में मिथिला का नाम आया है।[३] भागवत पुराण में यह चर्चा की गयी है कि विदेह ने निमि महाराज का (मिथिला के आदि महाराज) यज्ञ महर्षियों द्वारा समाप्त करा कर निमि के वंश तथा राज्य के रक्षार्थ उनके मृतक शरीर को मथित कर 'मिथि' नामक पुत्र उत्पन्न किया।[४] स्कन्द पुराण के हिमवत खण्ड में मिथिला का नाम वर्णित है।[५] अष्टाध्यायी में पाणिनि ने लिखा है। 'मिथिला दयश्च। उण्। १।५८। मथ् इलच। मथ्यन्ते शत्रवो अस्याम्।' यानी जहाँ शत्रु मर्दित किये जाएँ उसका नाम मिथिला है। उन्होंने मिथिला शब्द की उत्पत्ति 'मन्थ्' धातु से मानी है और लिखा है—'मथ्यन्ते त्र रिपवो मिथिला नगरी।'[६] श्री शशिनाथ चौधरी ने म थ ल अक्षरों से 'जन्म' 'स्थिति' 'लय' माना है।[७] लेकिन डा० सुभद्र झा का कथन है कि 'मिथिला' शब्द

---

१ बी० जी० लॉ : ट्राइब्स इन एन्शेण्ट इण्डिया, पृ० २३८

२ कनिंघम : एन्सेण्ट जोग्राफी आफ इण्डिया, पृष्ठ ४४४-४४५

३ वाल्मीकि रामायण : बालकांड, सर्ग ६६ श्लोक ११

४ भागवतपुराण ६ स्कन्ध १३ अध्याय—

'जन्मना जनकः सोऽभू द्वैदेहस्तु विदेहजः।
मिथिलो मथनाज्जातो मिथिलायेन निर्मिता॥

५ स्कन्ध पुराण—हिमवत खण्ड—

आसीद् ब्रह्मपुरी नाम्ना मिथिलायां विराजिता।
तस्यां विराजते नित्यं गौतमो नाम तापसः॥
अहल्या नाम तत्पत्नी पतिव्रता प्रियंवदा।
सर्व लक्षण सम्पूर्णा आसीत्सर्वांग सुन्दरी॥

ब्रह्मपुत्र गाँव में (दरभंगा) आज भी गौतम कुण्ड है और अहियारी या अहिला में अहिल्यास्थान भी विद्यमान है।

६ भट्टोजी दीक्षित : सिद्धान्त कौमुदी, पृ० ५७

७ शशिनाथ चौधरी : मिथिला-दर्शन, पृ० २

का सम्बन्ध मिथ से (युग्म) है और वैशाली, विदेह तथा अंग को मिला कर मिथिला का निर्माण हुआ है।[१] किन्तु पाणिनि ने इस सम्बन्ध में जो लिखा है वही युक्तिसंगत जान पड़ता है। प्राचीनकाल में मिथिला एक नगरी के रूप में ही थी। कालान्तर में उसका विकास हुआ। ह्वेनसंग ने लिखा है कि गंगा का उत्तरीय भाग तीन भागों में बँटा था—वैशाली, तीरभुक्ति और वृज्जि। वृज्जि का दूसरा नाम मिथिला भी है। यही प्राचीनकाल की मिथिला जनपद रही होगी। इससे स्पष्ट है कि वैदिक युग में आर्य सभ्यता के प्रसार होने के समय मिथिला का निर्माण हो गया था।[२]

धीरे-धीरे कालान्तर में मिथिला का 'तीरभुक्ति' नाम ही प्रयुक्त होने लगा। इस नाम की पुष्टि मिथिला में एक प्रचलित श्लोक से की जा सकती है—

'जाता सा यत्र सीता सरिदमलयुता वाग्मती यत्र पुण्या
यत्रास्ते संनिधाने सुरनगर नदी भैरवो यत्र लिंगम्।
मीमांसा-न्याय वेदाध्ययन पटुतरैः पण्डितेर्मण्डिता या
भूदेवा यत्र भूपो यजन-वसुमती सास्ति मे तीरभुक्तिः॥

बलदेव मिश्र : संस्कृति, पृष्ठ १०७

कनिंघम ने इस नाम को उपयुक्त मानते हुए बताया है कि विलसन 'तिर' से 'नदी का तीर' नाम बताते हैं[3]। विसेंट स्मिथ ने भी इस नाम का उल्लेख किया है[४]। ज्योतिरीश्वर ठाकुर द्वारा लिखित वर्णरत्नाकर में भी तिरहुत नाम

---

१ **डा० सुभद्र झा: फार्मेशन ऑफ मैथिली लैंग्वेज (भूमिका)**

२ **कनिंघम : दी एन्सेण्ट जोग्राफी आफ इण्डिया, पृ० ४४५**

३ Cunningham, A : Archaeological Survey of India.
"The name of Tribhukti is said by Wilson to be derived from Tira, a "bank" and bhukti, a limit, the country being bounded on the west and East by the Gandaki and Kausiki Rivers"—Vol. XVI 1880-81, Page-1"

४ Vicent Smith : Early History of India, 3rd Edition, Page, 35-36.
"The Ambition of Azatasatru, not Satisfied with the humiliation of Kosala next indused him to under take the conquest of the country to the north of the Ganges now known as Tirhut"

आया है[1]। कवि गंगानंद (सं० १६७३-१७४२) सरिसव गाँव में थे जो कि आज भी मधुबनी के पास है। उन्होंने अपनी पुस्तक 'भृंगदूत' काव्य में इस गाँव की प्रशंसा की है और लिखा है कि 'गंगातीरा वधिराधिगता पदमुवो भृंगभुक्तिर्नाम्रासेव त्रिभुवनतले विश्रुता तीर भुक्तिः। भूमिं भित्वा समजनि सखे-सोर केतोस्तपस्या वल्ली यस्याममृत फलदा जानकी कैतवेन।' अर्थात् गंगातीर पर्यन्त इस क्षेत्र का अंश चला गया है। इसी से तीरमुक्ति नाम पड़ा। डा० जयकान्त मिश्र ने इस नाम का पुष्टीकरण किया है कि 'तिरहुत' शब्द भारहुत निकला है और भारहुत निकला है भारभुक्ति से यथा तीरभुक्ति[2] तिरहुत। आजकल दरभंगा तथा मुजफ्फरपुर जिले को 'तिरहुत' नाम से पुकारते हैं, किन्तु तिरहुत डिवीजन में सारन और चम्पारन भी सम्मिलित हैं। मैथिली बोलनेवालों को लोग 'तिरहुतिया' भी कहते हैं और मिथिला में 'तिरहुति' लोकगीत की अपनी विशिष्टता है। अब हमें मिथिला की सीमा पर भी थोड़ा विचार करना है।

मिथिला की सीमा

यद्यपि ऋग्वेद में मिथिला का नाम नहीं मिलता है, किन्तु वैदिक काल में इसकी सीमा यथाक्रम पुण्ड्र (ऐतरेय ब्राह्मण ७।१८) अंग (अथर्व सं० ५।१२।१४) वंग (ऐतरेय आ० २।१।१) मगध[3] (अथर्व सं० ५।२२।१४, वाजसनेय सं० ३०।५।२२, तैत्तिरीय ब्रा० ३।४।१।१) तथा कोशल (शतपथ १।४।१ (पूर्वादि पश्चिमान्त दिशा में मिलती है और उत्तर में केवल हिमालय। वायु-पुराण में (अंश ३, अ० ३ श्लोक ११-२०) आज तक अट्ठाइस बार वेद के संविभाग का उल्लेख आया है जिसके अन्तिम कृष्ण द्वैपायन वेद व्यास हैं। यह तो ऐतिहासिक तथ्य है कि व्यासोत्तरकाल में ढाई हजार वर्ष तक क्षत्रिय राज्य था। लेकिन किसी ने कोई संविभाग नहीं किया। संभवतः यही कारण है कि ऋग्वेद में मिथिला का नाम नहीं है।

---

१ डा० सुनीतिकुमार चटर्जी (ज्योतिरीश्वर ठाकुर) वर्ण रत्नाकर, पृष्ठ १३ तृतीय कल्लोल : 'तिरहुतिक साहर'

२ डा० जयकान्त मिश्र : ए हिस्ट्री आफ मैथिली लिटरेचर, पृष्ठ ६

३ अथर्वेद संहिता, पृष्ठ ६६ :

'गन्धारिभ्यो मूजवदभयोऽङ्गेभ्यौ मगधेभ्य :
प्रैष्यन् जनमिव शैवधिं तकमानं परि दध्मसि।
कां० ५ सूक्त २२ म० ११ मं० १४

वृहद्विष्णु पुराण के मिथिला खंड में (५०० ई० पूर्व) मिथिला का वर्णन है:—

गंगा हिमवतोर्मध्य नदी पंचदशान्तरे ।
तैयर्मुक्तिरिति ख्यातोदेशः परम पावनः ।।
कौशिकीन्तु समारम्य गंडकी मधिगम्य वै ।
योजनानि चतुर्विंश व्यायामः परिकीर्तितः ।।
गंगा प्रवाहमारभ्य यावद्धैमवतं वनम् ।
विस्तारः षोडषः प्रोक्तो देशस्य कुलनन्दन ।।
मिथिला नाम नगरी नमास्ते लोक विश्रुता ।
पंचभिः कारणैः पुण्या विख्याता जगतीत्रये ।।

मिथिला में 'लोरिक' लोक कथागीत की रचना अति प्राचीन मानी जाती है उसमें भी मिथिला की सीमा का वर्णन है—

पूरव जे पुरनिया पुजलौं, पछिम रे बिहार ।
उत्तर जे नैपाल पुजलियै, दछिन गंगाधार ।
रौता जे तिलकेसर पुजलौं, झारी बैजनाथ ।
भौरे उठि के हाथ उठें लियै, दिनकर दीनानाथ ।।

इसी प्रकार 'सलहेस' लोककथा गीत में भी इसकी सीमा का उल्लेख आया है—

कमला मैया, कमला ! पूरव जे पुररिया बान्हियै हम गै, आदिनाम सुरूज ।
कमला दछिनें हम जे बान्हिये, मैया गंगा हनुमाने ।
कमला गै पछिम बान्हियै मैया, मीर सुलताने ।
उत्तर जे बान्हिये मैया, राजा भीमसेन ।
कमला गोर जे लगे तिरहुतनी तोरा करैछी परनामे ।

चन्दा झा ने भी इसकी सीमा का स्पष्टीकरण भलीभाँति कर दिया है—

गंगा बहथि जनिक दछिन दिशि, पूर्व कौशिकी धारा ।
पश्चिम बहथि गण्डकी उत्तर, हिमवत बल विस्तारा ।।
कमला त्रियुगा अमृता धेमुड़ा, वागमती कृतसारा ।
मध्य बहथि लक्ष्मणा प्रभृति, से मिथिला विद्यागारा ।।

विदेह वंश के राजा ने जिस क्षेत्र में अश्वमेध यज्ञ किया था उसके उत्तर में हिमालय, दक्षिण में गंगा, पूरव में कोशी और पश्चिम में गंडक थी और आज भी इसकी यह सीमा प्रस्तुत है। मिथिला पूरब से पश्चिम तक १८०

मील और उत्तर से दक्षिण तक १२५ मील है। इसका क्षेत्रफल २२५०० वर्ग मील है। यदि वैदिक युग के अनुसार मिथिला की भूमि की प्राचीनता की कल्पना की जाय तो यह स्पष्ट है कि लाखों वर्ष की पुरानी मिथिला आज विद्यमान है। डा० लक्ष्मण झा का कथन है कि मिथिला का इतिहास पाँच हजार वर्ष प्राचीन है।[1]

मैथिली भाषा और उसकी भौगोलिक सीमा

मिथिला की भाषा मैथिली है। कौलब्रुक ने इसका सम्बन्ध बंगला से बताया है।[2] पर ग्रियर्सन ने लिखा है कि अपनी सांस्कृतिक एवं साहित्यक परम्परा के कारण मैथिली का स्वतन्त्र अस्तित्व है।[3] सिरामपुर की मिशनरी ने अपनी सोसाइटी के १८१६ ई० के छठे मेम्बायर में अन्य आर्य भाषाओं से तुलना करते हुए मैथिली का उल्लेख किया है[4] आईने अकबरी में मैथिली को पृथक भाषा के रूप में बताया गया है।[5]

वर्णरत्नाकर में 'अवहठ' का नाम आया है।[6] विद्यापति ने मैथिली का नाम 'अवहट्ठ' या 'देसिल बअना' बताया है।[7] उनकी कीर्तिलता की भाषा चौदहवीं शताब्दी का मैथिली अपभ्रंश है। अपभ्रंश संस्कृत और प्राकृत से भिन्न है[8]। उसे मिथिला में देश भाषा या देसिल बअना कहते हैं। अवहट्ठ शब्द

---

१ डा० लक्ष्मण झा : मिथिला, पृष्ठ २५

२ कोलब्रुक : एशियाटिक रिसर्चेज, भाग ७, पृष्ठ १९९ (१८०१)

३ ग्रियर्सन : मैथिली ग्रामर, पृष्ठ २, या इन्ट्रोडक्शन टू दी मैथिली लैंग्वेज आफ नौर्थ बिहार, पार्ट फर्स्ट, पृष्ठ २।

४ इन्डियन एंटिक्वेरी, १९०३, पृष्ठ २४५ : अर्ली पबलिकेशन आफ सिरामपुर मिशनरीज।

५ जारेट, एच० एस० (आईने अकबरी अनुवाद) भाग ३, पृष्ठ २५२।

६ ज्योतिरीश्वर : (वर्णरत्नाकर, पृष्ठ ४४, षष्ठ कल्लोल, सम्पादक) डा० सुनीत कुमार चटर्जी।

७ डा० बाबूराम सक्सेना, : लैंग्वेज आफ दी कीर्तिलता, पृष्ठ ६।

८ मिथिला एम० एस० कैटेलोग, प्रकाशक-बिहाररिसर्चसोसाइटी, पटना, भाग २। इन्ट्रोडक्शन, पृष्ठ २ और ९।

प्राकृतादल्पभेदेव ह्यपभ्रष्टा प्रकीर्तिता।

संस्कृत के अपभ्रष्ट का घिसा हुआ रूप है। मैथिली की तरह अवहट्ठ में भी विशेषण तथा क्रियाओं के स्त्रीलिंग रूप पाये जाते हैं—

'दीखिहीनि माझखनि रसिके आनलि' और 'धम्मिलधरि पिअ पास आनलि' कीर्तिलता और कीर्तिपताका।

यह वस्तुतः अपभ्रंश प्राकृत से नहीं, बल्कि प्रारम्भिक नवीन भारतीय भाषा का दूसरा नामकरण है, क्योंकि द्वित्व व्यंजन वर्णों का प्रयोग अपभ्रंश प्रधान है। परन्तु अवहट्ठ में कभी-कभी इसका अभाव मिलता है। उदाहरणार्थ सहस (सात)। इसी प्रकार इसके कर्त्ताकारक में 'उ' नहीं लगता। सर्वनाम तथा क्रिया के रूप तथा परसर्ग भी प्रायः नवीन भारतीय आर्य भाषा के ही हैं और इसीसे सम्भवतः पंडितों ने देसिल बअना को अवहट्ठ नाम दिया।[1] पन्द्रहवीं शताब्दी के कवि लोचन ने इसे मिथिला अपभ्रंश कहा है। उन्नीसवीं शताब्दी के कवि चन्दा झा ने मैथिली भाषा का नाम दिया है।

मैथिली भाषा का प्रयोग बिहार प्रदेश के उत्तर पूर्व में मातृभाषा के रूप में होता आ रहा है। यह दरभंगा, मुजफ्फरपुर, मुंगेर, भागलपुर सहरसा, शाहपुर और पूर्णियाँ में बोली जाती है और नेपाल के रौताहत, सप्तरी, सरलाहीं, मोहतरी और मोरंग जिलो में भी प्रचलित है। इसके बोलनेवालों की संख्या प्रायः डेढ़ करोड़ है और दरभंगा मैथिली का सांस्कृतिक केन्द्र है। मैथिली की अपनी निजी लिपि भी है जिसे 'तिहुंता' या 'मिथिलाक्षर' कहते हैं। यह लिपि प्राचीन मागधी लिपि से निकली हैं। बंगला, असमिया और उड़िया लिपियों से यह मिलती-जुलती है। लेकिन प्रचारात्मक दृष्टि से अब देवनागरी लिपि का ही प्रयोग हो रहा है।

मैथिली जहाँतक बोली जाती है, उसके क्षेत्र के उत्तर में नेपाली भाषा प्रचलित है, पूर्व में बंगला है, दक्षिण में मगही है, उड़िया, संथाली तथा मुंडा भी। पश्चिम में भोजपुरी और हिन्दी है। विद्वानों का कथन है कि बंगला, असमिया और उड़िया के साथ-साथ इसकी उत्पत्ति मागधी प्राकृत से हुई है। कुछ अंशों में मैथिली बंगला से और कुछ अंशों में हिन्दी से मिलती-जुलती

देश भाषां तथा केचिदपभ्रंश विदुर्बुधी :।
संस्कृते प्राकृते वापि रूप सूत्रानुद्यपेत :।
अपभ्रंश स विज्ञेयो भाषा यत्रैव लौकिकी ॥

१ डा० सुभद्र झा : फारमेशन ऑफ मैथिली, पृष्ठ ४, ५, २६।

है। इसकी अपनी कुछ स्वतन्त्र विशेषताएँ हैं जो अपनी पड़ोसी भाषाओं से भिन्न हैं। इसकी ये भिन्नताएँ भाषा-विज्ञान, व्याकरण और शब्दावली में पायी जाती हैं। अतः मैथिली की अपनी पड़ोसी भाषाओं के सम्बन्ध के विषय में थोड़ा-सा प्रकाश डालना उचित है।

१. मैथिली और बंगला—

प्राचीन मैथिली और बंगला के स्वरूप में बहुत साम्य दिखाई पड़ता है। मध्ययुग में दोनों का आदान-प्रदान होता रहा और पन्द्रहवीं शताब्दी से अठारहवीं शताब्दी तक मैथिल विद्वानों ने बंगला के छात्रों को पढ़ाया, बाद में जब नदिया संस्कृत सीखने का केन्द्र बन गया तो मिथिला के बहुत से छात्र बंगला के विद्वानों के शिष्य बन गये। राजनीतिक दृष्टि से मिथिला और बंगाल १९११ तक इस प्रभाव में आते रहे। यही कारण है कि मैथिली को समझने वाले बंगाल में कम नहीं हैं[1]। मैथिली का उच्चारण बंगला और हिन्दी के समान होते हुए भी थोड़ा भिन्न है। मैथिली में 'अ' और 'ए' स्वर का उच्चारण धीरे से होता है जब कि बंगला में ऐसा नहीं है और क्रिया की रचना, ध्वनि और लिंग की दृष्टि से भी बंगला से यह भिन्न है। यथाः मैथिली—
"यदि भातृ-स्नेहक सम्बन्ध विच्छिन्न भय जाएत तखन शीघ्रे फराक भय गेला पर दुष्ट आक्रमणकारी द्वारा सबहु गोटें अनायासे पराजित भय जएबा योग्य भय जाएब।

बंगला—इसी वाक्य को बंगला में इस प्रकार कहा जाता है—

'यदि भातृ-स्नेहेर बंधन विच्छिन्न हय ताहा हइले शीघ्र खण्ड-विखण्ड हइया दुष्ट आक्रमणकारी द्वारा तोमरा अनायासे पराजित हइते पारिबे।'

मैथिली और बंगला के कुछ शब्द विकास—

संस्कृत	प्राकृत	बंगला	मैथिली
लवणम्	लोण	लून	नोन
मातृ	आइ	अत्ता	माय
बधुः	बहु	बोंउ	बहु
दृढ़	दढ़	दड़	दिढ़

---

१ ज्योतिरीश्वर ठाकुर : वर्णरत्नाकर, सं० डा० सुनीतिकुमार चटर्जी, भूमिका, पृष्ठ—२१

मैथिली और बंगला का क्रिया-विकास—

प्राकृत	बंगला	मैथिली
होइ	हय	होइ
पड़इ	पड़े	पड़इ
किनइ	केना	किनइ
करइ	करे	करइ
बोलइ	बले	बोलइ
बुज्झ	बुझा	बुज्झ
चिन	चेना	चिन्ह
जान	जाना	जान
लग	लागा	लग
अच्छि	आछि, आछे	अछि

(उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि मैथिली में प्राकृत के क्रिया-शब्द ज्यों के त्यों आ गये हैं, परन्तु बंगला में वे बदल गये हैं।)

२. मैथिली और असमिया—

आसाम में बोली जाने वाली भाषा असमिया है। यह ब्रह्मपुत्र की घाटी तक फैली हुई है। सोलहवीं शताब्दी में कोशी नदी के किनारे पुर्णियाँ में कामरूप और मिथिला की प्राचीन राजधानी थी और उसका विस्तार आसाम, कूचबिहार, जलपाइ गुड़ी और रंगपुर तक था[1]। कूचबिहार के राजा विष्णु सिंह के राजकाल में चौदहवीं शताब्दी में बहुत से मैथिल कामरूप आये थे। उन्होंने एक सार्वभौम मैथिल ब्राह्मण को अपना पुरोहित बनाया था। मिथिला के नरहरि कायस्थ उनके प्रधानमंत्री थे। आज भी उनके वंशज गौरीपुर राज में रहते हैं।[2] पन्द्रहवीं शताब्दी में धन्यमाणिक्य के राजकाल में त्रिपुरा राज में मिथिला के गायक और विद्वान् आमन्त्रित किये जाते थे।[3] आज भी आसाम में धार्मिक और सामाजिक आचार-व्यवहार मिथिला से मिलते-जुलते हैं। असमिया और मैथिली के स्वरूप में कुछ समानता इस प्रकार पायी जाती है—

असमिया—दिलाक, गेल, करि, राख।

---

१ डा० सुभद्र झा—फारमेशन आफ मैथिली लैंग्वेज, पृष्ठ ६

२ एन० एन० वसु—सोशल हिस्ट्री ऑफ कामरूप, भाग दो, पृष्ठ १६८

३ एन० एन० वसु—हिन्दी विश्व-कोश, भाग ८, पृष्ठ ४६

मैथिली—देलक, गेल, करि राख या कए राख।

मैथिली के कुछ शब्द भी असमिया में मिश्रित हो गये हैं, जैसे—भाओ, पांजर, दरमाहा, कुसिआर, उपार, भूइं, लग, पथार, बनिज पिच्छल (मैथिली में पिच्छर) घिउ, बुधिआक (मैथिली में बुधिआर) अउंठी। इस प्रकार असमिया के साथ मैथिली का सम्बन्ध है।

३. मैथिली और उड़िया—

उड़ीसा में द्राविड़ों के संसर्ग के कारण उसकी भाषा पर भी द्राविड़ भाषाओं का प्रभाव पड़ा है। आठवीं शताब्दी में उस पर तैलंग राजाओं का राज था। तत्पश्चात् नागपुर के भोंसलों का भी शासन रहा। अतः अन्य मागधी भाषाओं की भाँति उसे विकसित होने का कम सुयोग मिल सका। उड़िया बंगला से मिलती-जुलती है और बंगला का उस पर प्रभाव है। उड़िया से मैथिली की भी कुछ समानता दीखती है। जहाँ मैथिली ध्वनि की दृष्टि से उड़िया से समानता रखती है, वहाँ बंगला शब्द की दृष्टि से। उड़िया लोकगीत से मैथिली की ध्वनि की समानता की जा सकती है। जैसे—बरसा आगत भेल, मेघे बिजुली खेल। इसमें 'भेल' में 'अ' की ध्वनि मैथिली जैसी ही है।

४. मैथिली और मगही

मगही मैथिली की सगी बहन-सी है। मगही का नाम प्राचीन मगध नाम से जुटा है जो कि मिथिला के दक्षिण में बोली जाती है। यह मुँगेर, हजारी-बाग, भागलपुर, पटना, गया और पलामू जिले के अंचलों में बोली जाती है। प्राचीनकाल में मगध प्राच्यदेश कहा जाता था और इसकी बोली प्राच्य थी। मगही प्राचीन मागधी से उत्पन्न हुई है।

मगही भाषा का स्वरूप मैथिली से बहुत मिलता है-

मगही—'देखही', 'देखहलुँ।'

मैथिली—'देखैछी', 'देखलहुँ।'

मैथिली में जहाँ 'छी' या 'अछि' का प्रयोग होता है वहाँ मगही में 'अहि' और 'ही' का प्रचलन है। दोनों में किंचित् ध्वनि परिवर्तन दीख पड़ता है। मैथिली क्रिया 'देखलहुँ' के साथ मगही की क्रिया 'देखहलुँ' में बड़ा साम्य है। हिन्दी की कारक-विभक्ति कर्म और सम्प्रदान 'को' का रूप मगही में के, लागी, लेल, ला, खातिर हो जाता है और मैथिली में के, कें, कै, कैं, कौं, लागि, लेल, लै, ले, खातिर होता है। उसी प्रकार भोजपुरी में के, कें, ला,

ले, लागि, खातिर होता है। हिन्दी के 'तुम' को मैथिली में तोंह, तोहें, तों, तोहरा, तोरा कहते हैं और मगही में तोंहनी, तोहरनी बोलते हैं। इस प्रकार मैथिली के साथ मगही की समानता स्पष्ट है। मगध के रीति-रिवाज और रहन-सहन में जिस प्रकार मिथिला समानता रखती है उसी प्रकार मैथिली भाषा में भी।

५. मैथिली और भोजपुरी

बिहार में भोजपुरी बोलनेवालों की संख्या मगही और मैथिली बोलने वालों की अपेक्षा अधिक है। भोजपुरी मैथिली की अपेक्षा हिन्दी से विशेष मिलती-जुलती है।

भोजपुरी—एगो सिआर रहले। एगो गाए रखले रहले।

मैथिली—एक सिआर रहै। एक टा गाय रखने रहै।

मैथिली में 'छइ' और 'अछि' है और भोजपुरी में उनका रूप बाटे, बारी, हवे है। मैथिली में 'अपने' का प्रयोग होता है और भोजपुरी में 'रऊरे' का। मैथिली के बहुवचन में सभ, तथा लोकनि प्रयुक्त होते हैं और भोजपुरी में उन्हें लोगनि कहते हैं। मध्यम पुरुष सर्वनाम 'तुम' का भोजपुरी में तोहनीका, तोंहरन् होता है और मैथिली में तोहे, तोहें, तों, तोहरा, तोरा। भोजपुरी की विशिष्टता यह है कि उसका धातुरूप बंगला और हिन्दी की भाँति सरल है। मैथिली में 'अ' का उच्चारण 'मधुर' होता है, लेकिन उसे भोजपुरी में थोड़ा झटका देकर रूखा बना दिया जाता है।[1] मैथिली के 'अछ' या 'छ' धातु का प्रयोग भोजपुरी और मगही में नहीं होता, किन्तु बंगला में होता है।

६. मैथिली और खड़ीबोली

प्राकृत और संस्कृत साथ-साथ चलती आयी है। पाली भाषा संस्कृत की ओर अधिक झुकी हुई जान पड़ती है। उसमें संस्कृत के शब्द बहुत कुछ ज्यों के त्यों हैं, किन्तु प्राकृत भाषा संस्कृत के विकृत शब्दों से लदी हुई है।

उत्तरोत्तर विकास के साथ-साथ प्राकृत से तीन शाखाएँ फूट निकलीं जो स्थान-भेद के अनुसार मागधी, शौरसेनी और महाराष्ट्री नामों से विख्यात हुईं। ईसा की छठी शताब्दी के पश्चात् प्राकृत से अपभ्रंश का

विकास हुआ। कालान्तर में मगधी के दो भाग हो गये—मागधी अपभ्रंश और अर्धमागधी अपभ्रंश। मागधी अपभ्रंश से मगही, मैथिली, बंगला, उड़िया और असमिया की उत्पत्ति हुई और अर्धमागधी अपभ्रंश से अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी, भोजपुरी आदि पूर्वी हिन्दी का जन्म हुआ। शौरसेनी अपभ्रंश से ब्रज, कन्नौजी, बुन्देली, बाँगरू, खड़ी बोली आदि पश्चिमी हिन्दी का आविर्भाव हुआ।

मैथिली और पूर्वी हिन्दी एक ही मूल से निकली हैं। आठवीं से बारहवीं शताब्दी के लगभग बौद्ध भिक्षुओं ने प्राकृत, पाली, अपभ्रंश आदि भाषाओं में बहुत से स्फुट दोहे लिखे जिनका संग्रह 'सिद्धगान' नाम के प्राचीन ग्रन्थ में किया गया है। आजकल महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री द्वारा सम्पादित 'बौद्धगान ओ दोहा' भी बंगीय साहित्य परिषद्, कलकत्ता से प्रकाशित हुआ है। उसकी भाषा मागधश अपभ्रंश के समान है। कुछ विद्वान् इसे हिन्दी और कुछ विद्वान् बंगला का आदि रूप मानते हैं।

भाषा की दृष्टि से मैथिली और मगही में विशेष भेद नहीं है। तेरहवीं शताब्दी के कवि ज्योतिरीश्वर ठाकुर के 'वर्णरत्नाकर' नाम के ग्रन्थ में भी सिद्धों के नाम मिले हैं।[1] कुछ समय के बाद विद्यापति की 'कीर्तिलता' प्रकाश में आयी। इन दोनों भाषा को सिद्धगान की भाषा से तुलना करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि सिद्धगान की भाषा मैथिली और मगही का पूर्व रूप है—

जह मन पवन न **सँचरइ** रवि शशि नाह पवेश।
तहि बट चित्त विसाम **करु** सरहे **कहिअ** उवेश।

सरहपाद : आठवीं शताब्दी।

इसमें सँचरइ, करु, कहिअ शब्द प्राचीन मैथिली के हैं। 'वर्णरत्नाकर' की भाषा और विद्यापति की रचनाओं की भाषा से तुलना कर इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार होता है—

'जहँ-जहँ पद युग **धरइ**, तहँ-तहँ सरोरुह **झरइ**।'

—विद्यापति पदावली, पृष्ठ—५३

'तासु **तनअ नअ विनअ** गुन' —कीर्तिलता, पृष्ठ—१०

'विरहा **बेलि** विरह **देइ** मन्त्रणा'

—वर्ण रत्नाकर, द्वितीय कल्लोल, पृष्ठ—२

उपर्युक्त तुलनात्मक विवेचन के आधार पर यह सिद्ध होता है कि 'सिद्ध-

---

१ **ज्योतिरीश्वर ठाकुर—वर्णरत्नाकर, १९४० सं०, डा० सुनीतकुमार चटर्जी, पृष्ठ ५७ सप्तम कल्लोल : चौरासी सिद्ध वर्णन :**

गान' की भाषा वर्णरत्नाकर तथा कीर्तिलता की भाषा से मेल खाती है। किन्तु उस में समय और प्रान्त का सूक्ष्म भेद अवश्य है। इस प्रकार मैथिली का जन्मकाल आठवीं शताब्दी माना जा सकता है। प्राचीन काल में मैथिली, हिन्दी बंगला आदि में आज जैसा भेद नहीं था। प्राचीन मैथिली के बहुवचन के चिह्न संज्ञा में 'न्हि' विशेषण में 'आह' और क्रिया में 'अह' थे। कारक विभक्तियों में 'के' 'कइ' कर्म कारक के, एँ करण कारक के, 'लाए' सम्प्रदान कारक के, सजो, सचे अपादान कारक के, 'अ', 'क', 'कइ', काँ, केर, आदि सम्बन्ध कारक के, और 'मज्झ', मउझे' और 'एँ' अधिकरण कारक के चिह्न थे। 'शब्दों के रूप में भी भेद था। 'ड' के स्थान मे 'ल' 'ख' के स्थान में 'ष' का व्यवहार होता था। घोड़ा, भाड़, खोपा, खुट्टी आदि के स्थान में घोला, भाल, षोपा, खुएटी कहे जाते थे। 'ऐ' और 'औ' के स्थान में 'अइ', 'अउ' लिखने का प्रयोग होता था। यथा—करत–करइत, चौसठि–चउसठि आदि।[1]

यद्यपि पूर्वी हिन्दी और मैथिली की वाक्य–रचना और शब्दों में थोड़ी समानता दीख पड़ती है, फिर भी मैथिली व्याकरणिक नियमों के अनुसार ध्वनि, अर्थ, रूपरचना की दृष्टि से भिन्न है। अवधी और मैथिली के कुछ शब्दों का साम्य निम्न प्रकार है—

अवधी	**मैथिली**
पहिले	पहिने
लूआ	नूआ
लेते	नेने
धैले	धैने

अवधी में जहाँ 'ल' होता है वहाँ मैथिली में 'न' हो जाता है, जैसा कि ऊपर संकेत किया गया है।

मैथिली और अवधी का शब्द-विकास

संस्कृत	**मैथिली**	**अवधी**
कुक्षि	कोखि	कोखि
कज्जल	काजर	काजर
अन्धकार	अन्हार	अन्हियार
——	सोहारी	सोहारी

बैसवाड़ी बोली में 'नहाते' को 'हनाते' कहते हैं और पूर्वी अवधी में 'पहुँचते' को 'चहुँपते' कहते हैं। मैथिली में इसी प्रकार वर्ण-विपर्यय हो जाता

---

१. भोला लाल दास—मैथिली की उत्पत्ति और विकास : मिथिला मिहिर का मिथिलांक : पृष्ठ १४७, १९३६

है। जैसे—'वतास' को 'वसात' कहते हैं। मैथिली और अवधी में 'बूढ़े' को 'पुरनिया' कहते हैं। मैथिली में 'पागल' को 'सनकाह' कहते हैं और अवधी में उसे 'सनकहा' कहते हैं। मैथिली और अवधी में 'अच्छा' को 'नीक' कहते हैं।

मैथिली और खड़ी बोली वाक्य की दृष्टि से—

मैथिली—उ गेला (पुल्लिग) उ गेली (स्त्रीलिङ्ग)।

अहाँ कनि आउ ने ? हम खाइ छी।

खड़ी बोली—वह गया (पुल्लिग), वह गयी (स्त्रीलिंग)।

आप जरा आइये न ? मैं खाता हूँ।

उपर्युक्त वाक्यों से मैथिली और हिन्दी में समानता दीख पड़ती है।

मैथिली और खड़ीबोली : कुछ व्यवहारिक शब्दों की दृष्टि से—

मैथिली	हिन्दी
पाइन	पानी
दाइल	दाल
चाउर	चावल
नोन	नमक
आँचर	आँचल
पीतर	पीतल
मीठ	मीठा
कड़ु	तीता
झिगुनी	तोरई
राम तरोइ	भिंडी
चटिया	बाल-विद्यार्थी
केरा	केला
खोंइछ	आँचल
गोंइठा	उपला
लताम	अमरूद
कुसिआर	ईख
नीमू	नीबू
घैल	घड़ा
सुन्नर	सुन्दर
चानन	चंदन

ऊपर के शब्दों में मैथिली के कड़ु, झिगुनी, रामतरोइ, चटिया, खोंइछ,

अपनी पुस्तक—'एलिमेंट्स आफ दी साइन्स ऑफ दी लैंग्वेज' में तारापुर वाला ने भारतीय भाषाओं का वर्गीकरण प्रस्तुत कर मैथिली का स्थान यों निश्चित किया है।

मैथिली और खड़ीबोली के सर्वनाम

मैथिली	हिन्दी
ओ	वह
ई	यह
कतए, कहाँ	कहाँ
जखन	जब
केहन	कैसा
कहिया	कब
केकरा	किसका
तोहर, तोर	तुम्हारा
तों	तू
हम	मैं
अहाँ, अपने	आप

उपर्युक्त उल्लेखों से मैथिली और हिन्दी की समानता और भिन्नता की विशिष्टता भलीभाँति दीख पड़ती है। परम्परा से दोनों का सांस्कृतिक और साहित्यिक आदान-प्रदान होता चला आ रहा है। मैथिली और हिन्दी की समानता का कारण देवनागरी लिपि भी है, क्योंकि आजकल मैथिली देवनागरी लिपि में ही लिखी जा रही है। उसकी अपनी लिपि 'तिहुँता' का प्रयोग बहुत कम होता है। इन सभी दृष्टियों से यद्यपि मैथिली खड़ीबोली की शाखा के रूप में दीख पड़ती है, किन्तु उपर्युक्त प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि मैथिली का अपना अलग अस्तित्व है।

मैथिली भाषा का वर्गीकरण

मैथिली भाषा की निम्नांकित सात बोलियाँ और क्षेत्र हैं :[1]

१. आदर्श मैथिली—उत्तरी दरभंगा

२. दक्षिणी मैथिली—

(क) दक्षिणी दरभंगा

(ख) पूर्वी मुजफ्फरपुर

(ग) उत्तरी मुँगेर

(घ) उत्तरी भागलपुर

(ङ) पश्चिमी पूर्णियाँ

---

१ डा० उदयनारायण तिवारी : भोजपुरी भाषा और साहित्य, पृष्ठ २२१।

३. पूर्वी मैथिली
  (क) पूर्वी पूर्णियाँ
  (ख) माल्दा तथा दिनाजपुर
  (इसे खोट्टा बोली भी कहते हैं)

४. छिका-छिकी
  (क) दक्षिणी भागलपुर
  (ख) उत्तरी संथाल परगना
  (ग) दक्षिणी मुँगेर

५. पश्चिमी मैथिली
  (क) पश्चिमी मुजफ्फरपुर
  (ख) पूर्वी चम्पारन

६. जौलही मैथिली
  उत्तरी दरभंगा के मुसलमानों की बोली

७. केन्द्रीय जन साधारण की मैथिली
  (क) पूर्वी सोतिपुरा की बोली
  (ख) मधुबनी सब डिविजन की निम्न श्रेणी की बोली

पूर्वी और पश्चिमी मैथिली में भेद और समानताएँ और उन पर पड़ोसी भाषाओं का प्रभाव

उत्तरी दरभंगा में केवल ब्राह्मण और कायस्थ विशुद्ध मैथिली का व्यवहार करते हैं और साहित्य में भी परम्परा से इसी का प्रयोग होता आया है जिससे आज भी यह मूल रूप में सुरक्षित है। ग्रियर्सन के शब्दो में इसे आदर्श मैथिली कह सकते हैं। दरभंगा के दक्षिण, मुजफ्फरपुर के पूरब, पूर्णियाँ के पश्चिम, मुँगेर तथा भागलपुर में (गंगा के उत्तरी किनारे का भाग) जो मैथिली बोली जाती है वह उत्तरी दरभंगा की मैथिली से कुछ भिन्न है। ग्रियर्सन ने इसे दक्षिणी आदर्श मैथिली का नाम दिया है।

पूरब में पूर्णियाँ जिले में मैथिली बंगला से प्रभावित हो जाती है और अन्त में इस जिले के पूर्वी भाग में यह सिरिपुरिया बोली में मिल जाती है जो बंगला और मैथिली की सीमा की बोली है। इसका मुख्य स्रोत है बंगला। इसमें मैथिली वाक्यों का भी समिश्रण हो गया है और यह बिहार की कैथीलिपि में लिखी जाती है। पूर्णियाँ की मैथिली को ग्रियर्सन ने पूर्वी मैथिली कहा है।

गंगा के दक्षिण में मैथिली, उसके पश्चिम बोली जाने वाली मगही तथा बंगला से प्रभावित होने लगती है जिसके फलस्वरूप यह अलग बोली में परिणित हो जाती है। उसे 'छिका-छिका' नाम से पुकारते हैं। आदर्श मैथिली में तथा 'छिका-छिकी' में बहुत अन्तर है। ध्वनि-विज्ञान की दृष्टि से मैथिली की सभी बोलियों में 'अ' 'इ' तथा 'उ' का अतिलघु उच्चारण होता है, किन्तु 'छिका-छिकी' में इनके अतिरिक्त 'ए' तथा 'ओ' का भी अतिक्षीण उच्चारण होता है। क्रिया पदों की दृष्टि से जहाँ आदर्श मैथिली में 'थीक' का प्रयोग होता है, वहां 'छिका-छिकी' में 'छीक' या 'छीका' का प्रयोग होता है। इसी से इसे 'छिका-छिकी' कहते हैं।

दरभंगा के पूर्वी अंचल और मुजफ्फरपुर की मैथिली पर सारन तथा चम्पारन जिलों की व्यवहृत भोजपुरी का अत्यधिक प्रभाव है। कहीं-कहीं तो मैथिली का ऐसा रूप मिलता है कि यह निश्चय करना भी कठिन हो जाता है कि वास्तव में वह मैथिली है अथवा भोजपुरी। इधर की मैथिली में 'अ' का उच्चारण प्रायः भोजपुरी की भाँति हो होता है। इसी प्रकार वर्तमान कालिक सहायक क्रिया के रूप में 'अछि' की अपेक्षा यहाँ की मैथिलो में 'हो' वाले रूपों का ही प्रयोग होता है।

मिथिला के सभी मुसलमान मैथिली नहीं बोलते। मुजफ्फरपुर तथा चम्पारन में वे एक अलग भाषा का प्रयोग करते हैं जिसका सम्बन्ध अवधी से है। यह यहाँ की शेखाई और मुसलमानी बोली जोलही बोली के नाम से प्रख्यात है। चूँकि इस ओर अंसार जुलाहों की जनसंख्या अधिक है, इसी कारण इसका यह नाम है, परन्तु वास्तव में जोलही बोली उत्तरी दरभंगा के मुसलमान बोलते हैं। इसे अरबी और फारसी से विकृत मैथिली भी कह सकते हैं। जैसे—

'खाना उतरलऊ। केका गदहा खेत चरता रहलौ रहै रे। रहेन हम न त रान पकड़ चीर देतें।'

मधुबनी सबडिवीजन की निम्न श्रेणी की जातियाँ जो मैथिली बोलती हैं वह उच्च जातियों की मैथिली से भिन्न है।

पूर्वी मैथिली का व्यवहार पूर्वो पूर्णियाँ, माल्दा तथा दिनाजपुर में होता है। इसे खोट्टा बोली भी कहते हैं। बंगाल के पास रहने के कारण पूर्वी मैथिली पर बंगला का प्रभाव प्रत्यक्ष है। उदाहरणार्थ—

'जा जा गड़ी छुट्टिअ गेल। ऐते रब में हम नइ चढ़ पारब।'

यह वाक्य बंगला के 'आमि चढ़िते परिबो ना' का अनुकरण है। इसी

प्रकार भागलपुर की मैथिली पर भी बंगला का प्रभाव है। पश्चिमी मुजफ्फरपुर और पूर्वी चम्पारन में पश्चिमी मैथिली बोली जाती है। उस पर भोजपुरी का प्रभाव है। प्रमाण के रूप में—

'हम कहली कि अब कैसे क जा सकैत हइ। मगर एस्टेशनियाँ करीब रहइअ, वहाँ के रोशनी सेहो लौकत रहे।'

मैथिली की भाषा-सीमा के अनुसार यह स्पष्ट है उस पर बंगला, असमिया, उड़िया, मगही और भोजपुरी का प्रभाव है और नैपाली संथाली आदि भाषाओं का भी। कोई भाषा तभी समृद्धशील और विकसित हो सकती है जो अन्य भाषाओं के शब्दों और ध्वनियों को भी पचा लेने की शक्ति रखती है। कोई भी भाषा एक ही बार नहीं बन जाती, वह बराबर बनती रहती है और उसमें नवीनता आती रहती है और इसीसे उसका विकास होता है।

उपर्युक्त विवेचन से यह विदित होता है कि पूर्वी और पश्चिमी मैथिली में स्थान एवं जलवायु की भिन्नता के कारण भेद अवश्य है, किन्तु दोनों के व्याकरण और भाव-विन्यास में कोई अन्तर नहीं है।

प्राचीन काल से ही मैथिली को संस्कृत की धरोहर मिल गयी है। सदियों से उसकी साहित्य-सर्जना होती चली आ रही है। इसके अतिरिक्त उसके विभिन्न रूपों में प्रयुक्त होने से उसकी अभिव्यंजना-प्रणाली और शब्द-भण्डार की भी अभिवृद्धि हुई है। उसमें शिष्ट साहित्य और लोकसाहित्य का निर्माण हुआ है। बिहार की मगही, मैथिली और भोजपुरी भाषाओं की यह विशिष्टता है कि मैथिली बोलनेवाले मगही और भोजपुरी आसानी से समझ लेते हैं और इसी प्रकार मगही तथा भोजपुरी बोलनेवाले मैथिली को भी। लेकिन बोलने का अभ्यास न होने के कारण उसे ठीक से बोल नहीं पाते हैं। सच तो यह है कि मैथिली के विकास में पड़ोसी भाषाओं का भी योग है।

तीसरा अध्याय

मैथिली लोकगीतों का वर्गीकरण

३

मैथिली लोकगीतों का वर्गीकरण

दूसरे अध्याय में मिथिला की भाषा और उसकी भौगोलिक सीमा के विषय में भाषा वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विवेचना की गयी है। अब इस अध्याय में मैथिली में जो असंख्य लोकगीत प्रचलित हैं उनका वर्गीकरण किया जा रहा है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के उपोद्घात में मैथिली संस्कृति की परम्परा पर थोड़ा-सा प्रकाश डाला गया है। मैथिली लोकगीतों के वर्गीकरण के पूर्व यह भी आवश्यक प्रतीत होता है कि मैथिली संस्कृति में लोकगीतों का क्या महत्व है, इस पर भी यत्किंचित् विवेचन-विश्लेषण किया जा रहा है।

मैथिल संस्कृति की मूल प्रेरणाएँ और उनमें लोकगीतों का महत्व

मिथिलावासियों के जीवन के उच्चतम आदर्श ही मैथिली संस्कृति की मूल प्रेरणाएँ हैं। मानव-जीवन का उच्चतम आदर्श त्याग में दीख पड़ता है और त्याग का साधन कर्म है। मानव के जीवन को कर्त्तव्य परायणता ही ऊँचा उठा देती है और मानवता प्रदान करती है। आजतक मिथिला में वर्ण-व्यवस्था स्थापित है। उसमें कोई विशेष परिवर्तन नहीं हो सका है। अतः इस दृष्टि से मिथिला के धार्मिक, सामाजिक, पारिवारिक, राजनैतिक और रहन-सहन के आदर्शों पर प्रकाश डालते हुए उनमें लोकगीतों के महत्व पर विचार

करना उचित जान पड़ता है। मिथिला की सामाजिक गतिविधि पर जलवायु, भौगोलिक स्थिति और ऐतिहासिक परम्पराओं का प्रभाव पड़ता है। उसके जन-जीवन के राग-द्वेषों को परिष्कृत एवं परिमार्जित करने में लोकगीतों का सक्रिय सहयोग युग-युगों से प्राप्त होता रहा है। जीवन के मुख्य पाँच आदर्श हैं—(१) धार्मिक, (२) सामाजिक, (३) पारिवारिक, (४) राजनैतिक और (५) रहन-सहन।

१. धार्मिक आदर्श और मैथिली लोकगीत

(अ) तन्त्र-मन्त्र और जादूटोना
(आ) शिव की उपासना
(इ) शक्ति की उपासना
(ई) विष्णु की उपासना
(उ) नदी और वृक्ष की पूजा
(ऊ) त्योहार

२. सामाजिक आदर्श और मैथिली लोकगीत

(अ) सुधार
(आ) सेवा भक्ति, तप त्याग

३. पारिवारिक आदर्श और मैथिली लोकगीत

(अ) दाम्पत्य जीवन
(आ) जन्म-मरण

४. राजनैतिक आदर्श और मैथिली लोकगीत

(अ) उत्तम शासन-व्यवस्था
(आ) राष्ट्रीय चेतना

५. रहन-सहन के आदर्श और मैथिली लोकगीत

(अ) कर्त्तव्य परायणता
(आ) सादा जीवन उच्च विचार
(इ) रीति-नीति

१. धार्मिक आदर्श और मैथिली लोकगीत

(अ) तन्त्र-मन्त्र और जादूटोना—मिथिला में तन्त्रवाद का प्रचार प्राचीन काल से ही रहा है। जिससे यह लोक और परलोक का कार्य निकले उसे ही तन्त्र कहते हैं। तन्त्रशास्त्र की उत्पत्ति के समय का पता लगना तो कठिन है। लेकिन मारण, मोहन, वशीकरण आदि का प्रयोग अथर्वेद संहिता में भी पाया

जाता है। इस तन्त्र के दो भेद हैं—आगम और यामल। आगम तन्त्र में सृष्टि के उद्भव, विनाश, योगविधि ध्यान, देवार्चन आदि वर्णित हैं और यामल में ज्योतिषशास्त्र, वर्ण धर्म, युगधर्म आदि का उल्लेख आया है। तन्त्र के सिद्धांत में यह दिखलाया गया है कि इच्छाओं की पूर्ति से ही मुक्ति मिल सकती है। बौद्धधर्म के महायान की कठोर साधना की अपेक्षा तन्त्र की इंद्रिय तृप्ति की बात चल पड़ी और बाद में तन्त्र ने बौद्धधर्म में शक्ति का सिद्धान्त भी शामिल कर लिया और वज्रयान, नाथपंथ, सहजयान, कालचक्रयान, मन्त्रयान नाथसिद्ध पंथियों ने जनता को गुमराह में डाल कर अपना उल्लू सीधा किया।

सच तो यह है कि तन्त्र ने ही सुलभ उपासना विधि चलाकर लोगों को मोक्ष प्राप्ति के प्रयत्न में भोग त्यागने से रोका था। इसका स्पष्टीकरण निम्न श्लोक से हो सकता है—

यत्रास्ति भोगो नहि तत्र मोक्षः।
यत्रास्ति मोक्षो नहि तत्र भोगः॥
श्री सुन्दरी-पूजन तत्परायणां भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव।

यह तो तर्क संगत जँचता है कि आदि शक्ति प्रकृति का पूजन ही सर्वप्रथम हुआ है जिसका मूलाआधार तन्त्र है। गायत्री वेदों की माता कही जाती है जिसका प्रतिपादन तन्त्रों ने भली भाँति किया है। निर्वाण तन्त्र में यह चर्चा की गयी है।

'प्रकृत्या जायते सर्व प्रकृत्या सृज्यते जगत।
तोयत्तु बुदबुदं देवि यथा तोये विलीयते॥'

इस प्रकृति को तन्त्रवाद ने सच्चिदानन्द रूपिणी माना है—

साधकानां हितार्थाय अरूपा रूपधारिणी।
नेयं योषिन्न च प्रमान न षण्डो न जडः स्मृतः
तथा कल्पवल्लीवत् स्त्री-शब्देन युज्यते।

उस ब्रह्म स्वरूपा प्रकृति की प्राप्ति कैसे हो, इसका उपाय तन्त्रो ने यों बताया है—

'एतैः पंचमकारैश्च नरो गच्छत्य नामयम्।

इन पंच मकारों के नाम और लक्षण इस प्रकार हैं—

आनन्दं परमं ब्रह्म मकारास्तस्य सूचकाः
मत्स्यं मासं तथा मद्यं मुद्रा मैथुनमेव च,
एते पंच मकाराः स्यु मोक्षदा हि युगे युगे।

ब्रह्म सूचक इन पंच मकारों की स्थापना बड़ी विवेचना से की गयी थी। दोनों लोकों को एक सूत्र में बाँधने के लिए ऋषियों ने इसकी कल्पना की। कुलार्णव तन्त्र में पंच मकारों का पारमार्थिक विश्लेषण इस प्रकार किया गया है—

मत्स्य— माया मलादि शमनान्मोक्ष-मार्ग-निरूपणात।
अष्ट दुःखादि–विरहान्मत्स्येति परिकीर्तितः।

मांस— मांगल्य जनना देवि। संविदानन्द दानतः।
सर्वदेव प्रियत्वाच्च मांस इत्यमिधीयते॥

मद्य— सुमनः सेवितताच्च राजत्वात्सर्वदा प्रिये।
आनन्द जननाद्देवि। सुरेति परिकीर्तिता॥

मुद्रा— मुदं कुर्वन्ति देवानां मनांसि द्रावयन्तिच।
तस्मान्मुद्रा इतिख्याता दर्शिता व्याकुलेश्वरी॥

मैथुन— सर्व द्रोहं विनिर्मुक्त्व तवा प्राणप्रियो भवेत।
एकाकारो भवेद्देवि। त्वयि ब्रह्मणि मैथुनम्॥

मकारों के इन पवित्र और मोक्ष युक्त लक्षणों को अज्ञानियों ने केवल विषयोपभोग के साधन बना डाले। इसी से ऋषियों ने इस रहस्य को गुप्त रखने का विधान किया। यह शाम्भवी मुद्रा (कौलिक विधान) कुलवधू के सदृश गोपनीय है। अधिकारी गुरु ही यह रहस्य समझा सकते हैं। गुरु और शिष्य के लक्षण तन्त्रग्रन्थों में दिये गये हैं। कुल की परम्परा से इस विधान का पालन होना चाहिए। इसलिए यह 'कुलमार्ग' और इस पर चलने वाले 'कौलिक' कहलाते हैं।

मिथिला में तन्त्रवाद की साधना के बल पर बड़े-बड़े तान्त्रिकों ने अपनी सिद्धि द्वारा लोक को चकित किया और परलोक को प्राप्त किया। देवादित्य, वर्द्धमान, मदन उपाध्याय, धीरेन्द्र, उपाध्याय, गोकुल उपाध्याय और मिथिला नरेश रामेश्वर सिंह वास्तविक तान्त्रिकों में से थे और उन्होंने तन्त्र के तात्विक मर्म को समझ लिया था। लेकिन आज कुछ अनाधिकारियों ने मिथिला में इस तन्त्र-पद्धति को बदनाम कर रखा है। महाकवि विद्यापति ने भी तन्त्र-मन्त्र शब्द का प्रयोग किया है—

पूजनक **तन्त्रमन्त्र** बहु आछए, से हम किछु नहिजान,
जटिला कह आन देव कहाँ, पाओब तुह बीज कर इह दान।[1]

---

१ **रामवृक्ष बेनीपुरी—विद्यापति पदावली, (मानभंग) पृष्ठ २१३**

इससे स्पष्ट है कि पूजा के बहुत से तन्त्र-मन्त्र हैं। उपर्युक्त गीत की पंक्तियों का भाव यह है कि हम कुछ नहीं जानते। जटिला सास ने कहा कि तुम्हारे ऐसा देवता फिर कहाँ मिलेगा? तुम इसे बीज मन्त्र दो—झाड़फूँक कर दो।

तन्त्र के वक्ता और बौद्धव्य शिव और पार्वती हैं। शिव माया की सहायता के बिना अपने को अभिव्यक्त नहीं कर सकते। इसी से स्मृतिकार ने भी कहा है—

'शिवोहि शक्ति रहितः शक्तः कर्तुं न किंचन'। शिव से साक्षात्कार के हेतु जो वेद मूलक उपदेश हैं वे 'ज्ञानमार्ग' हैं और शिव की शक्ति की उपासना द्वारा ज्ञान प्राप्त करने का मार्ग है—'आगम-मार्ग'। इस प्रकार जीवन, धर्म और दर्शन का लक्ष्य वैदिक शास्त्र है। इसीसे 'निगम' और 'आगम' दोनों पद्धतियाँ चल पड़ीं। वेद वेदांग 'निगम' के अन्तर्गत हैं और तन्त्र-मन्त्र 'आगम' के स्वरूप हैं।

आगम के तीन भेद हैं—डामर (तमस्) यामल (रजस्) और तन्त्र (सत्)। डामर के छः भेद हैं—योग, शिव, दुर्गा, सारस्वत, ब्रह्म तथा गन्धर्व। यामल के छः भेद हैं—आदि, ब्रह्म, विष्णु, गणेश, आदित्य और रुद्र। लेकिन तन्त्र के भेद अनेक हैं। 'मिथिला में शक्ति की प्रधानता के कारण शाक्त-तन्त्र का प्रचार अधिक है। प्रधानतः यहाँ कौलमत और दश महाविद्या का बोलबाला है।[1]' कौलमत को माननेवाले वामाचार के प्रर्वतक हैं और दश महाविद्या में विशेषकर काली, तारा और भुवनेश्वरी का प्रभाव है।

कहा जाता है कि वामाचार मार्ग से सिद्धि की प्राप्ति शीघ्र होती है, किन्तु इसमें आचार भ्रष्ट होने के कारण पतन की भी अधिक संभावना है। बौद्धतन्त्र का प्रभाव दश महाविद्या पर पड़ा और मिथिला इसी से महायान के सम्पर्क में आ गयी। इस मार्ग के अनुसरण करनेवाले मिथिला में अनेकों सिद्ध हैं। वामाचार के आन्तरिक गुणों का अनुकरण करना कठिन था और इसीसे निम्न वर्ग तथा नारी जाति में आचार भ्रष्ट होने लगा और अधःपतन आरंभ हुआ।

---

१ डा० उमेश मिश्र : मैथिली संस्कृति ओ सभ्यता (द्वितीय भाग १९५५) प्र० वैदेही समिति, दरभंगा, पृष्ठ १८

तन्त्र शास्त्र के मूल ग्रन्थ—आगमराशि, शिवसूत्र, शक्तिसूत्र तथा परशुराम कल्पसूत्र आदि हैं। आगमशास्त्र के तीन भेद हैं—शाक्त, शैव और वैष्णव, और तीनों सम्प्रदाय वालों के निमित्त आगमशास्त्र के नाना भेद हो गये हैं। तन्त्र के बारे में शिव ने सर्वप्रथम पार्वती को बताया था। तन्त्र, संगीत, वाद्य, नृत्य, रसायन, व्याकरण आदि की उत्पत्ति शिव से ही हुई है।

आदिमानव को मृत्यु के भय के कारण ही जीवन में बन्धन स्वीकार करना पड़ा है और यह मृत्यु का भय भूतप्रेतों और जादूटोने के रूप में उसका पीछा करता है। उसे यह भी भय बना रहता है कि कहीं पृथ्वी खाने-पीने की चीजें देना ही बन्द न कर दे। इस भय ग्रस्त अवस्था से उत्पन्न जादू-टोना आदि शारीरिक चमत्कार ने उसे कुछ साहस और धैर्य बँधाये और धीरे-धीरे तन्त्र-मन्त्र और जादू-टोने का प्रभाव उसके जीवन में बढ़ने लगा। इस आत्मरक्षा की परम्परा ने प्रकृति के व्यापारों के आधार पर कई देव, महादेव का अविर्भाव कर उसे भय, आघातों, आशंकाओं से वंचित किया। इस दृष्टि से शिव की उपासना वैदिक युग से ही चली आ रही है।

मिथिला में विवाह-संस्कार के समय 'पुरहर' (कलश पर चित्रण) और पातिल (एक मिट्टी का छोटा वर्तन जिसे लाल रंग से रँग देते हैं) का प्रयोग होता है। 'पुरहर' को पुरारी यानी 'शिव' और पातिल को 'पार्वती' के रूप में लिया जाय तो इससे शैवधर्म का प्रभाव दीख पड़ता है। मंडप की सतह पर जो 'अरिपन' बनाया जाता है वह शब्द 'अहिफन' का अपभ्रंश रूप जान पड़ता है। 'अहिफन' से तात्पर्य है—'कुण्डलिनी' का प्रतीक। 'कमल' के फूल का जो चित्र बनाया जाता है वह हृदय का सकेत है और मणिपुर नाभिकुण्ड का। विद्यापति ने 'वसन्त' के स्वागत-वर्णन में इस प्रकार रूपक बाँधा है।

अभिनव पल्लव बइसक देल।
धवल कमल फुल पुरहर भेल॥[1]

वैज्ञानिक रूप से यदि विचार किया जाय तो पूजा के उपकरण की भी महत्ता है। फूल (पृथ्वीतत्व-गंध) धूप (वायुतत्व-स्पर्श) दीप (अग्नितत्व-रूप) जल (जलतत्व-रस) प्रसाद (आकाशतत्व-शब्द) के इस प्रकार के रहस्य चिन्तन करने पर ही विदित हो सकते हैं।

मैथिली में साँप के अनेकों मन्त्र हैं। उनमें से एक मन्त्र यहाँ दिया जा

१ रामवृक्ष बेनीपुरी : विद्यापति पदावली, पृष्ठ २४

रहा है। इस मन्त्र के द्वारा मैथिली की प्राचीनता का आभास मिल सकता है, क्योंकि मन्त्र का प्रचार प्राचीनतम है।

साँप का मन्त्र[1]

चारि साँप लोकनी, बार चित्ती गंडा, ऐनी मेनी खापर टेनी।
आजन भाजन ता स्वरूप, डोमा डोमा सरपे तारा॥
अनिया लारू पनिया लारू, काँचे माँटि सोने भराऊ,
ऐस डंड बीस करु, संख चित्ति सोम बित्ति,
हाथ जाइत बिख लोटि, बाट जाइत सुमेरु परबत,
ताहाँ तोहर धी बिआनी, एका एकौतर नौ दस अठारह पौआ,
कोन-कोन ? खतिरा, मतिरा, चाँप सँ बैरनी काटा,
लंका पूता, जामा जूता, तिन्हुके नौ मरे पूता।
लंका झारी, झार-झार बेंगी पूत दहीनेकार।
बेंगी पूत गरुड़ भेव, नीलकंठ रौना हंसन हुसन।
बहुरे बिखाह ! ताहाँ गरुड़ा हाथ पसारे।
ताहाँ सरपा नाहीं बिखा, ब्रह्मा, ब्रह्मा, ब्रह्मा !
सोलह हाथ के करैत, हाथ जाइत बिख मारै।
देखिया एटनिया मेटनिया लाकरा,
सून्न करैतर औ' साँखरा।
नेउरा रे मारे भइया जे तोरे बिख चोरिया।
ओरहन पेरहन तोर सँभार, उठ बहुरि घर जाउरे।
गरुड़ा तोर भतार, एक पाँखि नइ पसरे।
कुस परीछे नारी, नम्मे नम्मे पोखरा।
सोने फूल फुलाइ, ताहाँ दिखा जनमिला।
कुस तोडि कऽ बाँटि ला, तीन खंड कऽ काटिला।
सिंघिन पूत तों छियै, सिंघ चढ़ि तों कैले घाव।
माइ तोहर बिघ्घिन बियेलौ, चौसप निरबिख होजाइ।
दोहाइ ईस्सर महादेव गौरा पारबती।
कामरु कमरछ, नैना जोगित के दोहाइ।

ऊपर के साँप मंत्र में कुछ बंगला के शब्द आ गये हैं। जैसे—तारा, देखिया,

---

१ सौदागर सिंह (निमैठी, दरभंगा) द्वारा प्राप्त।

चोरिया, काटा आदि। किन्तु इसकी भाषा मूलतः मैथिली ही है। इसमें कई विषैले साँप के नाम आये हैं—करैत, साँखरा, एटनिया, मेटनिया, लाकरा आदि। इनके अतिरिक्त साँप के संहारक नेवला और गरुड़ के नाम भी आये हैं, साथ ही साँप के आहार मेढ़क (बेंगीपूत) के भी नाम उल्लेखनीय हैं। अन्त में महादेव और पार्वती से प्रार्थना की गयी है कि साँप काटे हुए की वे रक्षा करें। इस मन्त्र में कामरूप कामक्षा का भी नाम आया है जो कि आसाम में है और वहाँ कामाख्या का मंदिर है। इससे स्पष्ट होता है कि मिथिला का सम्बन्ध आसाम से भी जुटा हुआ था और इस मंत्र पर शैव तथा शाक्त धर्म का प्रभाव जान पड़ता है।

साँप का विष प्रायः नीम के पत्ते से ही उतारा जाता है, क्योंकि नीम के पत्ते में कड़ुवाहट होती है। अनुभव में देखा गया है कि जो व्यक्ति नीम के पत्ते को हर रोज चवाता है उसे साँप का विष जल्द नहीं चढ़ता। कहा जाता है कि यदि मरघट और पीपल के नीचे साँप काट लेने के बाद यदि वह स्वयं उलट जाता है तो उसका विष उतरना कठिन हो जाता है। अतः पीपल तथा वटवृक्ष के नीचे मिथिला में साँप का विष नहीं झाड़ा जाता है। पीपल के पेड़ से साँप को शत्रुता है। उसकी गन्ध से उसे घृणा है। ऐसा विश्वास है कि साँप के मन्त्र से लोगों के प्राण बचाये जा सकते हैं।[१]

भूतप्रेत भगाने के अनेकों मन्त्र हैं। उनमें से एक का उल्लेख किया जा रहा है—

> नमो गणेशाय। सरस रसती जय जयकाली तोरा सोभौ मोतीहार,
> मोरा देह। विद्या भइरज से मालीन गारवे फूल तैसे विद्या होए,
> सब गोरीक भूत गनपति हाथ, पोथी चन्दन काठ। जे माता बिसरी
> दे दैक ठराडाए, दोहाइ ईश्वर महादेव गौरा पार्वतीक।[२]

इस मन्त्र में महादेव पार्वती और गणेश से प्रार्थना की गयी है। यह भी

---

१ Elvin varrier and Shamrao Hiwale : Folk Songs of Maikal Hills, page 349.
Songs of snake bite. In a case of snake bite the victim, it is believed, can only be saved by a protrached ceremony, the Jagar.

२ Dr. Jayakant Mishra : Introducion to the Folk literature of Mithila, part II (prose) page 7.

स्मरण रहे कि गणेश विद्या और बुद्धि के देवता हैं और जब बुद्धि का सन्तुलन ठीक नहीं रहता है तब मनुष्य पागल की श्रेणी में गिना जाता है और यही दशा भूतप्रेत लग जानेवालों की भी होती है। विज्ञान के आविष्कार के पूर्व गाँव के लोग गणेश की अर्चना बुद्धि की शक्ति प्रबल बनाने के निमित्ति ही करते थे और मिथिला के गाँव में यह परम्परा आज भी चली आ रही है। जो हो, मन्त्र का उद्देश्य लोक कल्याणकारी ही रहा है।

तन्त्र जैसे गम्भीर विषयां का वर्णन भी मैथिली लोकगीतों में बड़ी मोहकता एवं मार्मिकता से किया गया है—

हंसा पहुँचलइ मनिपूर।
हंसा उडि कै पहुँचत मनिपूर।
हिय के आस तखनहुँ नइ पूर।
अष्ट कमल पर करै किलोल।
नादि बिन्दु बिच मारै लोल।
अब सुने हंसा अनहद नाद।
तैंयो ने दूर ओकर अवसाद।
मानस दह में फुलल सहसार।
चल लै हंसा करै बिहार।

तन्त्र-मन्त्र को लोकगीतों में व्यक्त करने का अभिप्राय यही था कि जनता की सेवा हो सके और प्रकृति की शक्तियों की ओर उसका ध्यान जा सके। आदिम मानव ने जब यह जान लिया कि प्रकृति में उत्पन्न करने और संहार करने की शक्तियाँ हैं और छोटे-बड़े पौधों को पृथ्वी के गर्भ से निकलते हुए देखा तो उसके मन में जो सन्निहित कामवासना थी उसने उसकी इन्द्रियों को उभारा और प्रभावित किया और प्रकृति के उस व्यापार के प्रति एक रहस्यपूर्ण दृष्टि प्रदान कर दी। फलतः उसके मन में प्रकृति के प्रति श्रद्धा-भक्ति के भाव पैदा हो गये और वह प्रकृति का पुजारी बन गया। उसने प्रकृति की वन्दना के गीत गाये। उसने उसकी लीलाओं का चित्रण किया, और उसके रूपक बाँधे।

आदि मानव ने सूर्य, चन्द्र, तारे, ऊषा, प्रभात, सन्ध्या, बादल, बिजली, इन्द्र-धनुष के नाना व्यापारों को देखा। कभी तो वह भयभीत हुआ और कभी मुग्ध। वह कभी आश्चर्य में डूब जाता था। उसने प्रकृति के इन रहस्यों को समझने के लिए अनेक प्रकार के अनुमान किये और इन अनुमानों के आधार

पर वह नित नये गीतों की रचना करने लगा। प्रकृति के पार्थिव और सौर-व्यापार उसकी पूजा और बलि के पात्र बन गये। इसी में उसके तन्त्र-मन्त्र टौने-टोटके और लोकधर्म निहित हैं। इसके पश्चात् उसने प्रकृति के व्यापारों के मूल में अध्यात्म का दर्शन किया। उसके मन में दिव्य भावनाओं का उदय हुआ और उसने प्रत्यक्ष जगत से परे देवों के अस्तित्व की कल्पनाएँ कीं। इस प्रकार विविध देवों और विविध व्यापारों की परम्परा चल पड़ी। आदि मानव की दिव्य भावनाओं ने लोकगीतों का रूप धारण किया। वह मृत्यु से मुक्ति या तो भक्ति से पा सकता था अथवा अपनी शक्ति से।'[1] इसका और कोई चारा भी नहीं था।

उपर्युक्त वैज्ञानिक विवेचनाओं द्वारा यह स्पष्ट है कि यन्त-मन्त्र सम्बन्धी जो मैथिली लोकगीत हैं वे जन-जीवन के नाना-व्यापारों में प्रयुक्त होते हैं केवल मानसिक सुख के लिए ही नहीं, बल्कि शारीरिक कष्टों के निवारणार्थ भी लोकगीत रचे गये हैं। रोग को दूर करने के निमित्त मिथिला में जहाँ जड़ी-बूटी औषधि का प्रयोग होता है वहाँ यन्त्र-मन्त्र जादूटोने भी उपयोग में लाये जाते हैं। यह तो स्वाभाविक ही है कि जो विपत्ति में, कष्ट में बराबर साथ देता है उसके प्रति ममता उत्पन्न हो जाती है और यही कारण है कि मिथिला के जन-जोवन को लोकगीतों ने मन्त्र की तरह प्रभावित किया है। जब कोई भगत भूतप्रेत को भगाने के लिए देवी देवता को गीत गा-गा कर झाल मृदङ्ग पखावज की मधुर ताल-गति में गुहराता है, नाचता, उछलता है और भाव विभोर होता है तो वह दृश्य बड़ा ही मार्मिक और कारुणिक दीख पड़ता है। मिथिला की संस्कृति की अभिव्यक्ति लोकगीतों के आधार पर भली-भाँति की जा सकती है। लोकगीत उसकी संस्कृति के प्रतीक हैं।

(आ) **शिव की उपासना**—बौद्धधर्म के पश्चात् मिथिला में शैवधर्म का उत्थान हुआ। यहाँ के अधिकांश लोग शिव के भक्त हैं। बालकों को पाठशाला में पहले पहल गुरुजी 'ॐ नमः शिवाय सिद्धम्' से (ओना मासीधं-अपभ्रंश) कहीं-कहीं पढ़ाना-लिखाना प्रारम्भ करते हैं। थोड़ी-सी ही उपासना में शिव प्रसन्न हो जाते हैं और उनको पूजा के लिए अक्षत, जल, फूल, बेलपत्र चाहिए। इसीसे उन्हें अढरन-ढरन कहा गया है। चतुर्दशी और शिव-रात्रि को बहुत-से

---

१ J. G. Frazer : Fear of the Dead in primitive Religion, vol. II, Page-1 (Preface).

लोग उपवास करते हैं। कार्य सफलता के लिए गीली मिट्टी से शिवलिङ्ग बना कर प्रति रविवार को उसकी पूजा करते हैं अथवा आस-पास के किसी महादेव मन्दिर में पूजा करने के लिए जाते हैं। शैवधर्म की प्रधानता के कारण ही मिथिला के गाँवों में महादेव के मन्दिर बने हैं। मृत्युकाल में शिव की महिमा का गुणगान करना उत्तम समझा जाता है। 'जूरशीतल' नाम का एक त्योहार होता है जिसमें लोग शिव के यशोगान करते हुए नाचतेउ-छलते हैं और शिव-पार्वती का स्वांग रचते हैं।

शिव के विषय में विद्यापति, कारनाट, हर्षनाथ, चन्दा झा आदि कवियों ने जो लोकगीत रचे हैं वे मिथिला में बहुत प्रचलित हैं और अपनी अलग विशिष्टता रखते हैं। उनके दो भाग हैं—महेशवाणी और नचारी। महेशवाणी में शिव के प्रति भक्ति भावनाएँ प्रकट की गयी हैं और नचारी में शिव तथा पार्वती के ब्याह सम्बन्धी वर्णन हैं और व्यंग्यविनोद के उनमें छींटे हैं।

विद्यापति द्वारा लिखी गयी निम्नलिखित महेशवाणी की कारुणिक पंक्तियों को जब वैद्यनाथ धाम (देवघर) की ओर पैदल चलने वाले कमरथुओं का दल कंधे पर 'कामरु' रख कर भावविह्वल होकर गाता है तो कैसे मन नहीं द्रवित हो सकता—

कखन हरब ! दुख मोर हे भोलानाथ !
दुखहि जनम भेल दुखहि गमाएब,
सुख सपनहु नहि भेल हे भोलानाथ !
आछत चानन अगर गंगाजल।
बेलपात तोहि देव हे भोलानाथ !
ई भव-सागर थाह कतहु नहि।
भैरव धरु करि आएल हे भोलानाथ !
भन विद्यापति मोर भोलानाथ गति,
देहु अभय बर मोहि हे भोलानाथ ![1]

कवि कारनाट की शिव के प्रति भक्ति भावना यों है—

जगत विदित बैद्यनाथ सकल गुण आगर हे !
तोहें प्रभु त्रिभुवननाथ दया के सागर हे !
कोन सुनत दुख मोर छोड़ि तोहि दोसर हे !

---

१ रामवृक्ष बेनीपुरी : विद्यापति-पदावली, पृष्ठ ३०८।

कारनाट निज दोष कतेक हम भाखब हे !
तोहें प्रभु त्रिभुवननाथ, अपन कय राखब हे ![1]

नीचे की 'महेशवाणी' में एक उलाहना के बहाने सरल हृदय की अनूठी उक्ति सजीव हो उठी है और इसमें सरसता और चित्रोपमता है। शिव की भक्ति के लिए सुलभ सूझ दिखायी गयी है। गौरी से शिव के विषय में बैल के द्वारा किये गये उपद्रव को लेकर उलाहना दी गयी है[2]—

गौरा तोर भँगिया, बड़दो ने बान्है गौरा तोर भँगिया !
अँगने-अँगने खाय पथार,
रोमय गेलहुँ झुकि-झुकि मार,
एक मन होइयै शिव के दियैन उपराग,
देहरी बैसल छथिन वासुकि नाग।
कातिक गनपति दुइ चरबाह,
इहो दुनू बालक, बड़दो हराह,
भनहिं विद्यापति सुनू समाज
ईहो दुनू बेकती कें एको के ने लाज !

यद्यपि ऊपर की पंक्तियों में किसी लोकगीतकार ने विद्यापति का नाम दे दिया है, फिर भी इस महेशवाणी में बड़ी ही स्वाभाविकता एवं सूझ है जो जनसाधरण के मानस को रसान्वित करती है।

जब कपिलेश्वर, कुशेश्वर; सिमरदह की यात्रा करते समय किसान, श्रमिक
'बम् बम् भैरोहो भूपाल, अपनि नगरिया, भोला खेबि लगादे पार !
कथीकेर नाव नवलिया, कथी केर करुआरि,
कोने लाला खेवन हारा, कोन उतारे पार ! बम् बम् भैरो हो भूपाल !'

—गाते हुए चलते हैं तो सबके हृदय आनन्द विभार हो उठते हैं। मिथिला में प्रत्येक शुभकार्य में नचारी और महेशवाणी गाने की प्रथा है।

नचारी में व्यंग-हास-विनोद का पुट है और उससे तत्कालीन मिथिला की सामाजिक दशा की झाँकी मिलती है। नीचे की नचारी में शिव और पार्वती का आलम्बन लेकर बेमेल ब्याह के ऊपर व्यंग-वाण छोड़ा गया है। इस नचारी से विद्यापति के युग में सरलता से मिथिला की सामाजिक अवस्था का

---

१ गणेश झा : (शुभंकरपुर) महेशवाणी, कन्हैयालाल कृष्णदास–पृष्ठ ३।
२ वही, पृष्ठ १५।

अनुमान लगाया जा सकता है। इसमें गौरी की माता का हृदय अन्याय के विरुद्ध विद्रोह कर उठा है। इस बेमेल विवाह का दृश्य आज भी मिथिला में दिखाई देता है। यह नचारी इस प्रकार है—

हम नहिं आजु रहब यहि आँगन,
जौं बुढ़ होएत जमाई गे माई !
एक त बइरि भेला बीध बिधाता,
दोसर धिया केर बाप !
तेसरे बइरिभेल नारद बाभन,
जे बुढ़ आनल जमाई, गे माई !
पहिलुक बाजन डामरु तोरब,
दोसरे तोरब रुण्ड माल,
बरद हाँकि बरिआत बेलाएब,
धिआ लै जाएब पराई, गे माई !
धोती, लोटा, पतरा, पोथी,
एहो सभ लेबन्हि छिनाई,
जौं किछु बजता नारद बाभन,
दाढ़ि धय घिसि आएब, गे माई !
भन विद्यापति सुनु हे मनाइन !
दृढ़ करु अपन गेआन,
सुभ सुभ कए सिरी गौरी बिआहू,
गौरी हर एके समान, गे माई !

निम्नलिखित नचारी में शिव के रूप-लावण्य का वर्णन बड़े ही व्यंग्यात्मक ढंग से किया गया है। पार्वती के सौंदर्य के सामने उसे फीका ठहराया गया है। भाषा, भाव और शैली की दृष्टि से यह नचारी मधुर बन पड़ी है—

विधि केहन कठोर !
वर देखि मैना के झहरनि नोर !
शिव छथि कारी, गौरी छथि गोर,
सेहो देखि मैना के झहरनि नोर !
विधि केहन कठोर !
पाँच बदन बिच, नापि नापि पोर,
भाल में जटा शोभनि, नमरल ठोर !

भनहिं विद्यापति मैना जनि करु शोर,
ऐहो वर छथिन, चन्द्रमा चकोर!
विधि केहन कठोर!

नारद की करतूत के प्रति आक्रोश दिखलाते हुए नीचे की यह नचारी बता रही है कि वर खोजनेवाले किस प्रकार अदूरदर्शी पाये जाते हैं—

कोना नारद लैला जुगुतिया हे!
कोना गौरी तोरथि बेल पतिया हे!
आठे बरस के गौरी कुमारि!
बुढ़वा के अस्सी उमरिया हे!
हमरो गोरी के बड़ बड़ अँखिया!
बुढ़बा के बिढ़नी पचहिया हे!
हमरो गौरी के बड़-बड़ केसिया,
बुढ़बा के पाकल-पाकल दढ़िया हे!
कोना नारद लैला जुगुतिया हे!

'आइने अकबरी में भी नचारी (लहचारी) का उल्लेख आया है।[1] नचारी की रचना विद्यापति के समय से आजतक मिथिला में होती चली आ रही है।

(इ) **शक्ति की उपासना**—मिथिला में शक्ति की पूजा भी कम नहीं होती है। शैवधर्म से शाक्त धर्म फूटा है। शिव का नारी रूप शक्ति है। शक्ति-साहित्य में तन्त्र-मन्त्र, जादू-टोना का निदर्शन किया गया है और उस पर बौद्ध-धर्म की छाप पड़ी है। शाक्तधर्म में योग का पुट था जिसे बौद्धधर्म स्वीकार न कर सका। फलस्वरूप बौद्धधर्म मिश्रित शक्तिसाहित्य चल पड़ा। उसे कामाख्या (आसाम) काली (कलकत्ता) पशुपतिनाथ (नैपाल) और जगन्नाथ से (उड़ीसा) विशेष प्रेरणा मिली।

मिथिला में कामदानाथ तथा दुर्गा मन्दिर उच्चेट में (जरैल, बेनीपट्टी) चामुण्डास्थान कटरा में, भद्रकालिका कोइलख में (लोहट) जयमंगला रजौर में, उग्रतारा स्थान महिसी में स्थापित हैं। इन मन्दिरों में शक्ति की पूजा होती

---

१ H. S. Jarrett: Aine Akbari (Abul Fazal Allami) Vol-III Page 1252 (Asiatic Society, Calcutta 1891).
"Those in the dialect of tirhut are called Lahchari and are the composition of Biddyapat, and in character highly erotic".

है। कहीं-कहीं दशहरे के अवसर पर दुर्गा की प्रतिमा बनायी जाती हैं। कई दिनों तक मेला लगता है। कुछ लोग शक्ति मन्त्र मात्रिका पूजा में ही सीखते हैं और साँप आदि के मन्त्र भी। मिथिला में बालकों को अक्षराभ्यास के समय शक्ति-स्तवन सिखाया जाता है—

सातें भवतु सुप्रीता देवी शिखर वासिनी, उग्रेण तपसा लब्धो-
यया पशुपतिः पतिः।

—गंगानाथ झा : कवि-रहस्य, पृ० १०

मैथिली लोकगीतों पर शक्ति साहित्य का इतना प्रभाव पड़ा है कि 'गोसाउनी' गीत, के बिना कोई धार्मिक उत्सव प्रारम्भ ही नहीं होता। इतना ही नहीं, ये गीत प्रायः सभी संस्कारों के अवसर पर गाये जाते हैं। ये गीत बड़े ही मार्मिक और रसमय हैं—

जय जय भैरवि असुर भयावनि, पशुपति भामिनी माया।
सहज सुमति मति दिअ गोसाउनि, तुंअ अनुमति भव जाया॥
विकट कटाक्ष ओठ उठ पाउंरि, लिधुर सहित उर फोंका।
साँवरि नयन, बैन, उर राजित छमकि चालि फुल कोका।
कतहुँ दैत्य मारि मुख मेलल, कतहुँ निकालल आँता।
विद्यापति कवि तुअ पद सेवल, बिसरि पुत्र जनु माता॥[1]

शारदीय नवरात्रि में महाष्टमी के दिन घर की प्रत्येक देहली पर भगवती के चरण, ढाल और खर्ग गेरू रङ्ग से अङ्कित किये जाते हैं। शाक्त लोगों के लिए लाल चन्दन और लाल वस्त्र पहनना अच्छा माना जाता है। शक्ति की महिमा मिथिला में प्रबल है। अगर किसी बन्ध्या को संतान नहीं होती है तो वह मनोती रखती है और भगवती से प्रार्थना करती है—

भरि कटोरा लेहू देबनि, पूत लअ लेबनि ठाढ़ी हे!
आनन्द आनन्द माँ के आनन्द मनेबनि हे!

और—

अन्हरा के नैन देब, कोढ़िया के काया,
निरधन के धन देव, बाँझे देव पूत माँ हे! सुनु मैया काली!

'गोसाउनी गीत' के अतिरिक्त शाक्त धर्म से प्रभावित 'योग' लोकगीत हैं। इसमें प्रेम का तन्त्र-मन्त्र है और प्रियतम से मिलने की युक्ति यों है—

---

१ भोला झा : मिथिला गीत संग्रह, प्रथम भाग : प्र० कन्हैयालाल, कृष्णदास, रमेश्वर प्रेस, दरभंगा : पृष्ठ १।

हमरा के जँओ तेजब, गुन हाँकब,
योग देव समधान अथिन कय राखब।
एको पलक जँओं तेजब गुन हाँकब,
एहन योग मोर तेज सेज नहि छाँड़ब।
आरसि काजर पारव निसि डारब,
ताहि लय आँजब आँखि, योग परचारब।
नयनहिं नयन रिझायव प्रेम लगायब,
करब मोरा गरहार हृदय बिच राखब।
भनहिं विद्यापति गाओल, योग लगाओल,
दुलहा दुलहिन समधान, अधिन कय राखल।

उपर्युक्त 'योग-गीत' से यह सिद्ध होता है कि यन्त्र-मन्त्र दो हृदयों के मिलाने का साधन है। शाक्तधर्म में बलि प्रथा का रूप भी पाया जाता है। आजकल मिथिला में दशहरे के अवसर पर दुर्गा के सामने बकरे की बलि चढ़ायी जाती है। कदाचित किसी रोग मुक्ति के लिए पहले से ही ऐसी मनौती रखी जाती है। वैदिक युग में जो हिंसापूर्ण यज्ञ होते थे, सम्भवतः उन्हीं से इस प्रथा का सम्बन्ध है।

(ई) विष्णु की उपासना—मिथिला में विष्णु की उपासना भी अति प्रचलित है। कुछ लोग राम नवमी का व्रत करते हैं। मैथिली संस्कृति की विशिष्टताओं में से एक यह भी विशिष्टता है कि गले में तुलसी कण्ठी बिना बाँधे भी लोग अपने को वेष्णव कहते है और निरामिष आहार करते हैं। भाल पर श्रीखण्ड चन्दन लगाते हैं। सत्यनारायण की पूजा समय-समय पर होती ही रहती है। कृष्ण-जन्माष्टमी के अवसर पर मिट्टी से कृष्ण की भव्य प्रतिमा बनाते हैं। लोग भजन-कीर्त्तन करते हैं। प्रायः प्रत्येक घर के आँगन में तुलसी के पौधे लगाते हैं और कार्तिक महीने में सायंकाल उसकी पूजा करते हैं, आरती उतारते हैं। कुछ लोग एकादशी व्रत करते हैं। देवोत्थान एकादशी में विशेष रूप से पूजा का आयोजन करते हैं। शालिग्राम शिला का नित्य पूजन भी कुछ लोग करते हैं। थोड़े से कष्ट में भी 'राम-राम' कहना और प्रत्येक शुभकार्य में विष्णुपद का गान वैष्णव होने का ही प्रमाण है। मैथिली लोकगीतों में विष्णु और गंगा की महिमा का वर्णन नाना रूपों में पाया जाता है। कुछ विष्णु पद की भाषा खिचड़ी है। ये गीत सत्यनारायण-पूजा, यज्ञ, उद्यापन के अवसर पर गाये जाते हैं—

के ओ ने बिपत्ति के साथी हो रघुवर, केओ ने बिपत्ति के साथी !
पहिल बिपति पडल राज-दसरथ के, राम लखन बन जाई।
दोसर बिपति पडल कौसल्या के, अयोध्या सून भेल जाई, हो रघुवर !
तेसर बिपति पडल राम लछमन के, बने बने रोबति जाई, हो रघुवर !
चारिम बिपति पड़ल सीता के, राबन हरने जाई हो, रघुवर !
पाँचम बिपति पड़ल रावन के सोना के लंका जरि जाई, हो रघुवर !
'तुलसिदास' प्रभु तुम्हरे दरस को, कोइ ने बिपति के साथी, हो रघुवर !

इस गीत में किसी अनाम मैथिली लोकगीतकार ने प्रचारात्मक भावना की दृष्टि से तुलसीदास का नाम अन्त में जोड़ दिया है। इसमें लोकगीतकार के सरल हृदय की भावना की अभिव्यंजना है। वह अपना नाम नहीं चाहता है, लोगों के बीच अनाम रूप में ही अपने को रखना पसन्द करता है। ऐसे लोभ को दबाने में भी संयम और धैर्य की नितान्त आवश्यकता है।

निम्नलिखित गीत में 'गंगा' से विद्यापति ने प्रार्थना करते हुए अपने हृदय की भक्ति-भावना प्रकट की है—

(उ) नदी और वृक्ष की पूजा—गंगा-स्तुति

बड़ सुख सार पाओल तुअ तीरे !
छोड़इत निकट नयन बहनीरे !
कर जोरि विनमओ बिमल तरंगे !
पुन दरसन होए पुनमति गंगे !
एक अपराध छेमब मोर जानी !
परसल माय पाय तुअ पानी !
कि करब जप तप जोग धेआने !
जनम कृतारथ एकहि सनाने !
भनइ विद्यापति समदओं तोही !
अन्तकाल जनु बिसरह मोही ![1]

मिथिला की संस्कृति की विशिष्टता यह भी है कि उसमें शैवधर्म, शाक्त धर्म और वैष्णव धर्म का समन्वय हुआ है। तीनों धर्मों के प्रति अपार आस्था दीख पड़ती है। विद्यापति ने शैव और वैष्णव दोनों धर्मों के समन्वय के रूप में यह भाव व्यक्त किया है—

---

१ रामवृक्ष बेनीपुरी : विद्यापति पदावली, पृष्ठ ३१२।

भलहर, भलहरि भल तुग्र कला !
खन पित बसन खनहि बघछला ![1]

आज भी मिथिला का कोई व्यक्ति जब अपने भाल में भस्म लगाता है तो उससे शैवधर्म के प्रति श्रद्धा प्रकट होती है और रक्त चन्दन के लेपन से शाक्त धर्म के प्रति भक्ति विदित होती है। श्रीखण्ड चन्दन के लेपन से वैष्णवधर्म के प्रति आस्था जान पड़ती है। एक ही व्यक्ति इस प्रकार अपने भाल पर भस्म रक्त चन्दन और श्रीखण्ड तीनों का लेपन कर तीनों धर्मों के प्रति अपनी अगाध भक्ति प्रकट कर समानता की ओर संकेत करता है।

हमारे जीवन को भौतिक साधन सम्पन्नता के अतिरिक्त जो चीजें परिष्कृत और परिमार्जित करती हैं वे ही संस्कृति की परिचायिका हैं। मिथिला में मूलतः कृषि प्रधान संस्कृति है। चाहे हम जन्म, उपनयन या चाहे विवाह-संस्कार के लोकगीतों को लें, सब में हमें कृषि-प्रधान संस्कृति की ही विशेषता दीख पड़ती है। मिथिला के निवासियों को वस्त्रों के लिए कपास की खेती करनी पड़ती है। वे चरखा कातते हैं और चरखे के धागे को धार्मिक दृष्टि से पवित्र मानते हैं। उपनयन के अवसर पर यज्ञोपवीत के लिए 'चरख-कट्टी' नाम की क्रिया होती है जिसमें महिलाएँ चरखा कातती हैं और उसी धागे से यज्ञोपवीत बनाया जाता है। खादी का उपयोग अधिक होता है। स्त्रियाँ चाँदी के गहने से ही संतृप्त होती हैं और विधवाएँ चरखे ही से रोटी पैदा करती हैं। इसका कारण विपन्नता नहीं है, बल्कि कृषि-प्रधान संस्कृति है।

विशेषतया वृक्ष, नदी के प्रति ममता दिखाना कृषि संस्कृति के द्योतक हैं। और, ये तमाम बातें हमें मैथिली लोकगीतों में मिलती हैं। मिथिला के मछुए कोशी, कमला, बलान आदि नदियों की पूजा अनादिकाल से ही करते चले आ रहे हैं। आचार्य क्षितिजमोहन सेन ने लिखा है कि प्रेतों, वृक्षों और नदियों की पूजा आग्नेय सभ्यता की देन है।[2] निम्नलिखित गीत में ग्रामदेव (डिहवार) से यह प्रार्थना की गयी है कि कोशी नदी को वह समझा-बुझा कर मना ले और उसे बढ़ने न दे, क्योंकि बाढ़ आ जाने से हाहाकार मच जाएगा और उसकी नाव पार कैसे लगेगी ! उस पार जाने में उसे देर होगी।

---

१ वही, पृष्ठ ३०१।

२ रामधारी सिंह 'दिनकर' : संस्कृति के चार अध्याय, पृ० ७८।

कोशी गीत

गोर तोरा लागै छियो, हो डिहबार !
तारू बेड़ा, कोशी माय के दिम्रौने मनाय !
घड़ी एक चललौं कोसी माय, पहर गो बीति गेलइ !
बेरिया पड़ल छैक, कोइने लागइ छै गोहारि ।

और, कोशी की बाढ़ की भयंकरता का वर्णन बड़ा ही सजीव और द्रावक जान पड़ता है । इसमें हृदय हिला देने की शक्ति है—

'खाइयो ने भैलै, आमुन जामुन फलबा है !
बान्हियो ने भैलै, नामी नामी केसबा के जुड़बा,
भोगैं लै भैलै जीव काल, हे कोसी माय !

आम-महुए का ब्याह—मिथिला में विवाह-संस्कार के समय सिन्दूर दान से पूर्व आम और महुए का ब्याह होता है और इस प्रकार वृक्षों की पूजा के पश्चात् ही विवाह-संस्कार सम्पन्न होता है। उनके विकास की तरह ही जीवन के विकास होने का विश्वास लोगों में है ।[१] आम-महुए का एक मैथिली लोकगीत यों है—

सुनियै आम गाछ, देखिअन्हि महु गाछ,
फरैं फुलै लुबधल डारि, आनि पिठार सिन्नूर लगाएल !
नड़ी देलनि घुमाय ।
ऐहन सुदिन दिन फलाँ बाबू के भलेन्हि,
आम-महु बिआहि के घर जाइ !

वट वृक्ष की पूजा का भी उल्लेख मैथिली लोकगीतों में पाया जाता है । यह पूजा जेठ की अमावस्या में होती है । इसे बरसाइत (वट-सावित्री) कहते हैं । इस पूजा में पातिव्रत धर्म सावित्री की भाँति पूजा करने वाली सुहागिन में भी आ जाय, इसलिए यह प्रक्रिया होती है । यह पर्व जेठ की अमावस्या तिथि को मनाया जाता है और यह गीत अति प्राचीनकाल से चला आ रहा है ।

बरसाइत (वट-सावित्री)

घर-घर नारि हँकारल, सजनि गे ! आदर सँ सँग गेलि,
आइथिक बरसाइत, सजनि गे ! तैं आकुल सब भेलि ।

---

१ Hodson Col, T. C. H. R. A. T. : Tree's Marriage (Man in India) Sept 1921, vol I, No. 3 Page 12.

घुमड़ि-घुमड़ि जल ढारल, सजनि गे ! बाँटत अछत सुपारि,
फतुरलाल देता आसिस, सजनि गे ! जीवथु दुलहा दुलारि ।[१]

(ऊ) **त्योहार**—त्योहार अनेकों प्रकार के प्रचलित हैं । उनमें मधुसाँवनी फाग और छठ की प्रधानता है ।

मधुसाँवनी—मधुसाँवनी का त्योहार सावन शुक्ल तृतीया को मनाया जाता है । नव विवाहिता को एक जलती बत्ती से दागा जाता है और यदि फफोले खूब अच्छे उठते हैं तो स्त्रियाँ उन्हें सधवापन का चिह्न समझती हैं । इस प्रकार यह स्पष्ट है कि यह त्योहार शाक्तधर्म से प्रभावित है, क्योंकि शाक्तधर्म से ही टोना-टोटमा का जन्म हुआ है और कालान्तर में अन्धविश्वास भी घर करता गया है । नीचे की 'मधुसाँबनी' में यह बताया गया है कि पिता अपनी बेटी की चुँदरी गरीबी के कारण न खरीद पाता है तो उसका दामाद ही परदेश से उसे खरीद कर ले आता है । इसमें पिता की विवशता और कातरता में वात्सल्य रस उमड़ पड़ा है—

निर्धन घर गे बेटी, तोहरो जनम भेल,
निर्धन घर गे बेटी, तोहरो विवाह भेल,
कतय पैब गे बेटी, लालरंग केचुआ,
कतय पैब गे बेटी, हम चित्रसारी,
से हो सुनि अमुक बर चलला बेसा हे'[२]

सावन महीने में 'नागपंचमी' का त्योहार भी मनाया जाता है—'सावन मास नागपंचमी भेल, घर-घर विसहर पूजा भेल' । इस त्योहार में आम की मँजरी में गुड़ मिलाकर थोड़ा जीभ पर रखते हैं और आम की गुठली भी खाते हैं । गाय के गोबर और साँप के बिल की पूजा होती है । साँप के बिल पर धान की खील और दूध रखते हैं । इस प्रकार यह नाग पूजा का त्योहार अतिप्राचीन जान पड़ता है । यद्यपि नाग की पूजा की चर्चा वेद में नहीं है तथापि यह अनुमान है कि यह 'आर्येतर-समाज से, प्रधानतः आस्ट्रिक और नीग्रो संस्कृतियों से, आकर हिन्दू धर्म में मिल गयी है[३] ।' लेकिन आत्मरक्षा की भावना से ही आदिमानव ने नाग की पूजा प्रारम्भ की होगी, क्योंकि साँप के डसने का भय तो बराबर बना ही रहा होगा ।

---

१ **रामइकबालसिंह 'राकेश' : मैथिली लोकगीत, पृष्ठ २७०**
२ **वही, पृष्ठ ३४३**

फाग—मिथिला में फाग या होली का त्योहार अत्यन्त धूमधाम से मस्ती में मनाया जाता है। यह त्योहार फागुन महीसे में मनाया जाता है और हँसी हर्ष का यह त्योहार है। इसमें श्रृंगारिकता है। इस पर वैष्णव धर्म का प्रभाव है। एक फाग यों है—

ब्रज के बसइया कन्हैया गोआला,
रंग भरि मारय पिचकारी !
वइ पार मोहन लहँगा लुटै सखि,
एइ पार लूटथि सारी !

इसी प्रकार एक मस्ती भरी फाग है जो मिथिला में अति प्रचलित है। वह फाग इस प्रकार है—

नकबेसर कागा ले भागा,
सइयाँ अभागा ना जागा !
नकबेसर कागा ले भागा,
उड़ि-उड़ि काग कदम चढ़ि बइसल,
जोबना के रस ले भागा !

होली का त्योहार सामुदायिक त्योहार है। इसमें सभी जाति के लोग सम्मिलित होते हैं और डफ, झाल, ढोलक के ताल स्वर पर नाचते, गाते, उछलते हैं। इसमें भेद-भाव भूल जाते हैं और हिन्दू-मुसलमान आपस में गले मिलते हैं।

छठ—सामुदायिक त्योहारों में छठ भी बहुत प्राचीनतम त्योहार है। यह चैत के महीने के शुक्ल पक्ष की षष्ठी तिथि को मनाया जाता है। स्त्री-पुरुष दोनों व्रत करते हैं। व्रत करनेवाले अपने आराध्य देव सूर्य को नीबू, केला, नारंगी, पूआ-पकवान, मिष्टान्न आदि का अर्घ्य नदी या तालाब में प्रातःकाल खड़े होकर चढ़ाते हैं। छठ के गीत पूर्णतः धार्मिक गीत हैं। इसमें श्रद्धा, निष्ठा और आत्मसंयम के भाव भरे हुए हैं। मिथिला के गाँवों में सगे सम्बधियों द्वारा भेजे गये उपहारों को अपने पड़ोसियों और मित्रों में भी बाँटते हैं। पहले खुद न खाकर किसी भेंट की वस्तु को कौए को थोड़ा-सा दे देते हैं। कौए को देने का तात्पर्य संभवतः यह है कि भेंट विष या खराब वस्तु तो नहीं मिली है। यह भी हो सकता है कि पहले पशु-पक्षी, कीट-पतंग आदि को थोड़ा-सा देकर तब कोई चीज खानी चाहिए। इस प्रक्रिया से वैज्ञानिक और धार्मिक भावनाओं का पुष्टीकरण होता है।

सूझ की बात तो यह है कि भेंट दी गयी वस्तुओं को पशु-पक्षियों, कीट-पतंगों को थोड़ा-सा दे देने के बाद माता या दादी पहले उन्हें खा लेती हैं, तब फिर बच्चों को खाने के लिए देती हैं। किसी वस्तु को केवल स्वयं ही न खाकर अपने पड़ोसियों और इष्ट मित्रों को भी उपहार के रूप में भेजने की यह प्रथा उच्च आदर्श की ओर संकेत करती है। इसमें बड़ी सामाजिकता और मानवता दीख पड़ती है। मिथिला में बच्चे जब खाने को चीज पाते हैं तो खाने के पहले ये पंक्तियाँ झूम-झूम कर गाते हैं—

> 'बाँटि चूटि खाइ, गंगा नहाइ,
> असगर खाइ, गुह डबरा नहाइ !

अर्थात् जो बाँट कर खाता है उसे गंगा नहाने का पुण्य मिलता है और जो अकेला खाता है उसे गन्दे कुण्ड में नहाने का फल मिलता है। उक्त पंक्तियों में वेद की 'संगच्छध्वं, संवदध्वं संवोमनांसि जायताम्' भावना निहित जान पड़ती है।

छठ त्योहार पर भी वैष्णव धर्म का प्रभाव है। ऋग्वेद में विष्णु शब्द का उल्लेख मिलता है, परन्तु वह सूर्य के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। सूर्य वेदों का विशेष देव है जो सारी दुनिया को प्रकाश देता है[१]। इसकी पूजा आर्य संस्कृति का आदर्श है।

निम्नलिखित छठ के गीत में यह प्रार्थना की गयी है कि घोड़ा पर चढ़ने के लिए बेटा, घर के कामकाज को सँभालने के लिए पतोहू और उपहार बाँटने के लिए बेटी, और पढ़े लिखे दामाद वरदान में दिये जाएँ—

> घोड़ा चढ़न लागि बेटा माँगिलों,
> माँगिलों घर-सचिनि पतोहु, माता !
> बयना बहुरे लागि बेटी माँगिलों,
> पंडित माँगिलौ दमाद छठी मइया,[२]
> परसन होउ ने सहाय छठी माता !

मिथिला में सूर्यदेव को अर्घ्य देने की व्यवस्था कई दिन पहले से ही होने लगती है और पूजा की खाद्य सामग्री बड़ी नेम निष्ठा से रखी जाती है। मिथिला

---

१ ऋग्वेद : ७।६२।१

२ रामइकबालसिंह 'राकेश' : मैथिली लोकगीत, पृष्ठ ३६१

की संस्कृति पर छठ के त्योहार का बड़ा प्रभाव है और यह घर-घर में मनाया जाता है।

२. सामाजिक आदर्श और मैथिली लोकगीत--

(अ) सुधार—सामाजिक आदर्श में यह है कि प्रत्येक व्यक्ति जीवित रहे और दूसरों को भी जीवित रहने का सुयोग प्रदान करे—'जीवो जीवस्य लक्षणम्'। वह अपनी भलाई दूसरों की भलाई में ही समझे और उसमें आनन्द प्राप्त करे। इस तरह, संवेदना, सहिष्णुता और सहानुभूति के भाव ही समाज को एकता के सूत्र में बाँध कर मानवता की सुरक्षा कर सकते हैं। जो व्यक्ति एक दूसरे के काम आए वही सामाजिक बन सकता है। मिथिला में मिल-जुल कर रहने की भावना युगयुगों से चली आ रही है। प्रत्येक व्रत और त्योहार में, उपनयन, विवाह, यज्ञ, श्राद्ध में सभी कोई सहयोग की भावना दर्शाते हैं और एक दूसरे की सहायता एवं सेवा में तत्परता दिखलाते हैं। उसमें वर्ण-व्यवस्था के कारण कोई भेद-भाव नहीं दीख पड़ता। गुण किसी में भी हो उसका आदर मिथिला में होता है। सुधार, सेवा-भक्ति और तप-त्याग सम्बन्धी नारी और पुरुष में अनेकों लोकगीत प्रचलित हैं जो बड़े ही प्रभावशाली और जीवन को उच्च स्तर तक ले जाने वाले हैं। नमूने के तौर पर यहाँ पर कुछ ऐसे गीत प्रस्तुत किये जाते हैं। पहले समाज सुधार सम्बन्धी एक आधुनिक 'झूमर' को लिया जा सकता है। इस 'झूमर' में यह बताया गया है कि जब लड़की की शादी बूढ़े से होने लगती है तो वह अपनी बहन की ससुराल भाग कर चली जाती है और बहन इस अन्याय को दूर करने के लिए अपने देवर से उसकी शादी करा देती है। इसमें व्यंग्य और विनोद चुभता और फबता है,प्रभाव डालताहै—

बुढ़बा सजिगेला बरात, लड़िकी जानल ई सब बात,
उतअ भागि पड़ेलइ, बहिन के ससुरारी में !
भारी जुलुम देखइ छी शादी लगन बुढ़ारी में,
पाकल पाकल दाढ़ी में ना !
बहिन सुनइ समझइ ई बात, शादी केलनि देवर के साथ,
लड़िकी क बाप बनयलनि अपना मुँह अगारी में,
अगुआ क मुँह भेल हुरार, बुढ़वा रहिए गेल कुमार,
राम अशीष गनमा सुनाबई रेलगाड़ी में !
भारी जुलुम देखइ छी शादी लगन बुढ़ारी में,
पाकल पाकल दाढ़ी में ना !

इस सम्बन्ध में विद्यापति ने भी लिखा था—'पिया मोर बालक, हम तरुनी, कोन तपचुक लौंहु भेलौंहु जनी[1]'। बेमेलविवाह के सम्बन्ध में' नचारी' पुरजोर उत्तर है।

(अ) सेवा-भक्ति, तपत्याग—निम्नलिखित 'नचारी' में सेवा-भक्ति, तपत्याग का संकेत मिलता है। इसमें कहा गया है कि अन्न, धन, सोना, रूप, स्वस्थ शरीर और पुत्र किसके लिए हैं ? उत्तर यही है कि अन्न, धन और सोना दान करने के लिए हैं, रूप देखने के लिए, स्वस्थ शरीर तीर्थ-यात्रा करने के लिए है और प्यासे को पानी पिलाने के लिए पुत्र है—

बइजनाथ दरवार में हम त खुशीसँ रहबइ ए !
कथिए लागि अनधन सोना,
कथिए लागि रूप !
कथिए लागि निरमल काया,
कथिए लागि पूत, हम त खुशी सँ रहबइ ए !
लुटबै लागि अनधन सोना,
देखबै लागि रूप।
तीर्थ चलएला निरमल काया,
जलभरि लाबए पूत, हम त खुशी सँ रहबइ ए ![2]

शिव का आलम्बन लेकर उनको दानी और त्यागी के रूप में आदर्श ग्रहण करने के लिए लिखा गया है—अनका के दथि, शिव अपने भिखारी'। समाज में जितना हम लेने की बात सोचते हैं उसकी अपेक्षा अधिक देने का यत्न करें तो सबको सुख-शांति प्राप्त हो सकती है। लोकगीतकार ने मिथिला में ऐसे लोकगीतों की रचना कर लोगों के मन में सेवा, त्याग की भावना के मन्त्र फूँक दिये हैं। हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे के सुख-दुख में सहायक होते हैं। मोहर्रम में मर्सिया गीत या झरनी गीत सभी मिल कर गाते हैं।

झरनी गीत

उतरहिं राज सँ कागा एक एलइ,
बइसलइ चनन बिरिछिये जी !
बामा बोले कागा, दहिन बोले कागी,
कागा के बोल अनमोले जी !

---

१ रावृक्ष बेनीपुरी : विद्यापति पदावली, पृष्ठ ३२४

२ रामइकबालसिंह 'राकेश' : मैथिली लोकगीत, पृष्ठ १६८

उपर्युक्त उद्धरणों से यह ज्ञात होता है कि मिथिला का सामाजिक जीवन लोकगीतों के कारण अपने आदर्श को संस्थापित किये हुए सुन्दरतम है।

३. पारिवारिक आदर्श और मैथिली लोकगीत—

(अ) दाम्पत्य जीवन—मिथिला के सामाजिक जीवन में दाम्पत्य जीवन का महत्वपूर्ण स्थान है और दाम्पत्य जीवन में विवाह की परम्परा अत्यंत प्राचीन प्रतीत होती है। विवाह एक ऐसी संस्था है जिसने संस्कृति और सभ्यता के आरम्भ में मानव को सामाजिक जीवन प्रदान किया था। विवाह की उत्तम प्रणाली के द्वारा ही कोई राष्ट्र प्रगति के पथ पर अग्रसर हो सकता है। विवाह से ही पारिवारिक जीवन का प्रारम्भ होता है और विकास भी। परिवार के भरण-पोषण के निमित्त विवाह ने नाना प्रकार के कार्यों और धन्धों को जन्म दिया, जिससे समाज में शिक्षा, सभ्यता, संस्कृति, कला, विज्ञान आदि की प्रगति हुई है और मनुष्य पाशविक जीवन से बहुत ऊँचा उठ गया है।

प्रकृति के प्रत्येक अणु में नारी और पुरुष की शक्ति समाहित है। सृष्टि के विस्तत्त्र और विकास के लिए दोनों का सम्मिलन अति आवश्यक है। विवाह के द्वारा ही नारीत्व और पुरुषत्व की धाराओं का संगम सम्भव है। मनुष्य में स्वार्थ परायणता की जो भावना है, अपने शरीर से जो अधिक मोह है, वह विवाह द्वारा हो दूर हो सकता है। उसमें त्याग, क्षमा, धैर्य सन्तोष आदि उदात्त गुणों का उदय विवाह के द्वारा ही हो सकता है और संतानोत्पति के द्वारा परिवार की सुरक्षा भी। सबसे बढ़कर विवाह की यह विशेषता है कि नारी और पुरुष की अत्यधिक भोग की भावना को वह मिटा देता है और निवृत्ति की ओर अग्रसर करता है।

जिस प्रकार विवाह के बिना परिवार का निर्माण होना सम्भव नहीं, उसी प्रकार परिवार के बिना समाज की कोई सत्ता नहीं हो सकती, क्योंकि परिवार का सम्बन्ध व्यक्ति से है। आज का समाज यदि परिवार के आदर्श को ग्रहण करले, यानी जिस प्रकार हम परिवार में हिलमिल कर प्रेम से रहते हैं और नियम पालन करते हैं उसी प्रकार समाज में भी रहने लग जाएँ तो समाज का सुन्दर स्वरूप हमारे सामने निखर सकता है। समाज का जो आदर्श है वह परिवार के समान होना आवश्यक है और परिवार का आदर्श भी समाज के समान होना उचित है। परिवार में जो नारी-पुरुष का सम्बन्ध है, पिता-पुत्र का सम्बन्ध है, भाई-भाई का सम्बन्ध है,

ननद-भाभी का सम्बन्ध है, सास-बहू का सम्बन्ध है उन सम्बन्धों को सुदृढ़ बनाने में मैथिली लोकगीतों का सक्रिय सहयोग है। पारिवारिक आदर्श को महत्व देते हुए मिथिला में अनेकों लोकगीतकारों ने लोकगीतों की रचना की है। इनमें सोहर और समदाउन प्रमुख हैं और दोनों का कुछ उल्लेख किया जा रहा है

सोहर

निम्नलिखित सोहर में मिथिला के पारिवारिक जीवन की झाँकी मिलती है। इसमें भाभी अपने देवर से कहती है कि हे देवर। मैंने पुत्र जना है जो तुम्हारी बहन के मनोरंजन का खिलौना होगा—

'देओर जनमल हमरा होरिलबा, बहिन कें ओगँठन हे !'[१]

समदाउन

मिथिला में ब्याह के बाद जब बेटी की बिदाई होती है उस समय करुणा रस से भरी हुई 'समदाउन' गाने की प्रथा है। एक समदाउन' का अंश इस प्रकार है—

बर रे जतन सँ सीता जी कैं पोसलौं,
सेहो रघुबंसी नेने जाय !
मिलि लिअ, मिलि लिअ, सखि सब मिलि लिअ,
सीता बेटी जइति ससुरारि !
आगु-आगु रघुबर पाछु-पाछु डोलिया,
तकरा पाछु लछुमन भाय ![२]

दाम्पत्य जीवन में पति-पत्नी के आदर्शप्रेम पारिवारिक जीवन को मधुरतम बना देते हैं। प्रियतम ने अपनी प्रियतमा से पूछा कि तूम्हारे पास कौन-कौन से आभूषण हैं। इस पर प्रियतमा ने उत्तर दिया—'हे साजन, तुम मेरी माँग का श्रृंगार हो। मेरा देवर शंख की चूड़ी है। मेरी सास मेरे गले का चन्द्रहार है, और देवरानी मेरा बाजूबन्द है—

माँग के टीका प्रभु तोहे छहु,
देवरा शंखा चुड़ि हे !
चन्द्रहार सासु दुलरइतिन,
बाजुबन्द देवरानी हे ![3]

---

१ रामइकबालसिंह 'राकेश' : मैथिली लोकगीत, पृष्ठ ७९
२ वही, पष्ठ १९४
३ वही, पष्ठ १४६

(आ) जन्म-मरण—पुत्र-जन्म के अवसर पर सोहर गाने की परम्परा है। श्रीकृष्ण का जन्म हुआ है और नंद के घर में डंका बज रहा है जिसे सुनकर सबका हृदय गद्‌गद हो रहा है—

नन्द घर डंका बाजए सुख उपजावय, रे ललना !
जनमल श्री यदुनाथ कि नयन जुरायल, रे ![1]

मरण के समय बड़ा ही कारुणिक दृश्य आ खड़ा होता है—

पसरल हटिया, उसरि, घर जाइ छइ,
सौदा किछु किनियौ ने भेल !
काँचहि बाँस के डोलिया फनायल,
रतन मढ़लि चारुकात !
चारि जना मिलि, डोलिया उठाओल,
लय मरघट पहुँचायल !

४. राजनैतिक आदर्श और मैथिली लोकगीत—

(अ) उत्तम शासन-व्यवस्था—मिथिला में प्रकृति के भयंकर प्रकोप के कारण बराबर क्षति आती रही है, जिससे वहाँ का जन-जीवन पीड़ित रहा है। जमींदारी प्रथा ने उसकी प्रगति में बाधा उपस्थित की है और उस पर विभिन्न विचारधाराओं का प्रभाव पड़ा है। उसमें राष्ट्रीय चेतना भी आयी है। साम्यवाद, समाजवाद और गाँधीवाद के आन्दोलन का प्रभाव उस पर पड़ा है और भूदान तथा सर्वोदय का भी। धीरे-धीरे राजनैतिक आन्दोलन के कारण भेद भाव भी मिटने लगा है। इसके परिणाम स्वरूप मिथिला में प्रगतिशीलता की लहर जोरों से आयी है। राजनैतिक समस्याओं को लेकर मिथिला के लोकगीतकारों ने अनेक मैथिली लोकगीतों की रचना की है। उनमें से एक आधुनिक मैथिली लोकगीत का उदाहरण दिया जा रहा है

अँग्रेजों की बिदाई

जेबा के त गेल अँग्रेज, बड़ा दुख द क गेल !
लड़ै के लेल हिन्दुस्तान में पाकिस्तान बना क गेल !

और अंत में ये व्यंग्यात्मक पंक्तियाँ अँग्रेजी शासन के खोखलेपन पर चोट मारती हैं—

चीनी ओ किरासन तेल के कन्ट्रोलकरा क गेल !
पैसा जे चलेलक तइ में छेद करा क गेल !

---

१ रामइकबालसिंह 'राकेश' : मैथिली लोकगीत, पृष्ठ ६५।

पंचायती राज की स्थापना के सम्बन्ध में एक गीत यों है—

जाग जाग भारत के प्यारे नव जवान रे !
उठ आब सीना तान रे !
अँगुली पर छथि गनल गुत्थल दुनिया के बइमान रे !
पूँजी शाही,साम्राज्यशाही, कतेक कहू नाम रे !
उठ आब सीना तान रे !
कान मुनि मुनि क भागल परदेशी बइमान रे !
कायम हैत पंचायत राज समूचा हिन्दुस्तान रे !

इस गीत पर हिन्दी की राष्ट्रीय कविताओं का प्रभाव है और इसमें जवान, सीना, बइमान, दुनिया, कायम आदि शब्द फारसी के हैं। सम्भवतः भावों में तीव्रता लाने के लिए ही ऐसे शब्द प्रयुक्त किये गये हैं।

(आ) राष्ट्रीय चेतना—एकता, प्रेम और सेवा के भाव ही राष्ट्रीयता के प्रतीक हैं—

राम-राज

किसनमा के दुख सब दियौ ने छोड़ाय, हो किसनाम के !
देखितै देखैते बीत गेल चारि पहर राति,
तारा नुका गेल, भेल भिन्सर, हो किसनमा के !
दूध भात खेता आब बच्चा हमर, हो किसनमा के !
रामराज आब हैत, सब हैब खुशहाल, हो किसनमा के !

५. रहन-सहन के आदर्श और मैथिली लोकगीत—

(अ) कर्त्तव्य परायणता—नीचे की इस फाग में प्रियतमा अपने प्रियतम से कहती है कि सावन-भादों में बंगला चू रहा है। तुम नौकरी करके सिर्फ पाँच ही रुपये लाये हो। मैं गहने गढ़ाऊँ या बँगला छवाऊँ? इस गीत में पत्नी ने अपनी वास्तविक दयनीय दशा की चर्चा कर अपनी कर्त्तव्य परायणता की ओर पति का ध्यान खींचा है—

सावन-भादों में बलमुए हो, चुअइ छइ बँगला, सावन भादों में !
पाँच रूपैया पिया नौकरी सँ लायल,
गहना गढ़ाउ कि छबाउ बंगला !

मिथिला में अति वृष्टि और अनावृष्टि के कारण जो दरिद्रता फैली है उसका जीता जागता रूप नीचे की नचारी में इस प्रकार है—

किछुओ ने होइछइ भोला ! गरीब क दीन,
एके गो जे लोटा अछि, बेटा अछि तीन,

उक्त गीत में पिता अपने कर्त्तव्य की सीमा से बाहर नहीं जाता और जब उसके बच्चे भूख और प्यास से व्याकुल होते हैं तो पहले वह उन्हीं की रक्षा करना आवश्यक समझता है और इसी से वह अपनी दीन दशा को शिव के सामने दर्शाता है। उसके सामने परिवार के भरण-पोषण की समस्या विकट रूप में उपस्थित हो गयी है।

निम्नलिखित छठ गीत में एक स्त्री अपनी छोटी सी कामनाएँ लेकर सूर्य से प्रार्थना करती है और कहती है कि हे सूर्य भगवान! तुम स्त्री का जन्म मत दो और जन्म भी दो तो उसे अधिक सौन्दर्य न दो और यदि सौन्दर्य दो तो मूर्ख पति मत दो। यदि मूर्ख पति तो बाँझ न बनाओ। अगर बाँझ बनाओ तो सौतिन न दो—

बेरि बेरि बरजह दीनानाथ हे !
बाबा हे, तिरिया जनम जनि देहु,
तिरिया जनम जब देहु हे दीनानाथ !
बाबा हे, सुरति बहुत जनि देहु !
सुरति बहुत जब देहु हे दीनानाथ !
बाबा, पुरुख अमरुख जनि देहु,
पुरुख अमरुख जब देहु हे दीनानाथ !
बाबा हे, कोखिया बिहुन जनि देहु,
कोखिया बिहुन जब देहु हे दीनानाथ !
बाबा हे, सउतिन सउत जनि देहु।

ऊपर के गीत में स्त्री अपने कर्त्तव्य को अच्छी तरह समझती है और वह नियम-पालन करने में ही अपना गौरव समझती हैं और यही कारण है कि बाँझ तो वह रह सकती है, किन्तु वह अपनी सौत को देखना नहीं चाहती और उससे वह झगड़ा मोल लेना नहीं चाहती। इससे सारा दाम्पत्य जीवन ही कलह से बिगड़ जायगा और वह कहीं की न रहेगी।

(आ) सादा जीवन और उच्च विचार—मिथिला का जन-जीवन तड़क-भड़क, चमक-दमक का नहीं है, साधारण है। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ अधिक उपवास एवं व्रत करती हैं। मिथिला के रहन-सहन-पर उसकी जलवायु का प्रभाव पड़ा है। किसी ने ठींक ही कहा है—

कोकटी धोती, पटुआ साग,
तिरुहुत गीत भरल अनुराग।

भाव भरल तन तरुणी रूप,
एतवे तिरहुत होइछ अनूप ।
और भी—
ठेहुना धोती, मुठिया टीक,
तखन जानब तिरहुतिया थीक ।

मिथिला की रहन-सहन की प्रणाली में पाग (एक प्रकार की पगड़ी) की प्रधानता है । माथे पर पाग कंधे पर चादर और हाथ में छड़ी, बस इतना ही यहाँ शोभन है । इसीसे कविवर चंदा झा ने शिव से निवेदन किया है कि जरा अपनी जटा को समेट लें । वरना, पाग उनके माथे में कैसे वे पहनावेंगे ? इन दो पंक्तियों में शिव के प्रति सान्निध्य दिखलाते हुए चन्दा झा ने यों लिखा है—

समुद्र समुद्र शिव सिर जट, अछि लटपट,
पहिरायएब कोना पाग, घुनड़िहुक संघट !

उक्त पंक्तियों से शिव के आलम्बन को लेकर मिथिला के रहन-सहन के साधारण जीवन पर प्रकाश डाला गया है । चन्दा झा ने एक नचारी निम्न प्रकार लिखी हैं—

चलु शिव कोबराक चालि हे, दोपटा ओढ़ू भोला ।
अछि भरि नगर हकार हे, भलमानुस टोला ॥
हाड़क हार निहारि हे, हेरथि बघछाला ।
हसति बसति सति आज हे, जत आओति बाला ॥
भूधरराज जमाय हे, छाउर करु त्यागे ।
बहु विधि अतर सुगन्ध हे, लागत अंग रागे ॥
प्रणत कहथि कवि 'चन्द्र' हे, सुनु शम्भु निहोरा ।
एखनहु धरि कि सुखाय हे, रानिक दृगनोरा ॥[1]

चन्दा झा ने उक्त नचारी लिख कर यह संकेत किया है कि दुलहे को अपनी ससुराल में किस प्रकार धीरे-धीरे चलना चाहिए, चादर ओढ़नी चाहिए और रहना चाहिए, सब की आज्ञा माननी चाहिए। शिव को यह शिस्त सिखाने का निर्देश समस्त मैथिल को शिस्त पालन के नियम की ओर अग्रसर करता है ।

---

१ **रामइकबालसिंह 'राकेश' : मैथिली लोकगीत, पृष्ठ ५**

(इ) रीति-नीति—मिथिला में रीति-नीति पालन करने के निमित्त कुछ अंध-विश्वास भी फैल गया है। नीचे के इस छठ गीत में इस बात का पुष्टिकरण इस प्रकार है–

बड़ अपराध तुहुँ कएले अबला,
अबला सास निपन पैर देल !
कोन अपराध हम कइली दीनानाथ हे !
बबा कोखिया बिहुन जब देल,
बड़ अपराध तुहुँ कएले अबला गे !
अबला ननदी पर हुलका चलओले,
कओन अपराध हम कएली दीनानाथ हे !
बबा हे पुरुख अमरुख जब देल,
बड़ अपराध तुहुँ कएले अबला गे !
दूध ही कटिअवे पएर धोएलह,[1]

अर्थात् हे अबला, तुमने बहुत बड़ा अपराध किया। सास की लीपी हुई वेदी पर पैर रखा। वह अबला पूछती है कि हे ! सूर्य भगवान, मैंने कौन-सा अपराध किया कि तुमने मुझे बाँझिन बनाया ? उसे उत्तर मिलता है कि हे अबला, तुमने बहुत बड़ा अपराध किया। तुमने अपनी ननद को घूंसे से मारा। फिर वह पूछती है कि हे सूर्य भगवान, मैंने कौन-सा अपराध किया कि तुमने मुझे मूर्ख पति दिया। तो उसे उत्तर मिलता है कि है अबला, तुमने बहुत बड़ा अपराध किया। तुमने दूध से पैर धोया। इस कथन से स्पष्ट होता है कि नियम न पालन करने पर किस प्रकार का दण्ड दिया जा सकता है। यद्यपि इस गीत में सूर्य के बहाने धार्मिक भावों का पुट देकर रीति-नीति पालन कराने की ओर संकेत किया गया है, फिर भी इसका निष्कर्ष उच्च आदर्श की ओर ही है।

उपर्युक्त उद्धरणों से यह सिद्ध होता है कि मिथिला की संस्कृति में लोक गीत इस प्रकार आत्मसात हो गये हैं कि उनके बिना उसका लोक जीवन ही सूना है। समस्त मिथिला में एक ही भारतीय संस्कृति की अविछिन्न धारा अबाध गति से प्रवाहित हो रही है। निस्सन्देह, मिथिला लोकजीवन, लोकगीतों द्वारा प्रभावित और संचालित है। इन्हीं मैथिली लोकगीतों के सहारे यहाँ के

---

१ रामइकबाल सिंह 'राकेश' : मैथिली लोकगीत; पृष्ठ ३५४

आचार-विचार, व्यवहार, अश्रु-हास, परम्पराएँ आदि घोषित हैं। यहाँ के लोकगीतों में उसकी संस्कृति भलीभाँति प्रतिबिम्बित हुई है।

मिथिला के लोक-मानस की यह विशिष्टता है कि वह महाकवियों की रचनाओं को भी पचा कर उन्हें लोकगीतों का स्वरूप प्रदान कर देता है। यहाँ की तिरहुति, नचारी, महेशवाणी, पंजी अपनी अलग विशेषता रखती हैं। मैथिली साहित्य और संस्कृति, मैथिली लोकगीतों के ऋणी हैं। सच तो यह है कि लोकगीत और काव्य में भले ही अन्य साहित्य में भेद हो, किन्तु मैथिली साहित्य और संस्कृति में वह न्यूनतम है।

विद्यापति के गीत जहाँ बंगाल, आसाम, उड़ीसा आदि प्रान्तों के वैष्णव भक्त गाते हैं तो वे ही गीत उपनयन, विवाह, त्योहार के अवसरों पर मिथिला की स्त्रियों के सुरीले स्वर से फूट कर मधुर वातावरण बनाते हैं। विद्यापति हर्षनाथ, उमांपति, लोचन आदि अनेक प्राचीन कवियों से लेकर आधुनिक कवियों की रचनाओं पर मैथिली लोकगीतों की छाप स्पष्टतया दीख पड़ती है। अतः मैथिली संस्कृत में लोकगीतों का महत्त्व इससे अधिक और क्या हो सकता है ?

मैथिली लोकगीतों के वर्गीकरण के पूर्व भारतीय लोकगीतों का वर्गीकरण विद्वानों ने किस प्रकार किया है, इसका विवरण निम्न प्रकार है—

लोक साहित्य को प्रधानतः पाँच भागों में विभक्त किया जा सकता है—

(१) लोकगीत (२) लोकगाथा (३) लोककथा (४) लोकनाट्य (५) लोक सुभाषित (मुहावरे लोकोक्तियाँ, सूक्तियाँ, बच्चों के गीत, पालने के गीत, खेल के गीत)

डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास में लोकगीतों का वर्गीकरण निम्न प्रकार किया है—पृष्ठ ५२-५३।

(अ) संस्कारों की दृष्टि से—गर्भाधान, पुंसवन, पुत्रजन्म, मुंडन, यज्ञोपपीत, विवाह और मृत्यु।

(आ) रसानुभूति की प्रणाली से—शृंगार, (पुत्रजन्म, जनेऊ, विवाह वैवाहिक परिहास, कजली, झूमर) करुण (गौना, जँतसार, निर्गुन, पूर्बी, रोपनी, सोहनी) वीर (आल्हा, विजयभान सोरठी, लोरकी) हास्य (झूमर ब्रज में ढकोसलों) शान्त (भजन, निर्गुन, तुलसीमाता, गंगामाता)।

(इ) ऋतुओं तथा व्रतों के क्रम से—वर्षा, वसंत, कजली, आल्हा (वर्षाऋतु में,) चैता घाँटों, नागपंचमी, गोधन, तीज, गनगौर छठी माता।

(ई) विभिन्न जातियों के अनुसार—पचरागीत (दुसाध) साईं (भिखारी लोग) (धाड़ी, भौया)।

(उ) श्रम के आधार पर (रोपनी, निरवाही या सोहनी, जँतसार, कोल्हू-के गीत, चरखा-गीत)।

डा० सत्येन्द्र ने ब्रज के लोकगीतों को दो भागों में बाँटा है—अनुष्ठान—आचार सम्बन्धी और मनोरंजन सम्बन्धी। उन्होंने सोलह संस्कारों में से तीन संस्कारों को प्रमुख माना है, जैसे—१. जन्म, २. विवाह ३. मृत्यु।[1] उन्होने इन तीनों संस्कार के गीतों का भी कई रूपों में वर्गीकरण किया है। पं० रामनरेश त्रिपाठी ने भारतीय लोकगीतों का वर्गीकरण निम्न प्रकार किया है[2]—

१. संस्कार-सम्बन्धी गीत, २. चक्की और चरखे के गीत; ३. धर्मगीत-त्योहारों पर गाये जाने वाले गीत, भजन, आदि, ४. ऋतु-सम्बन्धी गीत—सावन, फागुन और चैत्र के गीत, ५. खेती के गीत, ६. भिखमंगों के गीत, ७. मेले के गीत, ८. भिन्न-भिन्न जातियों के गीत, जैसे अहीर; चमार, धोबी, पासी, नाई, कुम्हार, भुजवा आदि, ९. वीर-गाथा—जैसे, आल्हा, लौरिक, हीर-रांझा, ढोला मारू, आदि, १०. गीत-कथा—छोटी-छोटी कहानियाँ जो गा-गाकर कही जाती हैं और ११. अनुभव के वचन-घाघ, भड्डरी।

डा० श्याम परमार ने भारतीय लोकगीतों का वर्गीकरण दो प्रकार से किया है सामान्य और वैज्ञानिक[3]।

सामान्य वर्गीकरण—१. जातियों की दृष्टि से, २. संस्कारों और प्रथाओं की दृष्टि से, ३. धार्मिक विश्वासों की दृष्टि से, ४. कार्य के सम्बन्ध की दृष्टि से तथा ५. रस-सृष्टि की दृष्टि से। वैज्ञानिक वर्गीकरण अलग पृष्ठ में दिया गया है।

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद, पटना के (बिहारी-बोली-अनुसंधान-विभाग:) संचालक आचार्य शिवपूजन सहाय ने बिहार के लोकगीतों के संकलन के निमित्त संग्रह कर्त्ताओं के पास एक आवश्यक निर्देश पत्र भेजा था। उसमें उन्होंने

---

१ डा० सत्येन्द्र : ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन, पृष्ठ ११८।

२ डा० श्याम परमार : भारतीय लोक साहित्य, पृष्ठ ६४।

३ वही, ६४,

लोकगीतों के वर्गीकरण पर संग्रह-कर्त्ताओं का ध्यान आकृष्ट किया था। उनका वर्गीकरण यों है—

१. गाथा-गीत—जैसे, राजा भरथरी, ढौलन,स रवन, विजयमल आदि के गीत। २. ऋतु-गीग—जैसे, फगुआ या होली, चैता, कजली, चतुर्मासा, बारहमासा आदि। ३. संस्कार-गीत—जैसे, ब्याह, कोहबर, बेटी की विदाई, समुझवनी, गाली, जनेऊ, सोहर खेलौना आदि के गीत। ४. व्यवसाय-गीत—जैसे, रोपनी और सोहनी के गीत, धोबियों के गीत, कोल्हू के गीत, जँतसार आदि। ५. व्रतोत्सव या पर्व-गीत—जैसे, तीज, जिउतिया, छठ, कुल्हिया आदि के गीत। ६. भजन या श्रुति-गीत—प्रभाती, निरगुन, शीतला माता के गीत, ग्राम देवताओं के गीत तथा अन्य पूजा के गीत। ७. लीला-गोत—जैसे, झूमर, झूले के गीत, डोमकछ के गीत आदि। ८. बिरहा। ९. जोग, टोना और मान के गीत। १०. विशिष्ट गीत—जैसे—पिरिया के गीत, पानी माँगने के गीत आदि। ११. लोरियाँ—जैसे, 'आरे आव—वारे आव' 'घुघुआ माना'। १२. बाल-क्रीड़ा-गीत—जैसे 'ओका-बोका' 'तीन तड़ोका' 'कबड्डी', पहाड़े आदि।

डा० श्यामपरमार ने भारतीय लोकगीतों का वर्गीकरण इस प्रकार किया है—
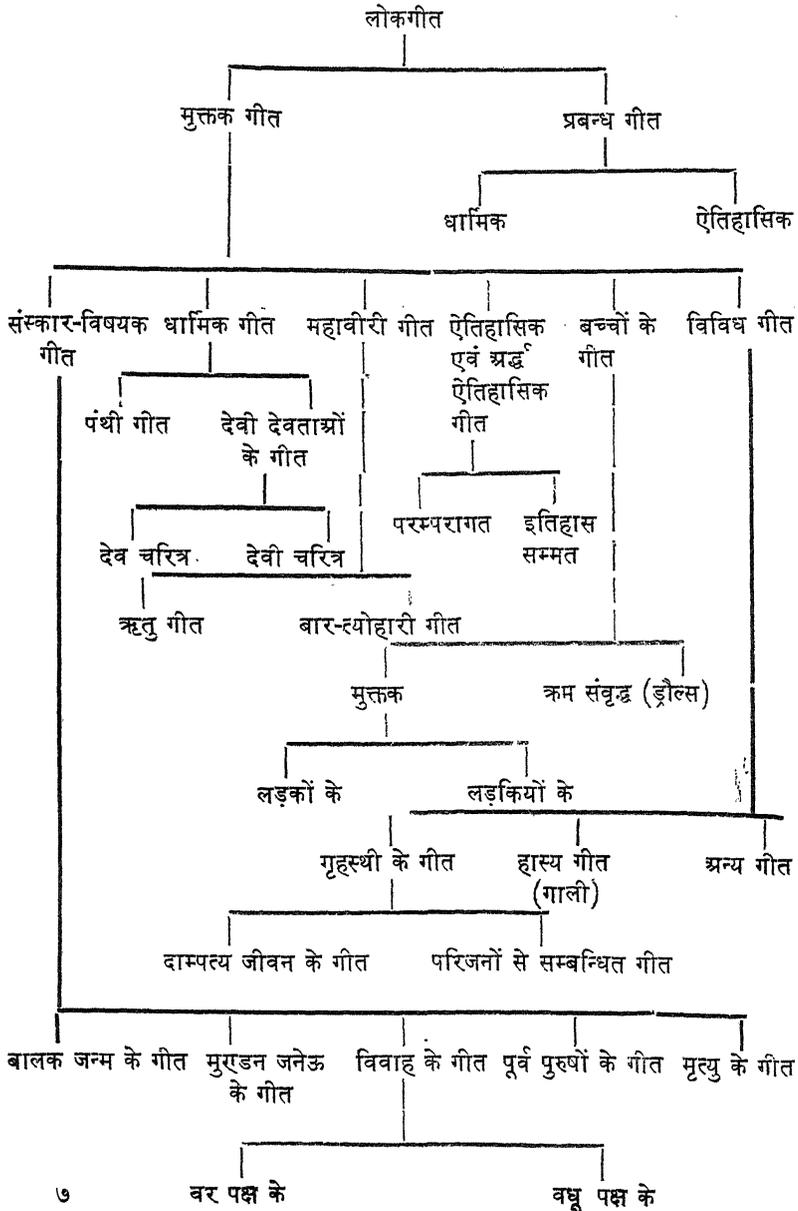
हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास पृष्ठ ५६ : डा० कृष्णदेव उपाध्याय के वर्गीकरण के अनुसार
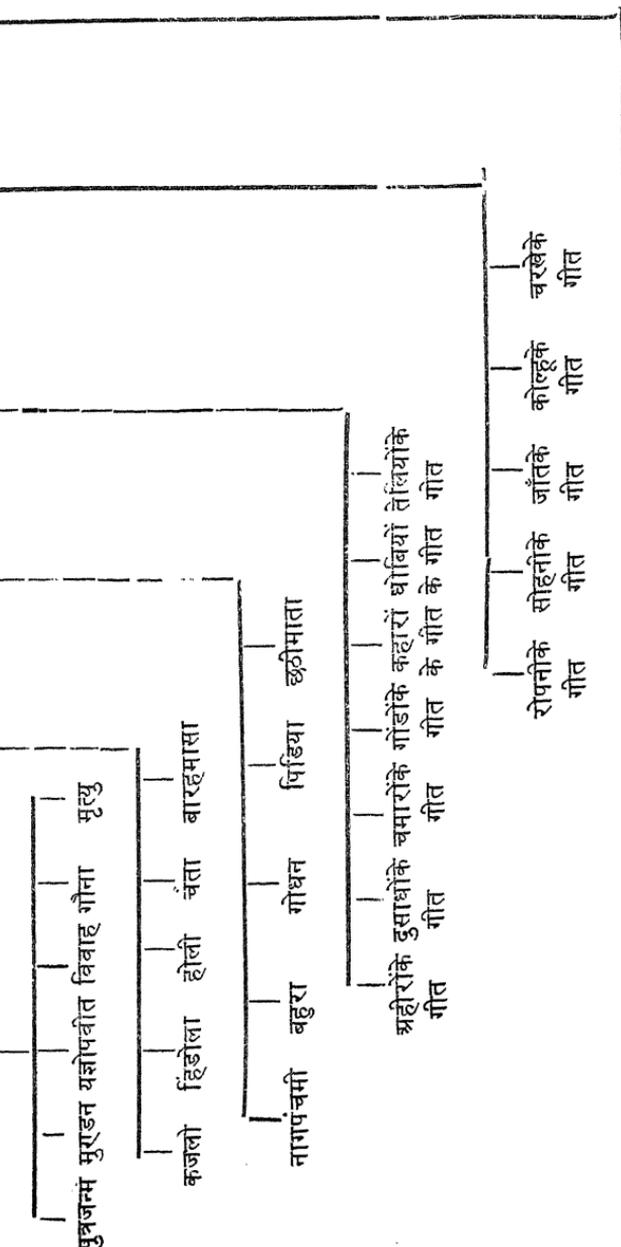
डा० जयकान्त मिश्र ने मैथिली लोकगीतों का वर्गीकरण यों किया है—

यों तो मिथिला की स्त्रियाँ समग्र मैथिली लोकगीतों को देवपक्ष और रसपक्ष में विभाजित कर देती हैं। किन्तु डा० मिश्र मैथिली लोकगीतों के मानव-जीवन की व्यापकता की दृष्टि से सात भागों में विभाज़ित करते हैं[1]—

(१) भजन, (२) देवी देवता के गीत, (३) पावनिक गीत, (४) जन्म गीत, (५) संस्कार गीत, (६) ऋतु गीत, (७) लगनी।

यद्यपि ऊपर भारतीय और मैथिली लोकगीतों के वर्गीकरण किये गए हैं, तथापि उनमें पूर्णता का अभाव दीखता है। अतः मैथिली लोकगीतों का भारतीय लोकगीतों के वर्गीकरण की पृष्टि से निम्न प्रकार वैज्ञानिक वर्गीकरण प्रस्तुत किया जा रहा है—

मैथिली लोकगीतों का वर्गीकरण

मिथिला के जन-जीवन के हास्य और रुदन में लोकगीत मिलते हैं। उनके नाना प्रकार हैं।

(अ) जीवन के विभिन्न संस्कारों के आधार पर

मिथिला में जन्म से लेकर मरण तक नाना प्रकार के सुख और दुख के भावों से भरे लोकगीत गाने की परम्परा युगयुगों से चली आ रही है—

जैसे, सोहर, सम्मरि, लग्नगीत, योग, उचिती, समदाउन, तिरहुति, बटगमनी, मृत्यु गीत (मटौती) आदि।

(आ) धार्मिक संस्कारों के आधार पर

पर्व-त्योहारों में आत्मरक्षा के निमित्त मनौतियाँ रखना, ईश्वर से अर्चना करना और अपनी अपनी श्रद्धा-भक्ति के अनुसार विभिन्न देवी देवताओं के प्रति नाचना-गाना, हर्ष मनाना-रोना धोना आदि—

जैसे, छठ के गीत, भगवती के गीत, महेशवाणी, शीतला माता के गीत, विष्णुपद, नदी के गीत (गंगा नदी, कमला नदी, कोशी नदी), साँप के गीत (बिसहरि), जगरनथुआ, कमरथुआ, ब्रह्म, देवास, झिझिया, जलपा, गैंया, जादूटोना, काली बन्नी, डाइन-चक्र, झरनी के गीत आदि।

---

१ डा० जयकान्त मिश्र : इण्ट्रोडक्शन टु दी फोक लिटरेचर ऑफ मिथिला, पार्ट १, (पोयट्री), पृष्ठ ४।

(इ) पेशों के आधार पर

विभिन्न वर्गों में जीवन-निर्वाह के निमित्त परिश्रम करने के समय गाये जाने वाले प्रचलित मैथिली लोकगीत--

जैसे, चाँचर, जाँत के गीत, खोदपाडनी के गीत आदि ।

(ई) ऋतुओं से सम्बन्धित गीत

मिथिला में ऋतुओं के आधार पर जन-जीवन के सुख-शांति, स्वास्थ्य एवं सौंदर्य के मैथिली लोकगीत निम्न रूपों में प्रचलित हैं--

जैसे, फाग, चैतावर, वसन्त, मधुसाँवनी, बरसाइत, पाबस, मलार, साँझ, प्रभाती, बारहमासा आदि ।

(उ) नाच के गीत

मिथिला की कुछ जातियाँ हर्षोल्लास के समय उत्सव मनाती हैं और नारी तथा पुरुष नाचते हैं और गाते हैं--

जैसे, झूमर, जट्ट-जट्टिन, श्यामा-चकेबा, रास, नटुआ और बिपटा के नाच आदि ।

(ऊ) सामाजिक आर्थिक आधार पर

मिथिला की सम्पन्नता और विपन्नता पर अनेकों लोकगीत लिखे गये हैं और दिनानुदिन लिखे जा रहे हैं—

जैसे, नचारी (यद्यपि नचारी के गीत शिव के विवाह सम्बन्धी हैं तथापि उनके द्वारा मिथिला का प्राचीनकालीन जन-जीवन दीख पड़ता है), कोशी की बाढ़, अकाल, प्रगतिवाद, सत्याग्रह, पंचायत राज, रामराज, अँगरेजों की बिदाई, बूढ़े का ब्याह, गाँधी जी का निधन (तिरहुति), नेताजो, भूदान, श्रमदान आदि ।

(ए) अन्य विविध गीत

सामान्यगीत--जैसे, शिशु-गीत, लोरियाँ, बिरहा, निर्गुण, कीर्त्तन, उदासी, ग्वालरि, नवान्ह, तुलसी-उद्यापन आदि ।

विशेप गीत--प्रबंधगीत (कथा-गीत) जैसे, लोरिक, सलहेस, दीना-भद्री, रन्नू सरदार आदि ।

मैथिली लोकगीतों का सामान्य परिचय

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के परिशिष्ट में मैथिली लोकगीतों के विभिन्न रूप उदाहरणार्थ अंकित किये गये हैं और विशेषतया उन्हीं लोकगीतों को प्रश्रय दिया गया है जो सम्भवतः अमुद्रित हैं । यदि उनमें कुछ मुद्रित भी हो चुके हों तो उनके लिए इस पंक्ति का लेखक क्षमा-प्रार्थी है ।

(अ) जीवन के विभिन्न संस्कारों के आधार पर

जन्म-संस्कार के गीत—मिथिला में जन्म-संस्कार के गीतों में गर्भाधान के पूर्व कोख की कामना करने, मनौती माँगने के अनेकों गीत गाये जाते हैं। तत्पश्चात् गर्भ के समय गर्भिणी की नाना प्रकार की चीजें खाने की इच्छाएँ होती हैं। इनके सम्बन्ध में भी अनेकों गीत प्रचलित हैं। पुत्र-जन्म के समय मंगल गीत गाये जाते हैं। शिशु को झूले पर झुलाने और सुलाने की लोरियाँ गायी जाती हैं।

सोहर

मिथिला में जन्म-संस्कार के शुभ अवसर पर जो गीत गाये जाते हैं उन्हें सोहर कहते हैं। कहीं कहीं इसे सोहिलो, सोभर भी कहते हैं। सम्भवतः यह संस्कृत की 'सूतिका' का ही अपभ्रंश रूप है। सोहर को मंगल गीत भी कहा जाता है। पुत्र-जन्म के सुअवसर पर टोले भर की स्त्रियाँ एकत्र होती हैं और सोहर गाती हैं। जन्म से छह दिनों तक यह मंगल समारोह चलता रहता है। कन्या पैदा होने पर प्रायः सोहर नहीं गया जाता। इसका आधार आर्थिक कठिनाई है। कन्या के विवाह में घरवालों को अधिक व्यय करना पड़ता है और उनका उत्तरदायित्व भी बढ़ जाता है। संभवतः इसी कारण कन्या के जन्म के समय कहीं कहीं सोहर नहीं गाया जाता है।

सोहर में शृंगार, हास्य और करुण रस भरे रहते हैं। पुत्र-जन्म के अतिरिक्त यह मुण्डन, उपनयन और विवाह संस्कार के अवसर पर भी गाया जाता है। मैथिली सोहर के दो प्रकार हैं—एक तो धार्मिक हैं जो राम और कृष्ण के जन्म के गुणगान सम्बन्धी हैं और दूसरे जनसाधारण सोहर हैं जो जन्म, विवाह संस्कार आदि के अवसर पर गाये जाते हैं। धार्मिक सोहर रामनवमी और कृष्णाष्टमी व्रत के अवसर पर भी गाये जाते हैं। सोहर की रूप रचना को देख कर ऐसा आभास होता है कि मिथिला में स्त्रियों के द्वारा सौहर रचे गये हैं। पुरुषों ने बहुत कम सोहर लिखे हैं। कहीं कहीं मैथिली सोहर में हिन्दी के महाकवि तुलसीदास और सूरदास के नाम भी जोड़ दिये गये हैं। उनके भीतर प्रचारात्मक भावना ही छिपी हुई है। सोहर की टेक है—"ललनारे" "हे"। सोहर रचने वालों में नन्दलाल, सुकविदास, दर्पदास के नाम प्रसिद्ध हैं। सं० १६८७ पदुमकेर गाँव के (मोतिहारी से १० मील पूरब तथा सीतामढ़ी से १४ मील पश्चिम) मंगनीराम ने पौराणिक सोहर की भी रचना की थी।

मुंडन सम्बन्धी सोहर बहुत कम हैं जो चुमौन के (आशीष) गीतों में

मिश्रित हैं। मुंडन संस्कार बालक के जन्म के तीसरे, पाँचवें या सातवें वर्ष के बाद प्रारम्भ होता है और हजाम कैंची से उसके सिर के बाल काट देता है। बालक की बहिन या फूफी बाल बटोर बटोर कर अपने अँचल में रखती हैं। बहिन या फूफी को इस अवसर पर साड़ी, बर्तन कुछ नकद रुपये आदि भेंट में दिये जाते हैं।

उपनयन के भी अनेकों गीत हैं। जैसे, चरखा-गीत, कुमरम-गीत, केसकट्टी गीत, कौली कल्याणी-गीत, छगदान-गीत, भीख-गीत आदि। बालक का उपनयन संस्कार आठ वर्ष से बारह वर्ष की आयु के अन्दर होता है। इस संस्कार में बालक को ब्रह्मचर्य, विद्या, शौर्य और तेज की प्राप्ति के लिए जनेऊ पहनाया जाता है। इस अवसर पर हजाम ब्रह्मचारी के सिर के बाल अस्तूरे से काट डालता है। कटे हुए बाल को ब्रह्मचारी की बहन गौशाला, नदी या तालाब के किनारे गाड़ देती है। उपनयन संस्कार के एक महीने पूर्व से ही चूमौन के गीत गाये जाते हैं जिनमें शिव और शक्ति की स्मृति भरी रहती है। उपनयन संस्कार का मिथिला में महत्वपूर्ण स्थान है। उपनयन का भाव है सामीप्य प्राप्त करना।

सम्मरि

"सम्मरि" स्वयंवर का अपभ्रंश है। त्रैता और द्वापर की पौराणिक कथाओं के आधार पर इसकी रचना की गई है। इसमें विवाह-प्रथा के द्वारा तत्कालीन सामाजिक अवस्था का निरूपण दीख पड़ता है।

सम्मरि के दो रूप हैं—एक प्रबन्धात्मक है जिसकी कथावस्तु पौराणिक है और दूसरा मुक्तक है जिसमें प्रत्येक विषय का स्वच्छन्द वर्णन है। सम्मरि विवाह-काल से पूर्व ही गायी जाती है। कहीं-कहीं होली के अवसर पर भी इसे गाने की प्रथा है। मिथिला में सीता-सम्मरि, रुक्मिणी-सम्मीर ऊषा-सम्मरि लक्ष्मी-सम्मरि, राम-सम्भरि जगन्नाथ-सम्मरि आदि अधिक प्रसिद्ध हैं। सम्मरि प्राचीन-कालीन विवाह के बीते हुए पवित्र उत्सवों के स्मरण दिलाती है।

इसके प्रमुख रचयिता लोकनाथ हैं। कहीं कहीं कबीर का नाम भी सम्मरि में आ गया है। इसकी टेक—'अ', 'ए', 'यो' और 'हे' हें।

लगन-गीत

मिथिला के विवाह-संस्कार के अनेकों लोकगीत प्रख्यात हैं। उनमें दाम्पत्य जीवन के हास-उल्लास हैं। धार्मिक दृष्टि से राम और शिव के विवाह के भी अनेकों गीत गाये जाते हैं।

विवाह के गीतों को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है—

१. बेटी के विवाह-गीत

२. बेटे के विवाह-गीत

३. समदाउन या द्विरागमन-गीत

१. बेटी के विवाह-गीत

विवाह की अवधि के पूर्व 'कुमार' गीत गाया जाता है जो कि बड़ा ही रस और भावपूर्ण होता है। विवाह के समय पसाहिन गीत (वस्त्रालंकृत) गाये जाते हैं। उस समय कन्या विवाह-मंडप के लिए वस्त्राभूषण से सुसज्जित करा दी जाती है। जब बारात जाती है तब लावा (धान की खील) भूजने का गीत गाया जाता है। कन्या की फूफी धान का लावा भूजती है और वर के स्वागत सत्कार सम्बन्धी गीत गाये जाते हैं। डहकन और उचिती के गीत भी प्रचलित हैं। परिछनि गीत स्त्रियाँ वर के शुभागमन के सम्मान के समय गाती हैं। मिथिला के मुसलमानों ने भी परिछनि गीत को अपना लिया है।

वर के स्वागत के समय नाना प्रकार की प्रथाएँ प्रचलित हैं। ऊखल में धान कूटा जाता है जिसे औठङ्गर कूटने का गीत कहते हैं। फिर वर को वेदी के चारों ओर घुमाने की प्रथा है। उसे वेदी घुमाने का गीत कहते हैं। मंडप घुमाने का भी गीत गाया जाता है जिसमें यह चर्चा की जाती है कि कोई योगिन वर को देखने के लिए कामाख्या (आसाम) से आयी है। इस गीत को नैनायोगिन का गीत कहते हैं। कन्यादान के समय जो गीत गाया जाता है उसे मौहक का (मधुपर्क) गीत कहते हैं। खीर बनायी जाती है और घर की देवी के आगे मिनती की जाती है जिसे मिनती का गीत कहते हैं। तत्पश्चात् गौरी पूजा का गीत प्रारम्भ होता है और गौरी पूजने की प्रक्रिया चलती है।

विवाह के चार दिनों के बाद जिसे चतुर्थी कहते हैं, वर-कन्या का चुमौन गीत गाया जाता है। कन्या की कवरी जिस दिन खोली जाती है उसे जूटी खोलने का गीत कहते हैं। घर की दीवाल पर वर की स्मृति में कन्या हाथ की थाप (चावल के आँटे को पीस कर उसे पानी में मिलाकर पिठार बनाते हैं और उसे हाथ में लगा देते हैं) लगाती है। इस अवसर पर आम और महुए के विवाह का गीत गाया जाता है।

रसपक्ष के गीतों के साथ तिरहुति, बटगमनी, महेशवाणी, गोसाउनी, योग, उचिती और रास भी विवाह के समय गाये जाते हैं। इनके अतिरिक्त सम्मरि, झूमर, सारंग, कोबर, उदासी और कौतुक गीत भी गाने की परम्परा है।

मिथिला में विवाह के गीत जितने हैं वे सभी वर-कन्या के कार्य-कलाप से सम्बन्धित हैं। जब वे दोनों आँगन में लाये जाते हैं तो तिरहुति, बटगमनी, मलार, सारंग और झूमर गीत गाये जाते हैं। जब वर भोजन करने बैठता है तब भाँति भाँति के गीत गा-गा कर स्त्रियाँ उन्हें प्रमुदित करती हैं।

उचिती

वर के स्वागतार्थ (भोजन के समय) उचिती-गीत भी गाने की प्रथा है।

योग

वर-कन्या को परस्पर प्रेम-सूत्र में बाँधने से लिए योग गीत गाया जाता है। योम का तात्पर्य है—प्रेम का तंत्र-मंत्र, स्त्रियों की भाव-भंगिमा। कुछ लोगों का कथन है कि योग-गीत विद्यापति के पूर्व से ही चले आ रहे हैं। हाथ धोने सम्बन्धी भी गीत है जिन्हें अँचायब-गीत कहते हैं। वर के भोजन-काल में गीत गाने का तात्पर्य यह है कि वर को धीरे-धीरे रुचि से भोजन करना चाहिए और गायिका को भी गीत गाते समय आनन्द अनुभव होते रहना चाहिए।

वर-कन्या जब शयनागार में पहुँचते हैं तो उस समय कोबर-गीत गाया जाता है। यह गीत विवाह-गीत में प्रमुख स्थान रखता है। विशेष रूप से वर के लिए कोबर का कक्ष चित्रों से सजाया जाता है। उसमें पुरहर और पातिल को रख दिया जाता है जोकि शिव और पार्वती के प्रतीक हैं। कोबर गीत में वर-कन्या के प्रेम-मिलन और मधुमय जीवन की स्वर लहरी भरी रहती है।

बेटे का विवाह-गीत

बेटे के लिए भी कुमार-गीत गाये जाते हैं। "सिरहर" (कलश) भरने के गीत और बेटे के विवाहोपरान्त जन्म-भूमि लौट आने के गीत भी गाये जाते हैं।

समदाउन

समदाउन को द्विरागमन-गीत भी कहते हैं। इसे ही बेटी की बिदाई कहते हैं। समदाउन संस्कृत की संवादवाणी का अपभ्रंश है। इस प्रकार के गीत प्रायः प्रत्येक देश और प्रान्त में पाये जाते हैं। मैथिली लोकगीत यों तो करुण-रस से भरे हुए हैं, किन्तु समदाउन तो इस दृष्टि से बेजोड़ है। इसमें सरलता और स्वाभाविकता है। विवाह संस्कार की समाप्ति के बाद इसे गाने की प्रथा है। कन्या जब ससुराल जाने लगती है तब उसकी बिदाई का मार्मिक दृश्य सबके हृदय को द्रवित कर देता है। करुण-रस

की प्रधानता के कारण आजकल कहीं कहीं मृत्युकाल के कारुणिक दृश्य को भी समदाउन में उपस्थित किया जाता है। समदाउन की टेक है—सजनी गे! आय, हे, अहि सखिया। इसके प्रमुख लोकगीतकार हैं—कुमर, श्यामानंद साहिबराम, रत्न कवि, गणनाथ झा और विद्यानाथ झा। विद्यापति ने भी कई समदाउन की रचना की है। समदाउन में कहीं कहीं कबीरदास का भी नाम आ गया है। दशहरे की नवरात्रि में दुर्गा की प्रतिमा के विसर्जन के समय भी समदाउन गाने की प्रथा है और श्यामा-चकेवा को कार्तिक महीने में विसर्जन के समय भी समदाउन गाने का प्रचलन है।

तिरहुति

तिरहुति-गीत मिथिला की अपनी विशेष देन है। इसमें प्रेम की प्रगल्भता, स्वाभाविकता और सरलता की अभिव्यंजना रहती है। इसमें कहीं कहीं छे, छे और आठ आठ पंक्तियाँ होती हैं। दो-दो पंक्तियाँ और एक एक चरण होते हैं। तिरहुति में श्रृंगार रस के संयोग और विप्रलम्भ दोनों पक्ष के भावों का समावेश होता है। इसकी टेक में ना, हो, रे, सजनीगे का प्रयोग होता है। इसके रचने वाले हैं—विद्यापति, उमापति, हरिनाथ, भानुनाथ, हर्षनाथ, साहेबराम, वासुदेव, नन्दलाल, जीवनाथ, रमापति, वंशीधर, धनपति, कृष्ण, बुद्धिलाल, नन्दीपति, चन्द्रनाथ, बब्रुजन आदि। तिरहुति-गीत मिथिला की प्राचीनतम रचना है। अपनी पुस्तक वर्णरत्नाकर में ज्योतिरीश्वर ठाकुर ने (विद्यापति से पूर्व) 'तिरहुति'[1] शब्द का भी प्रयोग किया है। इससे स्पष्ट जान पड़ता है कि 'तिरहुति' लोकगीत विद्यापति से पूर्व ही मिथिला में प्रचलित था। तिरहुति की रचना आधुनिक लोकगीतों में भी हो रही है।

बटगमनी

बटगमनी का अर्थ है पथ पर गमन करने वाली। मिथिला में त्योहार, उत्सव, मेले के समय स्त्रियाँ रास्ता चलते चलते गीत गाती हैं। पनिहारिन भी बटगमनी की सुरीला तान छेड़ती है। इसमें दो पक्ष हैं—सुखान्त और दुखान्त। बटगमनी को सजनो भी कहते हैं। अभिसार करके जब नायिका अपने प्रियतम से मिलने के लिए चलती है तब उस अवसर पर भी इसका प्रयोग किया जाता है। इसकी टेक है—'सजनी गे' पहली और तीसरी पंक्तियों के अन्त में

---

१ ज्योतिरीश्वर ठाकुर : वर्णरत्नाकर, संपादक—डा० सुनीतिकुमार चटर्जी पृष्ठ १३, ६३

'सजनी गे' की गूंज आ जाती है और उसमें अन्तस्थल की मधुर टीस छिपी-सी लगती है। इसके प्रवर्तक हैं–विद्यापति, धैरजपति, हर्षनाथ, दुखभंजन, मेघदूत, फतुरलाल, कर्णजयानन्द, चतुरानन, सुकवि; यदुनाथ, सहस्त्रराम, बबुजन, सनाथ आदि। इसका प्रभाव और प्रसार ऐसा है कि आजकल भी इसकी लय-माधुरी के आधार पर लोकगीतों की रचना चल रही है।

मृत्यु-गीत (मदौती)

इस गीत की रचना मिथिला में अधिक नहीं हुई है और यह गीत निगुर्ण से सम्बन्ध रखता है। इसमें विधवा का करुण-विलाप और उसकी दीनदशा की चर्चा रहती है। दिवंगत आत्मा की स्मृति में शोक-गीत गा गा कर विधवा विसूरती रहती है। इसमें करुण-रस ओत-प्रोत रहता है। इसे मदौती कहते हैं।

(अ) धार्मिक संस्कारों के आधार पर

छठ के गीत

छठ को सूर्य-षष्ठी व्रत कहते हैं। षष्ठी का बिगड़ा हुआ रूप छठी है जिसे छठ कहते हैं। यह त्योहार कार्तिक महीने के प्रायः शुक्लपक्ष की षष्ठी को होता है। यह सामूहिक त्योहार है। इसमें बड़ी नेमनिष्ठा दिखलाई जाती है और एक महीने पहले से ही सामग्री जुटायी जाती है।

यह त्योहार प्राचीनतम है। अथर्ववेद संहिता में सूर्य और चन्द्र का नाम आया है और दोनों को ब्रह्म की आँखों के रूप में माना गया है—

यस्य सूर्यश्चक्षुश्चन्द्रमाश्च पुनर्णवः

—अथर्ववेद ७।३२।३४

सूर्य षष्ठीव्रत कथा के अनुसार यह पता चलता है कि अत्रि मुनि की पत्नी अनुसूया ने इसका आरंभ किया था। उसे पति-प्रेम और सौभाग्य की प्राप्ति हुई थी—

कृतानुसूर्थया ह्येषा अत्रिपत्न्या विधानतः,
सौभाग्यं पति-प्रेमातितया लब्धं यथेच्छया।

—सूर्य-षष्ठी-व्रत-कथा, श्लोक २१

इसकी टेक 'हे' है। इसमें सूर्य देव और छठी देवी की स्तुति भरी रहती है।

भगवती के गीत

इसे गोसाउनी-गीत भी कहते हैं। इसके गीत प्रत्येक त्योहार और विवाह-संस्कार के अवसर पर भी गाये जाते हैं। इन गीतों में भगवती की

स्तुति रहती है। कहीं कहीं सूरदास का नाम भी जोड़ दिया गया है। घर में देवी-देवता की पूजा होती है जिसमें ब्रह्म, गोविन्द, हनुमान, जलपा, धर्मराज देवता प्रमुख हैं। गाँव के भगता को देवी-देवता विशेष अवसर पर स्वप्न देते हैं और उसके भीतर वे प्रवेश करते हैं। मिथिला में इस तरह की धारणाएँ फैली हुई हैं। देवी-देवता के लिए विशेष प्रकार के गीत गाये जाते हैं। जैसे, १. गहिला, २. बामन्ती, ३. देवी भवानी, ४. फेकूराम, ५. बालापीर, ६. कालिका, ७. हनुमान, ८. भैरव, ९. विसहरा, १०. धर्मराज, ११. साहेब खबास, १२. गोबिन्द, १३. सखा सोमनाथ, १४. जलपा। इनमें विसहरा या साँप के गीत अधिक प्रसिद्ध हैं।

महेशवाणी

शिव की उपासना के दो प्रकार के गीत हैं—महेशवाणी जिसमें शिव के प्रति भक्ति-भावना निहित है और नचारी जिसमें शिव-पार्वती के ब्याह का उल्लेख है और व्यंग्य-विनोद है। इसके रचयिता हैं—विद्यापति, कारनाटक, हर्षनाथ, चन्दा झा। 'तिरहुति' की भाँति महेशवाणी और नचारी भी मिथिला की अपनी देन है। इसकी टेक है—'हे'!

शीतला माता के गीत

शीतला चेचक की देवी मानी जाती है। इसे पचनियाँ के गीत भी कहते हैं। चेचक की टीका लगाते समय झाल बजा बजाकर पचनियाँ शीतला माता का गीत गाता है। इसमें बच्चे की रक्षा के निमित्त देवी से नाना प्रकार की विनती की जाती है। यदुनन्दन भगत ने कई शीतला माता के गीत लिखे हैं। इसकी टेक है—'मैया हे'!

विष्णु-पद

विष्णु की स्तुति में विष्णु पद गाया जाता है और इसे सत्यनारायण पूजा, यज्ञ, उपनयन, विवाह के अवसर पर गाने की प्रथा है। इसकी मैथिली भाषा शुद्ध नहीं है। इसका कारण यह है कि अयोध्या और मथुरा तीर्थ स्थान थे और विष्णु भगवान का वहाँ ही आविर्भाव हुआ था।

नदी के गीत

मिथिला की प्रसिद्ध नदियों में गंगा, कमला और कोशी का महत्वपूर्ण स्थान है। नदी के गीत अति प्राचीन हैं। ये गीत कदाचित् मछुए द्वारा रचे गये हैं और उन्हीं के ये गीत हैं। किसान को नदी के द्वारा कृषि करने की

सुविधा होती है और उसकी बाढ़ के कारण क्षति भी उठानी पड़ती है। गंगा नदी से विद्यापति ने प्रार्थना की है। आदिम युग में संभवतः मानव ने आत्म-रक्षा के निमित्त प्रकृति की अर्चना की होगी जिसमें नदी के गीत भी सम्मिलित होंगे।

साँप के गीत

इसे बिसहरा-गीत भी कहते हैं। ये पाँच बहिनें थीं और उनके साथ नाग भी था। इसमें नाग पूजा की प्रधानता है। श्रावण में नागपंचमी त्योहार होता है। इस अवसर पर मिथिला में नाग के बिल पर लावा और दूध रखा जाता है। कुछ निम्न जाति की स्त्रियाँ मनौती रखती हैं और घर-घर भीख माँग कर यह पूजा सम्पन्न करती हैं। कुछ लोग हाथ में ईसरगज नाम की बूटी बाँधते हैं। इसे बाँधने पर साँप किसी को नहीं काटता है, ऐसा विश्वास प्रचलित है। नागपंचमी के अवसर पर मिथिला के लोग नीम की मंजरी में गुड़ और अरवा चावल मिलाकर थोड़ा-सा खाते हैं। इस तरह की प्रक्रिया आँध्र प्रदेश में भी प्रचलित है। इससे यह पता चलता है कि नीम की पत्ती और मंजरी की कडुआहट साँप के विष को दूर करने की शक्ति रखती है। साँप के गीत भी अति प्राचीनतम हैं।

जगरनथुआ, कमरथुआ

जगरनथुआ का गीत जगन्नाथ धाम से सम्बन्धित है। रेल के यातायात के पहले लोग पैदल ही विष्णु के गीत गाते हुए जगन्नाथ धाम की यात्रा करते थे। जगन्नाथ की महिमा के गीत इसमें भरे हैं।

कमरथुआ शिव सम्बन्धी गीत हैं। वैद्यनाथधाम की ओर यात्रा करने वाले इसके गीत गाते हैं और शिव के प्रति आत्म निवेदन प्रकट करते हैं। ये गीत बड़े ही सुरीले स्वर में गाये जाते हैं। 'होभाइ'; 'भैरव-भूपाल', 'हे' आदि इसकी टेक है।

ब्रह्म, (बरहम) देवास, झिझिया, जलपा, गैंया

जब कोई मर जाता है तो उसकी आत्मा किसी भगता के अन्तर में प्रवेश कर जाती है और वह भगत या भगता नाचने-गाने लगता है और कुछ अग्र सूचना देता है। इस प्रकार की प्रक्रिया को ब्रह्म कहते हैं।

देवास का तात्पर्य यह है कि किसी देवता को गुहराने के पहले अपने आप को संयमी, व्रती और पवित्र बना लेना, अमुक देवी-देवता के गीतों को

गा गाकर प्रभाव डालना, नाचना कूदना। कोई-कोई भगता ऐसी अवस्था में दो तीन दिनों तक मौन धारण कर लेता है और एकाहार करता है। अपने ध्यान को एकाग्र करता है। वह बड़ा ही गंभीर दीख पड़ता है। गाँव वाले एसे भगत का मान करते हैं और उससे डरते भी हैं कि कहीं कोई अभिशाप न दे दे!

झिझिया के गीत दीपावली के त्योहार के समय गाये जाते हैं। औरतें जादूटोने के मंत्र से बचने और डाइन को फटकारने के लिए घड़े की पेंदी में छेद कर डालती हैं और उसे सुन्दरतम ढंग से रँग कर अपने माथे पर रखती हैं और गाँव भर में घूमती हैं और गीत गाती हैं। घडे में दीपक भी रख देती हैं।

जलपा भी गाँव की देवी है। ज्वालामुखी या जालपाद से जलपा या जालपा का नाम बना है। इसमें भैरव से प्रार्थना की जाती है और उसकी महिमा का गुणगान किया जाता है। किसी किसी गाँव में गहवर बना रहता है जिसमें जालपा को स्थापना होती है और भगत उसके सामने नाचते गाते हैं।

गैंया भी घर के देवता में ही गिना जाता है। इसे विष्णु-पद के अन्तर्गत रखा गया है। तुलसीदास का नाम भी इस गीत के अन्त में कहीं-कहीं जोड़ दिया गया है।

काली बन्नी

राजपूत, ग्वाले और कुछ जातियों की यह घरेलू देवी है। काली की पूजा की महिमा इस गीत में दीख पड़ती है। जगदम्बा, महामाया के नाम इसमें गुहराये जाते हैं।

डाइन-चक्र

इस गीत में जादूटोना, टोटमा का संकेत है। निर्गुण के रूप में इसे गाया जाता है और कहीं-कहीं कबीरदास का नाम भी गीत के अन्त में रख दिया गया है।

झरनी के गीत

मिथिला में ताजिया या दाहा (मुहर्रम के अवसर पर) के प्रति हिन्दू मुसलमान मिलकर हाथों में बाँस की बनी झरनी लेकर मर्सिया के गीत गाते हैं। रात या दिन में बराबर गाते रहते हैं। झरनी के स्वर में मर्सिया की तान घुल कर समा बाँध देती है। झरनी के गीतों का संकलन ग्रियर्सन ने भी

किया है और आज भी झरनी के गीत की ताल लय पर नये-नये गीत बन रहे हैं। इसमें हसन हुसैन के गुणगान भरे रहते हैं। इसकी टेक है–'हाये जी', 'रे हाय हाय', 'हाय रे हाय' !

(इ) पेशों के आधार पर

चाँचर

चाँचर को मैथिली में परती छोड़ी हुई जमीन कहते हैं। सावन-भादों में धान रोपते समय मजदूरनियाँ और मजदूर प्रश्नोत्तर के रूप में चाँचर के गीत गाते हैं और अगहन में धनकटनी के मौके पर भी इन्हें गाते हैं। इन गीतों में हर्षोल्लास के भाव भरे हैं और इनमें सक्रियता है।

जाँत के गीत

जाँत के गीत तीन बजे रात से ही जाँत पीसनेवाली गाने लग जाती हैं। इनमें पीसने वाली प्रेम कीं चर्चा करती है और अपने प्रियतम की मधुर स्मृतियों के भाव भरे गीत गाती हैं। जाँते की ध्वनि में ये गीत भी मादक बन जाते हैं। इसकी टेक है–'रे की', 'हो रामा' आदि। निधि और गणनाथ झा ने अनेकों ऐसे गीत रचे हैं।

खोदपाडनी के गीत

यह गीत नववधू के शरीर पर गोदना गोदते समय खोदपाडनी गाती हैं। इसमें प्रेम-रस की बातें रहती हैं। इसकी टेक है—'रे जान', 'जान रे', 'जान' ! इस गीत में पारिवारिक जीवन के सम्बन्ध की चर्चा रहती है।

पमरिया (हिजरा) पुत्र-जन्म के अवसर पर बधाई माँगने के लिए पमरिया आता है। इसकी खास जाति है। पमरिया पेशेवर गायक है। यह नाच-नाच कर छोटे ढोलक की ताल पर गाता है। इसके गीत को पमरिया गीत कहते हैं इस गीत में प्रायः 'सोहर' ही गाया जाता है।

बखो-बखिन भी पमरिया की ही श्रेणी की एक जाति है जो जीवन-निर्वाह करने के लिए जन्म के गीत गाते हैं और दोनों नाच-नाच कर बधैया माँगते हैं। ये भी पेशेवर जाति हैं और 'सोहर' गाते हैं। इनके 'सोहर' पर उर्दू का प्रभाव रहता है। इनकी मैथिली भाषा भी खिचड़ी है।

(ई) ऋतुओं से सम्बन्धित गीत

फाग

ऋतुओं से सम्बन्धित गीतों में फाग का स्थान प्रमुख है। यह सामूहिक

त्योहार है और यह फागुन में मनाया जाता है। होलिका दहन के अवसर पर गाँव के सभी लोग शामिल होते हैं और गाते-बजाते हैं। एक महीने पूर्व हो फाग के गीत-गायन प्रारम्भ हो जाते हैं। इस त्योहार में बड़ा ही मेल-मिलाप मिथिला में दिखलाई पड़ता है। सब के सब एक दूसरे को रोली, रंग पानी में घोल कर डालते हैं। 'सुन रे भइया मोर कबीर, भले जी भले के नारे लगाते हैं।' जुलूस निकलता है। रास्ते में औरतें भी उन पर रंग छिड़क देती हैं। हर एक घर के दरवाजे में दस मिनट बैठ कर या जुलूस होली गाता है और अन्त में कहता है—'सदा आनन्द रहे तोहि दुआरे, मोहन खेले होरी हो, एकबर खेले कुमर कन्हैया, दोबर राधा गोरी हो!' फाग या होली उल्लास का त्योहार है। इस गीत की टेक में—'हो', 'ना', 'मा' 'आ' रहते हैं। मैथिली की कुछ फाग पर भोजपुरी का प्रभाव है और भाषा भी भोजपुरी मिश्रित है।

चैतावर

चैतावर में वसन्त ऋतु की भावोच्छवास निहित है। इसमें प्रेम का पुट रहता है और फागुन, चैत महीने में गाने की प्रथा है। इसकी टेक है—"हो राम", 'हे राम', "हो रामा" आदि। इसमें जीवन के मधुरतम भाव हैं और यह करुणरस से आप्लावित है—"चैतबित जयतइ, हो रामा, तब पिया की करे अयतइ!"

वसन्त

इसकी मादकता अपूर्व है। इसमें शृंगाररस ओतप्रोत है। विद्यापति ने वसन्त के स्वागत में अनेकों मैथिली लोकगीत लिखे हैं। इसमें भी करुणरस भरा है—

अरे, हम किनका संग खेलब ऋतु बसन्त,
घर नइ ऐला अमरुख कंत!

मधुसाँवनी

विसहरा को ही मधुसाँवनी कहते हैं। नव विवाहिता का यह त्योहार है और सावन शुक्ल तृतीया को इसे मनाते हैं। स्त्रियाँ जलती हुई बत्ती लेकर नव-विवाहिता की ठेहुनी पर दागती हैं। फफोले अच्छे उठते हैं तो उसके सधवापन के शुभ संकेत स्त्रियाँ मानती हैं। आजकल भी मधुसाँवनी के अनुकरण पर नये नये लोकगीत लिखे जा रहे हैं। उनमें संवेदना और सहानुभूति के भाव भरे हैं।

वट-सावित्री (बरसाइत)

सधवा स्त्री जेठ महीने की अमावस्या तिथि को वट-सावित्री की पूजा करती है। इसके गीतों में पौराणिक कथा है। वट वृक्ष के नीचे सत्यवान की मृत्यु हुई थी और सावित्री ने अपने पातिव्रत धर्म से उसे जीवित किया था और अपने पति को पुनः प्राप्त कर लिया था। इसी उद्देश्य को लेकर मिथिला में वट-सावित्री के गीत गाये जाते हैं। फतुरलाल ने इसके अनेकों गीत लिखे हैं। इसकी टेक है—'सजनि गे'!

पावस

पावस के गीत वर्षाकाल में गाये जाते हैं। यह प्रावृष (संस्कृत) का अपभ्रंश है। इसके गीतों में वियोगव्यथा का मार्मिक वर्णन रहता है। इसे झूले पर झूलते हुए गाते हैं। इन गीतों में कृष्ण और राधा के मिलन और वियोग की चर्चा रहती है। इसकी टेक है—'ना रे'!

मलार

मलार में जीवन के मधुर क्षणों के गीतों का उल्लेख है। मिलन, आकर्षण आदि उसके मधुर स्वर हैं। इन गीतों में विरह-वेदना का चित्रण है। ऋग्वेद में पर्जन्य से स्तुति की गई है कि तुम्हारे कारण ही पृथ्वी पर हरियाली है, सजीवता है।[1] मैथिली के एक मलार गीत में भी ऐसी भावनाओं का निरूपण हुआ है—

> "हाली-हुलु बरसू इनर देवता,
> पानी बिनु पड़इछइ अकाले, हो राम!
> चओर सूखल, चाँचर सूखल,
> सूखि गेल भाइ के जिराते, हो राम।[2]

मलार के अनेकों गीत प्रचलित हैं। अषाढ़ के आगमन पर ये गीत गाये जाते हैं। इसकी पंक्ति इस प्रकार प्रारम्भ होती है—'सखिरे' और अन्त में 'हे ऊधो' 'और' 'रे दैया' पर रुकती है। इसके कवि हैं—सुकविदास, मँगनीराम, दुखरन, सुजनदास।

---

१ ऋग्वेद, पर्जन्य सूक्त। मंडल ५।८३।१०

२ रामइकबाल सिंह 'राकेश' : मैथिली लोकगीत, पृष्ठ ३८

साँझ और प्रभाती

संध्या के समय साँझ के गीत गाये जाते हैं और प्रात के समय प्रभाती। विशेषतया बूढ़े इन गीतों में अपने जीवन की संध्या के भावों का अनुभव करते हैं। इन गीतों में भी वियोग सम्बन्धी घटनाएँ रहती हैं। सुहागिनियाँ संध्या के समय दीपक जला कर हर्ष मनाती हैं और उसकी पूजा करती हैं। संध्या को लक्ष्मी के घर आने की कामना की जाती है। संध्या के गीतों की टेक है—"हे"! मिथिला के किसान अपने चौपाल में बैठकर मीठे मीठे स्वरों में साँझ के गीतों को गा गा कर दिन भर की थकान को हलका करते हैं—"साँझ ले साय गेल, फूल फुलाय गेल, भँवरा लेल बसेरा, मलिनिया लोढ़ि लिअ।"

बारहमासा

बारहमासा के गीतों में वर्ष भर की ऋतुओं का वर्णन रहता है और उनके साथ जीवन का सामंजस्य स्थापित कर मधुर भावनाओं को उद्भूत करना इसका लक्ष्य है। चौमासा, छैमासा भी इसी इसी के अंग हैं। इसकी टेक हैं—'रे', 'यो', 'हे' आदि। सुकविदास, कुमर, बबन, इसके रचयिता हैं। कहीं कहीं सूरदास का भी नाम आ गया है।

(उ) **नाच के गीत**

झूमर

नाच के गीतों की शब्द-शक्ति, उनकी योजना ऐसी होती हैं कि सुनने वालों के अंग फड़क उठते हैं। झूमर की भी यही विशेषता है। इसके गीतों को हर महीने गाने की प्रथा है। झूमर से तात्पर्य यही है कि मस्ती में झुमाना, नाचना गाना। झुमर हिंडोले पर बैठ कर गाया जाता है। झूमर में थिरकने, हृदय में कंपन भरने की शक्ति है। यही कारण है कि झूमर गा गा कर मिथिला के नटुआ जीवन-निर्वाह करते हैं। झूमर को नाच की श्रेणी में रखने का अभिप्राय यही है कि वस्तुतः यह ताल, लय, गति पर निर्मित है। झूमर के दो प्रकार है—संदेशात्मक और भावात्मक। सन्देशात्मक झूमर में भौंरे, काक, कोयल और पथिक के द्वारा विरह-वेदना के संदेश भेजे जाते हैं। भावात्मक झूमर में रसानुति की तीव्रता अधिक रहती है। झूमर की टेक 'ना', 'गे सजनी', 'रे' 'हे' 'लाल' आदि हैं।

जट्ट-जटिन

जट पात्र है और जटिन पात्र भी। आश्विन और कार्तिक के महीने में रात में उसका नाच शुरू होता है। इस नाच में गाँव की केवल लड़कियाँ और युवतियाँ भाग लेती हैं। पुरुष पात्र का अभिनय करने के लिए टोली में एक छोटा लड़का भी शामिल कर लिया जाता है। वह जट का अभिनय करता है और लड़कियाँ जटिन बनती हैं। जट को कुमुदिनी फूल की वे माला पहिनाती हैं और श्वेत मुकुट उसके माथे पर रख कर उसे सुसज्जित कर देती हैं और जटिन भी फूलों के आभूषण पहनकर बन-ठन जाती हैं। दोनों पाँच-पाँच हाथ की दूरी पर आमने-सामने खड़े हो जाते हैं और दोनों ओर से एक-एक दर्जन युवतियाँ पंक्तिबद्ध होकर परस्पर प्रश्नोत्तर के रूप में गीत गाती हुई नाच करती हैं। कहीं-कहीं लड़के के अभाव में लड़की ही जट का अभिनय करती है।

'जट-जटिन' दोनों अपने नाच में वैवाहिक जीवन की समस्यएँ सुख-दुख की भावनाएँ व्यक्त करते हैं और जटिन पुरुषों के जोर-जुलुम की चर्चा करती हैं। जट-जटिन के गीतों की भाषा विनोदपूर्ण, चुलबुली और व्यंग्य से भरी रहती है। जट-जटिन के प्रेम सूत्र में बंधने के पूर्व जटिन के व्यक्तित्व को कुचल देता है और जटिन जट के हाथ की कठपुतली बन जाती है और उसके जीवन का स्वच्छन्द प्रवाह मन्द पड़ जाता है। नारी-जीवन की दशा का चित्रण इसमें भली भाँति दीख पड़ता है। इसकी टेक है—'रे', 'रे जटा' 'हे जटिन' 'न', 'गे' आदि।

श्यामा-चकेबा

श्याम-चकेबा बालक-बालिकाओं का खेल है। यह छठ त्योहार के बाद शुरू होता है। यह एक ग्रामीण अभिनय है। श्यामा पात्री है और चकेबा पात्र। श्यामा बहिन है और चकेबा भाई। इस नाच के छह पात्र और हैं—चुंगला, सतभइया, खंडरिच, वन-तीतर, झाँझी कुत्ता और वृन्दावन।

चुंगला—इसका तात्पर्य है चुगलखोर। वह भाई बहिन के प्रेम भाव की चुगली करता है। इसी से बहिन उसकी खिल्लियाँ उड़ाती है। मूर्ख की सी चुंगला की मिट्टी की मूर्ति बनाई जाती है और उसकी कमर में छेद कर धागा लगा दिया जाता है। उस धागे को लड़कियाँ प्रतिदिन थोड़ा-थोड़ा जलाती हैं और मजाक करती हैं—

'चुगला करै चुगली बिलइया करै म्याउँ !
ध   ला   चुंगला   के   फाँसी   दीउ !
जहाँ हमर बाबा बइसै तहाँ चुंगला चुगली करै,
जहाँ हमर भइया बइसै तहाँ चुंगला चोरी करै,
ध   ला   चुंगला   के   फाँसी   दीउ ।[1]

सतभइया—सतभइया का अर्थ है सात भाई। इसका आशय है सभी भाई-बहिनों के रूप गुणों का वर्णन किया जाय। इसीसे से सात भाइयों की मिट्टी से मूर्तियाँ भी बनायी जाती हैं।

खंड़िच—यह एक खंजन पक्षी है जो शरद ऋतु में आता है। शरद ऋतु के आगमन का दूत जान कर इसको इस नाच में स्थान दिया गया है।

वनतीतर—श्यामा-चकेबा के गीत नदी किनारे, खेतों और जंगलों में गाये जाते हैं और तीतर भी झाड़ी में रहता है। इसीसे इसे भी इसमें ले लिया गया है।

झाँझी कुत्ता—वन और गाँव में कुत्ते का रहना आवश्यक है। परिवार में तरह-तरह के जानवर, कुत्ते, बिल्ली, गाय, भैंस जब रहते हैं तभी उसकी शोभा बढ़ती है और तभी वह एक परिवार समझा जाता है।

वृन्दावन—इसका लक्ष्य वन विशेष से है। लेकिन इसकी आकृति मनुष्य की-सी रहती हैं। सिर में पतली-पतली लम्बी सींकें लगा दी जाती हैं। जब लड़कियाँ वनों, खेतों में जाती हैं तो इन सींकों को जलाती जाती हैं और गीत गाती हैं—

वृन्दावन में आगि लग लइ कोइ ने बुझावय हे !
हमारा से कोन भइया तिनहिं बुझावय हे !

चंगेली में दीपक रख कर लड़कियाँ गाँव में घूमती हैं। उन्हें सिर पर रख कर टोले भर में नाचती गाती हैं। परिक्रमा के पश्चात् तुलसी की या आम, इमली, नीम की छाया में बैठ कर वे श्यामा-चकेबा के पात्रों को चंगेली से निकालकर जमीन पर रखती हैं और उन्हें हरी दूब की फुनगियाँ खाने को देती हैं और वे सब के सब अपने-अपने घर लौट आती है। श्यामा-चकेबा का नाच कार्तिक महीने के शुक्ल पक्ष की सप्तमी से कार्तिक की पूर्णमा तक

---

१ **रामइकबाल सिंह 'राकेश' : मैथिली लोकगीत, पृष्ठ ३९६**

चलता है। पूर्णमासी के दिन केले के थम्भ का बेड़ा बनाकर श्यामा-चकेबा को किसी तालाब में लड़कियाँ विसर्जित कर देती हैं। श्यामा-चकेबा के गीत में करुण रस के मार्मिक भाव भरे हुए हैं।

श्यामा-चकेबा के सम्बन्ध में श्रीभेखनाथ झा का कथन है कि स्कन्द पुराण में इसका उल्लेख आया है।[1] उसमें यह बताया गया है कि श्यामा के पिता कृष्ण थे। उनसे किसी दुष्ट ने बताया कि श्यामा किसी मुनि के साथ प्रेम करती है। इस पर उन्होंने श्राप दिया कि वह श्यामा पक्षी हो जाय और श्यामा के भाई शाम्ब ने उसे कार्तिक पूर्णिमा को जाल से छुड़ा लिया। श्यामा का पति चारुवक्त्र: (चकेबा) था। इससे यह स्पष्ट होता है कि श्यामा और चकेबा का पति-पत्नी का सम्बन्ध था, भाई बहिन का नहीं। श्रीरामइकबाल सिंह 'राकेश' ने श्यामा और चकेबा को भाई बहिन के रूप में उल्लेख किया है और चुगलखोर का नाम भी लिया है। इससे इस बात का पुष्टीकरण होता है कि श्यामा और चकेबा दोनों प्रेमी प्रेमिका ही हैं। इससे दोनों के सम्बन्ध में पवित्रता का भान होता है और दोष भी दूर हो जाता है।

रास

रात का सम्बन्ध कृष्ण की लीला से है। गोपियों के साथ रास रचा जाता था। रास के गीतकार ब्रजभाषा से प्रभावित हैं। रास के गीत सामूहिक गोत हैं और साहबराम इसके प्रमुख लोकगीतकार हैं।

नटुआ और बिपटा के नाच

मिथिला में किसी त्योहार और विशेष समारोह के अवसर पर नटुआ नचाने की प्रथा है। विशेषकर दशहरे, छठ, सत्यनारायण की पूजा, विवाह और पुत्र-जन्म के शुभ अवसर पर नटुआ नाचता है और वह बटगमनी, झूमर, तिरहुति, समदाउन के गीत नाच-नाच कर गाता है। उसे पुरस्कार दिया जाता है। उसके नाच बड़े ही मोहक होते हैं। वह पैरों की थाप ठुमुक चाल और हाव-भाव के द्वारा लोगों को अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। वह लड़की का वेश धारण करता है और उसी की तरह आँखें मटकाता है। पहले से ही वह लड़की की तरह लम्बे लम्बे बाल बढ़ाये रहता है। वह घघरा पहनता है और पैरों में घुंघरू बाँध लेता है। एक व्यक्ति तबला बजाता

---

१ भेखनाथ झा : व्यवहार-विज्ञान, चन्द्रनगर ड्योढ़ी, राँटी, पो० मधुबनी, दरभंगा।

है। अगर तबला न हो तो डफ का भी प्रयोग किया जाता है। दूसरा व्यक्ति सारंगी बजाता है या हारमोनियम। बिपटा मजोरा बजाता रहता है। वह विदूषक का काम करता है और बीच-बीच में हँसी मजाक के चुटकुले छोड़ता है। साथ ही साथ कई प्रकार के नाच भीदिखलाता है। मिथिला में कत्थक नृत्य का अधिक प्रचलन है। यह मलावार की कथाकलि से कुछ कुछ मिलता-जुलता है।

उपर्युक्त नाच के अतिरिक्त और भी कई नाच हैं। कहीं कहीं त्योहार के अवसर पर भगत देवी के सामने तलवार की धार पर पैर रख कर नाचता है और लोगों को चकाचौंध कर देता है। होली में भी नाचने का दृश्य उपस्थित होता है और जूरशीतल में शिव-पार्वती के नृत्य का समारंभ होता है। मिथिला के जनजीवन में नृत्य और संगीत का महत्वपूर्ण स्थान है।

(ऊ) सामाजिक आर्थिक आधार पर

सामाजिक आधार पर केवल नचारी को छोड़कर जितने गीत हैं, वे प्रायः आधुनिक हैं और वे परिस्थितियों के अनुसार रचे गये हैं। अतः उनके सम्बन्ध में कोई परिचय की आवश्यकता नहीं है। 'नचारी' में वर्ग विषमता और वेमेल विवाह का आक्रोश है। चाहे वह विद्यापति काल की नचारी हो या आधुनिक काल की। सबमें समाज की स्थितियों की झलक मिलती है। यद्यपि नचारी में शिव और पार्वती के विवाह का वर्णन है और व्यंग्यवाण है, तथापि इस आधार पर समाज की ओर विशेष संकेत है और उसमें वास्तविक संदेश कहे गये हैं। इसीलिए नचारी इस श्रेणी में रखी गयी है। नचारी से मिलता-जुलता शब्द तमिल में 'नाचियार' शब्द है जो देवदासी प्रथा से आया है। शिव अनार्यों के देवता हैं, जबकि बिष्णु आर्यों के। द्रविड़ उत्तर भारत में पहले से ही जम गये थे।

(ए) अन्य विविध गीत

(सामान्य गीत)

शिशु-गीत

शिशु-गीत में विशेषतया लोरियां का महत्वपूर्ण स्थान है। बच्चों को सुलाने और झूले पर झुलाने के अनेकों गीत हैं। मां की गोदी ही कला की खान है। शिशु की लोरियों में माँ की भावोच्छ्वास है और वात्सल्य प्रेम भरे हैं। उनके खेल सम्बन्धी अनेकों गीत गाये जाते हैं। कुछ तो अर्थ से पूर्ण हैं कुछ में कल्पना की प्रधानता है और कुछ में मनोरंजन की कला है।

बिरहा

यह अहीरों का गान है। इसमें वीर रस, शृंगार रस भरे रहते हैं। नीति के भाव भी किसी किसी बिरहे में दीख पड़ते हैं। इसमें सादा रहन-सहन और कर्मठ जीवन का संकेत मिलता है।

निर्गुण

इसके गीत रहस्यात्मक हैं और बहुत ही गंभीर। इनमें कबीरदास का नाम जोड़ दिया गया है। मृत्यु के गीत में भी निर्गुण गाया जाता है। इन गीतों में वैराग्य की भावना दीख पड़ती है और असार संसार का चित्रण इनमें विशेष रूप से होता है। इसकी टेक है—"ना रे", "सुगना रे" !

कीर्त्तन

कीर्त्तन के दो भाग हैं—व्यक्तिगत और सामूहिक ! व्यक्तिगत कीर्त्तन में एक ही व्यक्ति कथा-वाचन करता है और बीच बीच में गाता और भगवत् स्मरण में आनन्द विभोर होता-सा दिखाई पड़ता है। वह भावावेश में नाच उठता है और अपने हाव-भाव से लोगों को प्रभावित करता है।

सामूहिक कीर्त्तन में एक व्यक्ति गीत गाता है और टोली उसे दोहराती है। इस तरह का कीर्त्तन गाँव की ठाकुरबारी, मन्दिर और कुछ त्योहारों में गाया जाता है। कीर्त्तन पर वैष्णव और शैव धर्म का विशेष प्रभाव है और आजकल इसका प्रचार जोरों से बढ़ रहा है।

उदासी

जब दुलहा अपनी ससुराल से जन्म-भूमि को प्रस्थान करता है तो प्रायः उदासी गीत गाने की परम्परा है। उदासी गाते समय सारा रंग फीका पड़ जाता है। राम और कृष्ण के आलम्बन को लेकर उदासी के गीत रचे गये हैं जो हृदय को व्यथित करनेवाले हैं। इन गीतों में करुण रस की धारा प्रवाहित है।

ग्वालरि

ग्वालरि के गीतों में कृष्ण की बाल-लीला की भावनाओं को अनूठी अभिव्यंजना की गयी हैं। इसकी टेक है—'यो', 'री'। कहीं कहीं इन गीतों में यशोदा को उलहना दी गयी है और कहीं कहीं कृष्ण के प्रति प्रेम-प्रदर्शन के भाव व्यक्त किये गये हैं। ग्वालरि की रचना करनेवालों में सुकविदास का नाम प्रमुख है।

नवान्ह

अगहन के महीने में धान की फसल काटी जाती है और लोग सर्वप्रथम स्वयं न खाकर ब्राह्मण को कुछ धान दान में देते हैं। नवान्ह के सुअवसर पर गाय के गोबर से घर का आँगन लीपा जाता है। गाय के गोबर पर कुम्हड़े का फूल रखा जाता है और उस पर सिंदूर तथा पिठार भी रखे जाते हैं। इस पूजा के बाद चिउरा और गुड़ खाकर लोग नवान्ह शुरू करते हैं। गाय के गोबर को इसलिए महत्व दिया जाता है कि कृषि गाय पर अवलम्बित हैं। सिंदूर सुख सुहाग का प्रतोक है। पिठार सात्विक भाव जगाता है। चिउड़ा और गुड़ मन को मीठे भावों में निमग्न रखता है। नवान्ह सम्पन्नता का द्योतक है।

तुलसी उद्यापन

मिथिला में स्त्रियां तुलसीचौड़े के आगे धूप, दीप, नैवेद्य, चढ़ाती हैं। गुड़ को भींगे हुए अरवा चावल के साथ मिला कर और उसमें तुलसीदल रख कर बच्चों में वे प्रसाद बाँटती हैं। इसको एकादशी का निस्तार भी कहते हैं। यह कार्तिक महीने में होता है और विष्णु की पूजा की चर्चा इसके गीतों में भरी रहती है।

(विशेष गीत)

छठे अध्याय में कथा गीतों की ऐतिहासिकता पर संक्षिप्त रूप में चर्चा की गयी है। अतः उनके सम्बन्ध में कुछ लिखने की यहाँ आवश्यकता नहीं है। मिथिला में लोक कथागीतों की परम्परा प्राचीनतम है। उसका विवरण निम्न प्रकार है[1]—

कथा-गीतों की सूची

जाति	कथा गीतों का नाम	नायक-नायिका	क्षेत्र	समय (आनुमानिक)
१. मुसहर	दीना-भद्री	दीना दीनों भद्री भाई	समस्त	एक हजार वर्ष
२. दुसाध	सलहेस	सलहेस ग्राम कुसुमादोना देवता	मिथिला नेपाल से मोकामा घाट तक	पूर्व एक हजार वर्ष पूर्व

३. ग्वाला	लोरिक	लोरिक माँजरि (माँझर) राजकुमारी चनैन	बहेड़ा (दरभंगा) हरदी बाजार	एक हजार वर्ष पूर्व
४. ग्वाला	गढ़हूबाबा	...	पूर्वी भागलपुर	एक हजार वर्ष पूर्व
५. तेली	बंजारा	नवका, तिलकेसरी	पूर्णियाँ और भागलपुर	एक हजार वर्ष पूर्व
६. मलाह	दयालसिंह (कमलाकोइला)	दयालसिंह अमरावती	जन्म भरौरा बखरी बाजार रोसरा सलौना बहेड़ा नेपाल तराई	अशोक के कुछ काल बाद
७. क्षत्रिय	बालाराम क्षत्री (सामन्ती संघर्ष)	बालाराम नायिका नहीं है केवल लड़ाई करते फिरते थे।	पुनियाँ	सामन्तीकाल
८. वैश्य	हंसराज,बच्छराज	हंसराज, सोहासिन	उत्तरी मिथिला,	सामन्तीकाल
९. राजपूत	रैयारणपाल	रणपाल	झंझारपुर, अदलपुर बलराजपुर	सामन्तीकाल
१०. बढ़ई	गोपी ठाकुर	गोपी ठाकुर नायिका नहीं है (छोटा कथागीत है)	नेपाल तराई	सामन्ती काल

उपर्युक्त लोककथा गीतों की सूची में जितने नाम अंकित किये गये हैं उनमें से केवल एक से लेकर तीन कथा गीतों का विवरण प्रस्तुत पुस्तक

के छठे अध्याय में दिया गया है। इस सूची में तथा छठे अध्याय में जो शेष कथा गीतों की चर्चा की गयी है वे केवल उल्लेख मात्र हैं क्योंकि ये विषयान्तर्गत नहीं हैं।

मैथिली लोकगीतों का विकास-क्रम

मैथिली लोकगीतों के आजकल विकास-क्रम पर भी विचार करना आवश्यक है। जिससे उनके वर्गीकरण के उद्देश्य की पूर्ति भली भाँति हो सकती है। अतः उनके विकास-क्रम का विवरण इस प्रकार है।

विकास-क्रम में चारागाह-युग और कृषि-युग प्रमुख है। चरागाह युग के देवी-देवताओं में नदियों का पहला स्थान है, क्योंकि प्राचीन काल में हरे भरे चरागाह नदियों के किनारे होते थे। मैथिली संस्कृति में इन नदियों में कमला, घेमुरा, तिलयुगा, गंडक, कोशी नदियों का बिशेष महत्व है। और इन नदियों पर लोकगीत रचे गये हैं। कृषि-युग की प्रधानता मिथिला में सर्वोपरि है।

कृषि-युग

कृषि-युग को तीन भागों में बाँटा जा सकता है— (अ) देवयुग (आ) सामन्ती-युग, (इ) वर्गवादी-युग।

(अ) देव-युग

१. **अर्चना-गीत,** शाक्त, शैव, वैष्णव, पंचदेवता, व्रत स्थान आदि।

२. **आचार-गीत :** जन्म के गीत, सोहर, मुंडन, उपनयन, विवाह, समदाउन, बटगमनी, तिरहुति आदि।

३. **ऋतु-गीत :** फाग, चैतावर, वसन्त, मलार, पावस, संध्या, प्रभाती, बारहमासा आदि।

४. **उत्सव-गीत :** छठ, दीपावली, नवान्ह, शुकराती, बरसाइत, मधुसाँवनी, देवउठावन, भ्रातृद्वितिया, नवरात्रि, झरनीगीत, श्यामाचकेबा (खेल नाच) (बरसाइत और मधुसाँवनी को ऋतु गीतों में पहले रखा गया था और यह उचित भी था। श्यामा चकेबा को नाच के गीत में रखा जा चुका है किन्तु यहाँ पर क्रमिक विकास के दृष्टिकोण से ऐसा किया गया है।)

(आ) सामन्ती-युग

राय रणपाल और बालाराम क्षत्री दोनों कथा-गीत हैं।

(इ) वर्गवादी-युग

इसमें विभिन्न जातियों के कथा-गीत विशेष उल्लेखनीय हैं। जैसे, सलहेस, दीना-भद्री आदि।

उपर्युक्त मैथिली लोकगीतों का कई दृष्टियों से वर्गीकरण उपस्थित किया गया है। अब मिथिला की लोककला, लोकगीत गानेवाली कुछ पेशेवर जातियाँ और मैथिली लोकगीत तथा ताल एवं वाद्य के सम्बन्ध में भी थोड़ा उल्लेख किया जा रहा है—

मैथिली लोक-कला

बुनिया—सींक की चँगेली; मौनी, पौती रंगबिरंग की बनाई जाती हैं। विवाह के बाद वेटी जब ससुराल जाती है तब माता उसे उपहार में इन्हें देती हैं। घरेलू काम से निवृत होने पर स्त्रियाँ इसी प्रकार की बुनने की कला का निर्माण करती हैं।

कसीदा—रूमाल, चादर, तकिये-खोल पर स्त्रियाँ कसीदा काढ़ती हैं।

जनेऊ—चरखे और तकली से सूत कातकर स्त्रियाँ जनेऊ बनाती हैं और ऐसे ही जनेऊ को पतित्र माना जाता है। चरखा कातने में और महीन सूत निकालने में मिथिला की स्त्रियाँ निपुण हैं।

चित्रकला—अनेकों शुभ अवसर पर चौक पुरा जाता है। नाना प्रकार के जीव-जन्तु, पेड़-पौधों के चित्र उसमें चित्रित किये जाते हैं। मिथिला के कुम्भ-कार (छोलगरिया) भित्ति-चित्र, मिट्टी की मूर्ति बनाने की कला में जन्मजात गुण अर्जित कर चुके हैं। दशहरे में दुर्गा-प्रतिमा ये बहुत ही भव्य और सजीव बनाते हैं। विवाह के अवसर पर स्त्रियाँ पुरहर और पातिल बड़े ही कलात्मक ढंग से बनाती हैं। ये भित्ति-चित्र भी नाना प्रकार के त्योहारों के अवसर पर बनाती हैं, विशेषतया विवाह-संस्कार के अवसर पर। इस प्रकार लोककला में मिथिला प्रगति कर रही है।

लोकगीत गानेवाली कुछ पेशेवर जातियाँ

पमरिया—मिथिला में पमरिया लोकगीत गाने वाली एक पेशेवर जाति है। पुत्र-जन्म के अवसर पर सोहर गा गाकर यह जाति पुरस्कार प्राप्त करती है। कभी-कभी यह खुद गीत भी रच लेती है।

बखो-बखिन—यह पमरिया की ही एक जाति है और लोकगीतों को गा गाकर जीवन निर्वाह करती है। यह भी पुत्र-जन्म के अवसर पर नाच नाचकर और गा गाकर बधैया माँगती है।

खोदपाड़नी—यह औरतों के शरीर पर गोदना गोदती है और गोदते समय गीत गाती है। इनके गीतों में दाम्पत्य जीवन के राग-रंग के रस भरे रहते हैं। यह जाति भी गीतों से रोटी पैदा करती है।

पचनिया—चेचक निकलने पर पचनिया शीतला माता के गीतों को गा गाकर अपना जीवन-निर्वाह करता है। चेचक का टीका भी यह लगाता है और झाल बजा-बजाकर गीत गाता है। यह भी एक पेशेवर जाति है।

दसौनी—विवाह, श्राद्ध में दसौनी नाना प्रकार के कवित्तों और गीतों को गा गाकर सुनाता है और लोगों को प्रभावित करता है। कुछ तो कवित्तों और गीतों को रट लेता है और खुद बनाता भी है।

मैथिली लोकगीत गाने वाली इन जातियों के अतिरिक्त मिथिला के सभी वर्ग के लोग लोकगीत गाते हैं और उनमें से कुछ लोकगीतकार लोकगीतों की रचना भी करते रहते हैं। ऐसा लगता है कि मिथिला का जनजीवन ही लोकगीतों पर आधारित है।

मैथिली लोकगीत तथा ताल एवं वाद्य

ताल-वाद्य

मादल—यह पखावज जैसी है और मिट्टी की बनी होती है। इसकी गूँज मीठी होती है। पखावज की तरह इसमें भी आँटा लगाया जाता है। सभी ताल इस पर सरलता से बनायी जा सकती है।

ढोलक—यह मृदंग की भाँति है। ढोलक का प्रचलन मिथिला में अधिक है। इसमें अँगुलियों की चटकारी दी जाती है। इसे आम या वड़ की लकड़ी से बनाते हैं और बकरे का चमड़ा इस पर मढ़ते हैं।

ढोल—नाच के समय इसे बजाते हैं और चमार इसे रखते हैं। इसकी ध्वनि दूर तक जाती है। उत्सव, त्योहार और विवाह के अवसर पर यह बजाया जाता है।

नगाड़ा—महादेव-मंदिर में कहीं-कहीं इसे रखते हैं और समयानुसार बजाते हैं।

नौबत—शहनाई बजाते समय छोटे-छोटे दो नगाड़े रखते हैं जिनकी आवाज कड़ी होती है। ताल को नौबत ठींक रखती है और उसे लकड़ियों से बजाते हैं।

ढफ—यह लकड़ी के गोलाकार पहिये की भाँति है। इस पर भी बकरे के

चमड़े को मढ़ते हैं और खपचियों से तथा अँगुलियों की चटकारी से बजाते हैं। डफ का प्रयोग होली के गीतों और वीर-रस के गीतों को गाने में होता है ।

डमरू—महादेव-मठ में पुजारी डमरू बजाते हैं और नचारी गाते हैं और महेशवाणी भी। मदारी भी इसे बजा-बजाकर बन्दर को नचाता है और खासकर भीख माँगने वाले तथा निर्गुण पंथी इसे बजाते हैं। जादूगर भी इसका प्रयोग करते हैं ।

खजरी—ढफ का नन्हा रूप है । यह बहुत छोटी-सी होती है। इसके ऊपर सनगोह की खाल मढ़ी रहती है। इसे कबीर-पंथी, निर्गुण-पंथी, फकीर, भिखमंगे आदि बजाते है। इसके किनारे के बीच में छोटी-छोटी झाल भी लगी रहती है। अँगुली से बजाते समय झाल और खंजरी की स्वर-लहरी बहुत ही मधुर सुनायी पड़ती है ।

ढोलकी—यह खँजरी के छोटे आकार की होती है और इस पर मेढ़क की खाल मढ़ी रहती है। मेले में बहुत ही कम मूल्य में यह मिलती है और बच्चे खरीदकर इसे बजाते हैं, गीत गाते हैं और खेलते हैं। यह बच्चों का ताल-वाद्य है।

तार-वाद्य

सारंगी—यह तार-वाद्यों में श्रेष्ठतम वाद्य मानी जाती है। नाच के समय इसे बजाते हैं ।

इकतारा—यह तूँबे पर एक बाँस के टुकड़े से (दो फुट लम्बा) लगा रहता है। ऊपर और नीचे एक तार कसा रहता है। भीख माँगने वाले और निर्गुण-पंथी इसे अँगुलियों से बजाते हैं और गीत गाते हैं।

सितार—तार-वाद्य में वीणा और सितार का स्थान केवल मिथिला में ही नहीं समस्त देश में महत्त्वपूर्ण माना जाता है। भारतीय संगीत में इनका उच्च स्तर पर प्रयोग होता है।

फूँक के वाद्य

बाँसुरी—बाँस से बाँसुरी का रूप सम्बन्धित है। ऐसी लोकोक्ति भी प्रचलित है—'न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी'। बाँसुरी एक खास प्रकार के बाँस से बनायी जाती है और पीतल की बनी नली से भी। इसकी गूंज बहुत मधुर होती है। यह भी भारतीय संगीत में श्रेष्ठतम स्थान रखती है। कृष्ण ने प्रेम

की बंशी बजा बजाकर जन-मानस को आनन्द विह्वल किया था। बाँसुरी की तान सुनकर हिरन और साँप भी मोहित हो जाते हैं।

बीन—यह लौकी की तूँबी से बाँस की दो नलियों को लगाकर बनायी जाती है और दोनों नलियों में तीन-तीन स्वर-छिद्र होते है। दोनों नलियों को सँपेरा अपने दोनों हाथों की अँगुलियों से बजाता है और बीन के ऊपरी भाग को मुँह से स्वर-साध कर फूँकता रहता है। बीन की मधुर ध्वनि भी बहुत मादक होती है और साँप को वशीभूत कर लेती है।

शहनाई—यह शीशम की लकड़ी से बड़े ही कलात्मक ढंग से बनायी जाती है। इसमें बाँसुरी की तरह ही छिद्र होते हैं और इसका आकार-प्रकार भी बाँसुरी जैसा ही होता है, किन्तु इसको नीचे का भाग गोलाकार रूप में घिरा रहता है जो बहुत ही कलात्मक दीख पड़ता है और ऊपर का भाग सँकरा होता है। मुँह से फूँकने के स्थान पर स्वर-यंत्री लगी रहती है। शहनाईब जाने वाला इसे फूँक फूँक कर सोहर, समदाउन, तिरहुति, बटगमनी, झूमर आदि मैथिली लोकगीतों को पर्व, त्योहार और विवाह-संस्कार के अवसर पर गाता है।

सींगी—यह सींग से बनी होती है। इसे भी फूँक फूँक कर बजाते हैं। इसका स्वर मधुर नहीं होता।

शंख—यह देव-पूजा के पुनीत अवसर पर फूँका जाता है। इसकी आवाज दूर तक जाती है। यह समुद्र की उपज है। शंख एक प्रकार का कीड़ा होता है जिसे मछुए ले आते हैं और उसके जीव-तत्व निकाल देते हैं। उसके पश्चात् शंख फूँकने के प्रयोग में लाया जाता है।

प्रत्येक वाद्य का अपना अलग महत्त्व होता है। इससे लोकगीत के स्वर संतुलित होते हैं और वे प्रभावशाली बनते हैं।

मैथिली लोकगीतों में प्रयुक्त होने वाले ताल-वाद्यों के सम्बन्ध में संक्षिप्त रूप से उल्लेख किया गया है। इनके दो भेद हैं—गायन के साथ नाना रूप धारण करने वाले और दो मात्राओं के बीच काल-क्रम बतानेवाले। पहले प्रकार के ताल-वाद्य में मादल, ढोलक, ढोल आदि का स्थान है और दूसरे प्रकार के ताल-वाद्य में मजीरा, झाल, थाली आदि का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इस प्रकार मैथिली लोकगीतों की स्वर-साधना में ताल-वाद्यों की उपयोगिता निरन्तर बढ़ती चली जा रही है।

इस अध्याय में मैथिली लोकगीतों के वर्गीकरण के साथ-साथ उनके उपादानों पर भी यथा सम्भव प्रकाश डाला गया है और यह दिखाने का

प्रयत्न किया गया है कि इन लोकगीतों में मैथिली संस्कृति किस प्रकार प्रतिबिंबित और मुखरित हो उठी है।

मिथिला की संस्कृति का स्वाभाविक एवं मर्मस्पर्शी चित्रण उसके लोक-गीतों में बड़े ही सुन्दरतम रूप में किये गये हैं। यदि हम उसके वास्तविक स्वरूप का अवलोकन करना चाहते हैं तो हमें उसके विशेष कर लोकगीतों का अध्ययन-अनुशीलन करना होगा। मिथिला के लोकगीतकारों ने अपने तत्कालीन समाज में जो कुछ भी साम्य अथवा वैषम्य की अनुभूति की है उसकी स्वाभाविकरूप में अभिव्यक्ति की है। उन्होंने नीर-क्षीर-विवेकी की भाँति सुख-दुःख, राग-विराग, सुन्दर-असुन्दर आदि जन-जीवन की समस्त प्रवृत्तियों को निरूपित किया है। उन्होंने यदि माँ और बेटी के प्रेम का वर्णन किया है तो सास-बहू और भाभी-ननद के झगड़े को भी नहीं छोड़ा है। धार्मिक संस्कारों का वर्णन भी उन्होंने खूब किया है। कहीं व्रत के गीतों में छठ और शीतला की उपासना है तो कहीं गंगा और कोशी से प्रार्थना की गयी है। राम-कृष्ण, शिव-पार्वती की अर्चना भी कम नहीं की गयी है।

मैथिली लोकगीतों में जहाँ धनधान्य तथा वैभव का वर्णन मिलता है, वहाँ साधारण किसान की दयनीय दशा का मार्मिक चित्रण भी कम द्रावक और आकर्षक नहीं। मिथिला में संयुक्त परिवार की परम्परा है। उसमें पिता-पुत्री, भाई-बहन, सास-बधू, पति-पत्नी, ननद-भाभी सभी खुशी से रहते हैं। दाम्पत्य जीवन के आदर्श प्रेम का निरूपण मैथिली लोकगीतों में भलीभाँति किया गया है और आदर्श सती स्त्रियों का भी। यद्यपि माता का वात्सल्य पुत्र के प्रति असीम होता है, किन्तु पुत्री भी उसे कम प्यारी नहीं होती। मैथिली लोकगीतों में माता का प्रेम पुत्र की अपेक्षा पुत्री में अधिक दिख पड़ता है। पुत्री के जन्म होने और उसके ब्याह में कितना ही कष्ट और व्यय क्यों न उठाना पड़े, माँ का प्रेम से ओत-प्रोत हृदय इसकी किंचित भी चिन्ता नहीं करता और वह अपनी पुत्री से बड़ा प्रेम करती है। माँ के प्रेम की अजस्त्र धारा बेटी की बिदाई के मैथिली लोकगीतों में करुण क्रंदन करती हुई फूट पड़ी है। सौत के कारण परिवार में कलह किस प्रकार बढ़ जाता है, इस सौतिया डाह का चित्रण भी लोकगीतों में किया गया है। पारिबारिक और सामजिक जीवन को अनुशासित कर सुखमय बनाने के लिए नीति-नियम वेद पुराण के बहुत से उपदेश दिये गये हैं। तात्पर्य यह कि मिथिला के ऐतिहासिक, भौगोलिक, सामाजिक, धार्मिक, नैतिक आदि सभी पहलुओं पर उसके लोकगीतों में प्रकाश डाला गया है। उसका कोइ भी अंग अछूता नहीं रह गया है।

चौथा अध्याय

अन्य भारतीय लोकगीतों का मैथिली लोकगीतों के साथ तुलनात्मक एवं समन्वयात्मक अध्ययन—विशेषतः मगही भोजपुरी, बंगला, असमिया, उडिया, अवधी, ब्रजभाषा, बुन्देलखण्डी, छत्तीसगढ़ी, राजस्थानी, गुजराती, मराठी, तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम आदि

४

मैथिली लोकगीतों के साथ तुलनात्मक अध्ययन

तीसरे अध्याय में मैथिली लोकगीतों का वैज्ञानिक वर्गीकरण कर यह प्रमाणित किया गया है कि मैथिली लोकगीतों में मूलतः मिथिला की संस्कृति प्रतिबिंबित है और वह भारतीय संस्कृति की प्राचीनता एवं विशिष्टता को परम्परा से आत्मसात करती हुई चली जा रही है। अब इस अध्याय में अन्य भारतीय लोकगीतों का मैथिली लोकगीतों के साथ तुलनात्मक एवं समन्वयात्मक अध्ययन प्रस्तुत करना ही अभीष्ट है।

भाव साम्य की दृष्टि से देखने पर यह ज्ञात होता है कि सृष्टि के प्रत्येक मानव की मूल भावनाएँ एक ही हैं। उसका हृदय सर्वत्र एक-सा है और समस्त मानव के हृदय में सुख-दुःख, आशा-निराशा, क्रोध, घृणा, ममता आदि की भावनाएँ आलोड़ित और विलोड़ित होती हैं। समता की ये प्रवृत्तियाँ साहित्य में परम्परा से सँचरित होती आ रही हैं और ये प्रवृतियाँ तो लोकगीतों में और भी अधिक मुखरित होती रही हैं। यही कारण है कि सभी देशों के लोकगीती में मूल भावों की समानता पायी जाती है।

विश्व कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने ठीक कहा है—'यदि सब देशों के लोक गीत संकलित किये जा सकें और उनका तुलनात्मक अध्ययन हो तो यह प्रत्यक्ष

होगा कि उनमें एक ही मन और एक ही हृदय छिपा है जो मनुष्य मात्र में समान है ।"[1]

भेद में अभेद को देखने की परम्परा ही भारतीय संस्कृति की विलक्षणता रही है और ये गुण लोकगीतों में विशिष्ट रूप से प्रस्फुटित हुए हैं। यदि हम सभी प्रान्तों के लोकगीतों की भाषा, छन्द, शैली आदि के बाह्यरूप को हटा कर उनकी आन्तरिक भावधाराओं का तुलनात्मक एवं समन्वयात्मक अध्ययन करते हैं तो हमें उनकी तलहटी में सामूहिक चेतना और प्रेरणा दृष्टिगोचर होती है जो कि प्रत्येक मानव के भावों और क्रियाकलापो में अभिव्यंजित है । इतना तो अवश्य है कि विशेष परिस्थितियों के कारण कुछ विशेष स्थानों में यत्किंचित भाव-साम्य में अन्तर आ जाता है जिसमें उनकी अपनी भौगोलिक और सामाजिक विशेषताएँ सम्मिलित रहती हैं । यह अपनापन प्रत्येक साहित्य में पाया जाता है और यही अन्य से उसे भिन्न कर देता है । जो हो, भाव-साम्य ही राष्ट्रीयता की आधार-शिला है । इसी से राष्ट्र में प्रेम, ऐक्य, भ्रातृत्व की भावनाएँ बढ़ती हैं और इसी दृष्टि से इस अध्याय में विभिन्न प्रादेशिक लोक-गीतों के साथ मैथिली लोकगीतों की सामाजिक एवं सांस्कृतिक विशिष्टताओं की ओर संकेत किया जा रहा है ।

यों तो जितने भी सार्वदेशीय लोकगीत हैं वे प्रधानतया जन्म और मरण के सम्बन्ध में ही रचे गये हैं । किन्तु उपर्युक्त विषय की सुविधा और स्पष्टता की दृष्टि से उन्हें १. जीवन, २. धर्म, ३. पेशा, और ४. ऋतुओं के आधार पर विभाजित करना युक्तिसंगत जान पड़ता है ! अतः इस प्रकार उसमें विषय भाव और रूप की समानता के अनुसार मैथिली लोकगीतों के विशेष तत्वों को सरलता से ढूँढ़ा जा सकता है और उनके साथ तुलनात्मक और समन्वयात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जा सकता है ।

मानव-जीवन में जन्म से लेकर मरण तक विभिन्न संस्कार दीख पड़ते हैं । उन संस्कारों से सम्बन्धित जो जो लोकगीत प्रचलित हैं उनका व्योरा यों है—

१. जीवन के विभिन्न संस्कार सम्बन्धी ।
२. धार्मिक संस्कार सम्बन्धी ।
३. पेशा सम्बन्धी ।
४. ऋतुओं से सम्बन्धित लोकगीत ।

---

१. भगवानदास केला : हमारी आदिम जातियाँ, पृष्ठ २६

१. जीवन के विभिन्न संस्कार सम्बन्धी भारतीय लोकगीत और मैथिली लोकगीतों के विशेष तत्व।

१. सोहर

अ. गर्भाधान के गीत

क. पुत्र-प्राप्ति की मनौतियाँ

ख. दोहद

ग. बाँझ स्त्रियो की करुण दशाएँ

आ. पुत्र-जन्म के गीत

इ. लोरियाँ

ई. उपनयन

२. लग्न-गीत

अ. विवाह के गीत

क. वर का चुनाव

ख. बेमेल विवाह

आ. बेटी की विदाई

क. करुणा-धारा

ख. बेटी को माँ का उपदेश

ग. बेटी के प्रति ममता

घ. विरह-व्यथा

ङ. आदर्श दाम्पत्य जीवन

३. मृत्यु-गीत

२. धार्मिक संस्कार सम्बन्धी भारतीय लोकगीत और मैथिली लोकगीतों में विशेष तत्व।

१. देवी-देवताओं की पूजा

२. त्योहार

३. पेशा सम्बन्धी भारतीय लोकगीत और मैथिली लोकगीतों के विशेष तत्व।

१. चाँचर

२. जाँत के गीत

४. ऋतुओं से सम्बन्धित भारतीय लोकगीत और मैथिली लोकगीतों में विशेष तत्व।

१. फाग

२. बारहमासा

उपर्युक्त विवरण के अनुसार भारतीय लोकगीतों के साथ मैथिली लोक-गीतों का सम्बन्ध उद्धरणों के द्वारा निम्न प्रकार प्रस्तुत किया जा रहा है—

१. जीवन के विभिन्न संस्कार सम्बन्धी भारतीय लोकगीत और मैथिली लोकगीतों के विशेष तत्व।

१. सोहर

अ. गर्भाधान के गीत

गर्भाधान के लक्षण और भोज्य पदार्थ की दृष्टि से सोहर के गीतों में सहसा नृ-तत्व-विज्ञान की ओर ध्यान आकृष्ट होता है। सन्तान-जन्म और विवाह दोनों ही जीवन के मंगलक्षण हैं।

युग-युगों से मानव अपने हृदय को शिशु के रूप में प्रतिबिंबित देखता आया है और उसमें मानवता पनप सकी है। उसके जीवन की साधना इसी में सफल हो सकी है। उसे अमर बनने की लालसा निरन्तर होती ही रहती है और शिशु के द्वारा इस अमरता की प्यास तृप्त होती है, क्योंकि शिशु उसके ही रक्त-मांस-पिंड से बना है। उसके हृदय का ही वह अंश है। मानव जब इस संसार से सदा के लिए चला जाता है तब शिशु रूप में ही वह जीवित मालूम पड़ता है। इसी से वेदकार ने कहा है कि आत्मा पुत्र के रूप में जन्म लेती है—"आत्मा वै पुत्रनामो सि"। इस प्रकार मानव जीवन की परम्परा शिशु के रूप में चलती चली आ रही है। विवाहोपरान्त नवबधू में सन्तान-प्राप्ति की कामना बड़ी ही तीव्र हो उठती है।

क. पुत्र-प्राप्ति की मनोतियाँ

मगही के सोहर में पुत्र-प्राप्ति की मनौती में निम्नलिखित अनूठी भावनाएँ फूट पड़ी हैं—

> रुकमिन, देवी जी हथुन दयामान, सम्पति तोरा ओहो देथुन हे !
> उहुँउ से रुकमिन चललन देवी से अरज करे हे !
> देवी जी हमरा सम्पतिया के चाह, सम्पतिया हम चाही ही हे ![1]

मैथिली में भी एक सोहर इसी पुत्र-प्राप्ति की मनौती सम्बन्धी है जो इस प्रकार है—

भउजो हथवा में लेलन्हि अछत, अओर बेल पत्तर हे !
भउजो सुति उठि सुरुज मतइह, सुरुज तोरा पुत देथु हे !
सुरुज मनाबहुँ ने पइली, सुरुज मोरा पुत देल हे !
देवर, जनमल हमरा होरिलवा बहिनि कें ओंठगन हे !

उपर्युक्त मगही के सोहर में रुक्मिणी से एक ब्राह्मण ने बताया कि ब्रह्मा ने तुम्हारे भाग्य में सम्पत्ति अर्थात् पुत्र देना नहीं लिखा है। इस पर रुक्मिणी देवी से पुत्र प्राप्ति की प्रार्थना करती है। लेकिन मैथिली के सोहर में अपनी भाभी से देवर कहता है—भाभी ! तुम सूर्य की पूजा नित्यप्रति करो तो तुम्हें पुत्र पैदा होगा। और, वह सूर्य की पूजा कर भी न सकी कि पुत्र का जन्म हो गया और जिससे उसकी ननद को खेलने का, मनोरंजन करने का अवसर मिल गया। उक्त दोनों सोहर की तुलना करने पर भाव-साम्य विदित होता है। किन्तु दोनों की अभिव्यक्ति की प्रणाली में भिन्नता है। मगही के सोहर में भाग्य पर भरोसा रखा गया है। परन्तु मैथिली के सोहर में ऐसा नहीं है। उसमें देवर के द्वारा आत्मविश्वास दिलाने की बात कही गयी है।

भाषा और विषय की दृष्टि से तुलना करने पर दोनों एक दूसरे की पड़ोसी भाषा होने के नाते समानता रखती हैं। मगही में 'देथुन' है और मैथिली में 'देथु' का प्रयोग किया गया है। मैथिली में भी कहीं कहीं 'देथुन', 'लेथुन', 'कहथुन' आदि का प्रयोग स्त्रियाँ करती हैं। इसी प्रकार मगही के सोहर में जहाँ 'तोरा' आया है, वहाँ मैथिली में भी 'तोरा' है। दोनों सोहर की ताल-लय-गति में साम्य है। अन्त में दोनों में 'हे' की टेक पर समाप्ति होती है।

ब्रज की एक नवबधू कोख की कामना से विकल हो उठती है और गंगा में डूब मरना चाहती है। उसकी यह दारुण दशा देखकर गंगाजी द्रवित हो जाती हैं और उसे पुत्र होने का आशीर्वाद देती हैं। बस, वह नवबधू तुरन्त घर लौट कर बढ़ई से कहकर काठ का बालक बनवा लेती है और चाहती है कि कोई इसी में प्राण डाल दे ! इस गीत में भोली भाली ब्रज नवबधू की कामना इतनी तीव्र क्यों दीखती है। इस प्रकार काठ के बालक में प्राणों की आशा करना आदिम मनोभावों और विश्वासों के अनुकूल प्रतीत होता है। बाह्य साम्य के प्राचीन विश्वास और टोटके की ओर इसमें संकेत है।[1] ब्रज का यह सोहर इस प्रकार है—

---

१. डा० सत्येन्द्र : ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन, पृष्ठ १२६-१२७

काठ पुतर गढ़ि देउ सो बाई लैकें उठि हौं, बाई लैकें बैठि हौं !
राजे न्हाय धोय भई ठाढ़ी, तौ सुरज मनामें राम मनामें।
राजे काठ पुतर जिउ डारौ, तौ जाई लैकें उठि हौं, जाइ लैकें सौमें !

ब्रज की नवबधू की कोख कामना से मिलती-जुलती मिथिला की नवबधू भी कोख की कामना इस प्रकार करती है—

पीयर चुनरी पहिरतौं, पिया के लोभाबितौं रे, ललना !
पिया रूसि जइयौ ने बिदेस, धनि नइ बाँचत रे !
खूटे खूटे अँगना निपबितौं, पलंगा बिछवितों रे !
ताहि चढ़ि होरिला खेलबितौं, पिया के लोभाबितों रे, ललना !

भाव-साम्य की दृष्टि से ब्रज और मैथिली के ये दोनों सोहर यद्यपि महत्व रखते हैं तथापि मैथिली सोहर में व्यावहारिकता और स्वाभाविकता दीख पड़ती है। वह यह कि मिथिला की नवबधू साज-शृंगार कर अपने प्रियतम को आकृष्ट कर परदेस जाने से रोकना चाहती है और उसी के सानिध्य के द्वारा पुत्र-प्राप्ति की आशा करती है।

जिस प्रकार ऊपर ब्रज के सोहर में नवबधू गंगा से पुत्र-प्राप्ति का बरदान प्राप्त करती है उसी प्रकार मिथिला की एक नवबधू भी पुत्र-प्राप्ति की प्रार्थना दीनानाथ से स्वीकृत करा लेती है और दीनानाथ उसे वरदान देते हैं—

सासु के हुथका गे बाँझिन गंगा बहिजाय,
ननदो के गरिया गे बाँझिन दिन दुइ चारि,
गोतिनि उलहना गे बाँझिन देहिन सधाय ![1]

अर्थात् हे बाँझिन ! आँचल पसार कर वरदान लो। सास के घूसे से गंगा बह जाएगी। तात्पर्य यह कि तुम्हारे जीवन में पुत्र-प्राप्ति की पवित्र धारा प्रवाहित हो जाएगी, तुम्हें सास से अच्छी शिक्षा मिलेगी। ननद की बात पर तुम मत ध्यान दो। यह तो दो चार दिनों की मेहमान है। विवाह के बाद वह अपनी ससुराल चली जाएगी। तुम्हारी पड़ोसिन तुम्हें गर्भवती देखकर दाँतें अँगुली दबाएगी। अन्त में इस वरदान को प्राप्त कर वह नवबधू दीनानाथ से यह निवेदन करती है कि हे दीनानाथ ! जो दिया है उसे वापिस मत लेना और न कोई परिवर्तन ही करना। परिवर्तन से यह भाव विदित होता है कि उसे पुत्र के बदले कहीं बेटी न हो जाए। इस सोहर की पक्तियाँ यों हैं—

---

१. राम इकबाल सिंह राकेश : मैथिली लोकगीत, पृष्ठ ३६३

देबे के त देलिअइ दीनानाथ, छिनि मत लिउ,
बाँझिपन छौड़ौली हे दीनानाथ ! मराँछी जनि लगाउ !

पुत्र-प्राप्ति की मनौतियाँ दक्षिण भारत में भी प्रचलित हैं। तेलुगु लोकगीत में मा सिंहाद्रि अप्पन्न से पुत्र प्राप्ति की मनोती करती है। वह आँचल पसार कर कहती है—हे देव ! मुझे सन्तान दे ! इस पुत्र-प्राप्ति के लिए जाने न क्या भेंट देनी होगी—

सन्तान मयमनि चाला पड्डादि,
बिड्डलानीयर्मनि प्रियमु पड्डादि,
कोमल लनीयमनि बेडि पड्डादि
सिंहाद्रि अप्पन किमि लंचम्मू ?[1]

(ख) दोहद

यह प्रकृति अपनी परम्परा बनाये रखने के लिए प्रजनन की अभिवृद्धि करती रहती है। यही कारण है कि सृष्टि के प्राणियों को आकर्षण होता रहता है। मानव-जीवन में प्रजनन का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। गर्भवती स्त्री गर्भाधन से नौ महीने तक भाँति भाँति की चीजें खाने की इच्छाएँ करती हैं। क्योंकि गर्भाशय में जो शिशु रहता है उसे अपने विकास के अनुसार तात्विक खाद्य-रस की आवश्यकता होती है। इसलिए गर्भवती की इच्छाएँ देश काल और वातावरण के अनुसार बदलती रहती हैं।

ब्रजभाषा के एक सोहर में गर्भवती की इच्छाएँ हर महीने किस प्रकार ब्रजमंडल की जलवायु और खाद्य-पदार्थ के अनुसार बदलती रहती है, उनका निरूपण इस प्रकार किया गया है—

पहिलो महीना जब लागिए, बाको फूलु गह्यो फलु लागिए !
ए बाइ दूजौ महीना जब लागिए,
राजे तीजौ महीना जब लागिए,
वाकौ खीर खाँड़ मन आइए ![2]

मगही के सोहर में गर्भवती कुछ और ही प्रकार की इच्छा प्रकट करती हैं। वह नोंबू की निमकी खाना चाहती है। इससे स्पष्ट है कि वह माँ बनने की तैयारी में है। किन्तु उसने सारे परिवार के बीच ऐसी इच्छा व्यक्त की है

---

१ दक्षिण भारत पत्रिका (मद्रास) अप्रैल, ५४ वर्ष २, अंक ६, पृष्ठ ३५

२ डा० सत्येन्द्र : ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन, पृष्ठ १२०

और यह भी बताया है कि किसको कौन-सी चीज खाने की आवश्यकता है। मगही का सोहर निम्न प्रकार है—

अँगना के नेमुआ हइ खट्टा, हइ मिट्ठा अनार जी,
खटमिठ लागे नौरंगिया, मीठे मीठे आम जी,
हम खायम नेमुआँ के निमकी, सइयाँ जी अनार जी !
ननदी के देवइ नौरंगिया, होरिलवा के आम जी ![1]

इस सोहर में गर्भवती ने निमकी खाने की इच्छा इसलिए व्यक्त की है कि पुत्र-जन्म की अवधि अब पूरी होने जा रही है और उसे खाना पीना पचता नहीं। इसीसे उसे पचाने के लिए निमकी चाहिए। अपने आप अपने स्वास्थ्य रक्षा कर लेना और खाने-पीने की चीजों के गुणों का जानना जीवन के लिए कम आवश्यक नहीं।

मैथिली के सोहर में गर्भवती की इच्छाएँ स्पष्ट हैं और मिथिला के खाने-पीने के प्रकारो पर भी प्रकाश पड़ता है। इसमें यह बताया गया है कि छठे महीने बीत गये गर्भवती के अंग-प्रत्यंग भारी हो गये। भात खाते खाते उसकी तबीयत ऊब गयी और दाल देख कर तो जी मिचलाने लगा—

छओ महीना राम बिति गेल, छओ अंग भारी भेल रे !
ललना, धनमा के भतबो ने सोहाय, त दालि देखि हुलिआबय रे ![2]

(ग) बाँझ स्त्रियों की करुण दशाएँ

परिवार में बाँझ स्त्री का जीवन बड़ा ही दुखमय होता है, क्योंकि 'अपुत्रस्य गतिर्नास्ति' ही नहीं, बल्कि मातृत्व की सार्थकता तो सन्तान-प्राप्ति में है। बाँझ स्त्री को सास-ननद की झिड़कियाँ सहन करनी पड़ती हैं। एक भोजपुरी सोहर में बाँझ स्त्री की करुण पुकार यों है—

सून लागे दिया बिनु मंदिल,
माँग सेनुर बिनु हो !
ललना, ओइसन तिरिया गोद,
से एक बालक बिनु हो !
सून लागे महल अटरिया
अवरु खेत धरतिया नु हो,

---

१ डा० विश्वनाथ प्रसाद : मगही संस्कार-गीत

२ राम इकबाल सिंह 'राकेश' : मैथिली लोकगीत, पृष्ठ ६६

ललना, नाही नीक लागे सुखभोग,
से एक संतति बिनु हो ।[1]

अवधी के निम्नलिखित सोहर में बाँझ की करुण दशा का वर्णन बड़ा ही द्रावक हैं । सास उसे बाँझ कहती है, ननद ब्रजवासिनी कहती है और पति ने उसे घर से निकाल दिया है । आखिर, वह बेचारो जाय तो कहाँ जाय । वह जंगल में एक बाधिन के मुँह का ग्रास बन कर जीवन की इहलीला समाप्त कर देना चाहती है । लेकिन आश्चर्य है कि खूंखार भूखी बाधिन भी यह कह कर उसे लौटा देती है कि वह बाँझ स्त्री है । उसे खाकर कहीं वह बाधिन भी बाँझ हो जाएगी । यह मार्मिक उक्ति इस प्रकार है—

सासु मोरी कहिन बझिनियाँ, ननद ब्रजबासिनि हो !
बाधिन ! जिनकी में बारी वियाही, उइ घर से निकरिनि हो !
बाघिन हमका जो तुम खाइ लेतिउ, बिपतिया से छूटित हो,
जहँबाँ से तुम आइउ लउटि उहाँ जाओ, तुमहिं नाहीं खइबइ हो !
बाँझिनि ! तुमका जो हम खाइ लेबइ, हमहुँ बाँझि होबइ हो ![2],

मिथिला की बाँझ स्त्री अपनी व्यथा को प्रकृति में आरोपित करती है । रंगमहल में वह रो रही है और सावन की झड़ी उसकी आँखों से बरस रही है । बच्चे के बिना उसकी गोद सूनी है । वह धीर कैसे धरेगी ? कोयल बोलती है तो मानो उसे साँप डँसता है । उसका शरीर व्यथा की आग की लपट से जलता जा रहा है । उसके कलेजे से जो आह के दाह निकलते हैं, उससे आसमान धधक गया है—

रंग महलिया में बिसुरौ, दूसह दुख बाढ़त हे !
बरिसत नीर नयनमा, सावन जिमि झरि लाबय हे !
गोदिया बालक बिनु सुन्न, कोना विधि धीर धारु है, ललना !
कोयल त बोलत अमरिया, डसय जेना बिसधर है !
लहकि लपट धुँधुकार, जलय तन छिन छिन हे, ललना !
उठत करेजबा सँ आह, गगन जनि धधकय हे ![3]

ऊपर के इस सोहर में महलिया, नयनमा, गोदिया, अमरिया, करेजबा

---

१ डा० कृष्णदेव उपाध्याय : भोजपुरी ग्राम गीत, द्वितीय भाग, पृष्ठ ५
२ श्री कृष्णदास : लोकगीतों की सामाजिक व्याख्या, पृष्ठ १९८
३ राम इकबालसिंह 'राकेश' : मैथिली लोकगीत, पृष्ठ ६०

आदि पर भोजपुरी की ध्वनि का प्रभाव स्पष्ट है और यह मैथिली का सोहर मुजफ्फरपुर के आस-पास के अँचल का है। इस सोहर में कवित्व की शक्ति भी दीख पड़ती है।

ब्रजभाषा में बाँझ स्त्री की करुण कथा का पता गंगा में पानी भरते समय लगता है। वह अपनी सखी से बताती है कि उसे न तो सास 'बहू' कह कर बुलाती है और न ननद ही उसे भाभी कहती है और जब पति भी बाँझ कहकर टेरता है तो उसका हृदय फटने लगता है—

सासु बहू कहि नाँएं बोले, ननद भाभी ना कहै !
ननद भाभी ना कहै !
न हो राजे बे हरि बाँझ कहि टेरे तो छतियां जु फटि गयीं ![1]

अवधी में भी यमुना का पानी भरते समय सखी से एक बाँझ स्त्री कहती है—

ना मोरे सास ससुर दुख, न मइके दूरि बसै,
बहिनी, ना मोर पिया परदेश, कोखि दुख रोबहु हो ![2]

ठीक इसी प्रकार का भाव और वाक्य रचना भी ब्रजभाषा में है—

ना दुखुरी मोइ सासु, री ससुर को, नाइ मेरे पिया परदेश,
ना दुखु री मोइ मात-पिता को, ना मा जाए बीर !

मैथिली के सोहर में एक बाँझ स्त्री अपनी दारुण दशा इसी प्रकार सुना रही है। उसे रात दिन सास मारती है, ननद गाली देती हैं। गोतिनी (जेठानी) कानाफूँसी करती है कि यह बाँझ कहाँ से गले पड़ गयी—

सासु मोरा निसिदिन मारइ, ननद गड़ियाबै रे, ललना !
गोतिनी कएल तरमेन, बझिनियाँ गर आओल रे !

स्मरण रहे कि मैथिली में 'निशिदिन' का उच्चारण निसिदिन के रूप में होता है। प्रायः 'श' को 'स' के ऐसा बोला जाता है।

हिन्दू समाज में पुत्र न होना एक अभिशाप माना जाता है। राजा दशरथ को सन्तान न होने के कारण उन्हें पक्षी तक कोसते थे। खड़ी बोली का एक लोकगीत ऐसा है—

चिरी चिगाल यू कहैं सुन राजा मोरी बात,

---

१ **डा० सत्येन्द्र : ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन, पृष्ठ १२५**

२ **श्रीकृष्णदास : लोकगीतों की सामाजिक व्याख्या, पृष्ठ १९०**

तुम तो बाँझ; जन्म के राजा, कोई धारे सम्पत नाय !
सुनो रघुनाथ हरी !
हमसे राजा क्या कहो, जाओ झण्डू के पास !
झण्डू के पास तुम जइयो, कोई वोही दे बतलाय !
सुनो रघुनाथ हरी ![1]

कन्नड़ लोकगीत में एक ललना कहती है कि पुत्र के बिना स्त्री का जन्म किस काम का ? भाड़े के बैल के जैसा उसका जीवन निष्फल हो जाएगा और खाना खाकर फेंके हुए केले के पत्ते की भाँति वह समझी जाएगी—

बाल करिल्लद बालिद्यातर जन्म,
बाड़ीगि एत्तु दुड़िधंगे बालेलेय,
हास्युंडु बीसि आगे धंगे।[2]

गर्भाधान संस्कार सम्बन्धी लोकगीतों की ओर थोड़ी-सी विवेचमा ऊपर के उद्धरणों द्वारा की गयी है। अब सोहर में पुत्र-जन्म संस्कार के लोकगीतों का स्थान आता है। उन पर भी थोड़ा प्रकाश डालना है।

(अ) पुत्र-जन्म के गीत

पुत्र-जन्म के शुभ अवसर पर राम-जन्म और कृष्ण-जन्म का आलम्बन पवित्र भावना की दृष्टि से लेकर परम्परा से लोकगीत चले आ रहे हैं। मगही में पुत्र-जन्म संस्कार सम्बन्धी एक सोहर निम्न प्रकार है—भाव विषय और रूप-साम्य की दृष्टि से—

गोखुला में बाजले बधइया तो आउरो बधइया बाजे हे !
ललना, जनमल सीरी नंदलाल, नंद घर सोहर हे !
सोने के हँसुआ बनायम, गोपाल नार छीलम हे !
ललना, सोने के चौकिया बनायम, किसुन नेहलायम हे !
पीयरे बसतर अंग पोछम, पीतामर पहेरायम हे !
पइरबा में पइजनी पहेरायम, गोपाल के नेहलायम हे ![3]

मैथिली में जो पुत्र- जन्म पर सोहर है वह कृष्ण का आधार लेकर तो अवश्य है। लेकिन उसमें जन-साधारण की उपयोगिता की सामग्री का ही

---

१ सीता देवी : धूल धूसरित मणियाँ, पृष्ठ ९६
२ गरतिय हाडु : प्रभात ऑफिस, कार स्टीट, मैंगलोर, (१९५५) पृष्ठ ६
३ डा० विश्वनाथ प्रसाद : मगही संस्कार गीत

वर्णन है। उसमें सोने का हँसुआ नहीं है और न सोने की चौकी है, किन्तु नन्द जी से सुपारी-पान और सोने की नथ की माँग अवश्य की गयी है। उबटन तेल, ककहिया, काजर आदि जो शिशु के लिए आवश्यक सामान हैं वे पहले से मँगवा लिये गये हैं और मिथिला में आज भी परिवार में ऐसा होता है। भाव, ताल, लय, गति की दृष्टि से दोनों सोहर में साम्य है। मगही में जहाँ बनायम, छीलम, नेहलायम, पहेरायम होता है, वहाँ मैथिली में बनाएब, छीलब नहलाएब, पहिरायब, होता है। 'म' के बदले 'ब' लगाकर भविष्य काल की क्रिया मैथिली में बनती है। हँसुआ और पइरबा की मैथिली में हाँसू और पैर बोलते हैं। लेकिन भोजपुरी के प्रभाव के कारण हँसुआ और पैरबा भी दरभंगा के पश्चिम में बोला जाता है। मैथिली का पुत्र-जन्म सम्बन्धी सोहर तुलनात्मक दृष्टि से इस प्रकार अंकित किया जा रहा है—

नन्द घर नौवति बाजए, सुख उपजाबए, ललना !
जनमल श्री यदुनाथ कि नयन जुडाएल रे !
आए उबटन तेल, ककहिया काजर, रे ललना !
नउड़ी बयसबा के दूध के हुलसि पिआएब रे !
बाजू बन्द बेसरि पैजनि रुनुझुनु बाजय रे ललना ![1]

(इ) लोरियाँ

पुत्र-जन्म के बाद माँ अपने शिशु को बहलाने के लिए लोरी गाती है और यह लोरी अनादिकाल से चली आ रही है। उसमें एक ही आत्मा लहरा रही है। लोरियों में माँ का वात्सल्य और गौरव भरा रहता है और उसमें सुन्दर उपमाओं की छटा दीख पड़ती है। माँ अपने शिशु को संसार का अधिपति और कभी साक्षात परमेश्वर का स्वरूप मानती है। लोरियों में प्रत्येक प्रान्त के परम्परानुगत संस्कार और रीति-नीति का रूप मिलता है। दृष्टि में जब से मा आयी तब से लोरियाँ भी।

आन्ध्र प्रदेश की माँ रात में अपने शिशु को चन्द्रमा दिखला कर तेलुगु में यह लोरी गाती है—हे चाँद मामा तुम आओ! गाड़ी पर चढ़ कर आओ। फूल लेकर आओ। पीले पीले फूल। उन्हें बच्चों को देख कर चले जाओ। चन्द्रमा को मामा कह कर उसे अपने परिवार का सानिध्य प्राप्त करना, प्रकृति के प्रति आदर का भाव अर्पित करना उसे बच्चे को

---

१ राम इकबाल सिंह 'राकेश' : मैथिली लोकगीत, पृष्ठ ६५

दिखला कर चन्द्रमा की शीतल स्निग्ध किरणों द्वारा प्रकृति के प्रति प्रेम शिशु के मन में उत्पन्न करना। युगयुगों से होता चला जा रहा है। आदिम युग में मानव ने अवश्य ही चन्द्रमा को देख कर अनिवर्चनीय आनन्द की अनुभूति ली होगी। और, शिशु भी उसे असमान में ज्यातित देखकर फूले नहीं समाते। चन्दा मामा की तेलुगु लोरी भाव और विषय-साम्य की तुलनात्मक दृष्टि से इस प्रकार है—

चन्दा मामा रावे, जाबिल्ली रावे !
कराडेकि रावे, कोटि पूलु तेवे !
बंडि मीदा रावे, बन्ति पूलु तेवे।[1]

तमिल में भी इसी तरह चंदा मामा पर लोरी है। केवल भाषा का आवरण हटा देने से भाव-साम्य स्पष्ट झलकता है—

निला निला वा वा, निल्लामल ओडिवा !
मलै मैले एरि वा, मल्लि कैप्पू कोराडुवा,
नडु वीट्टिल वैत्ते नल्ल शैदि शोल्ल वा !
वेल्लि किराण्त्तिल पालुम शौरुम्,
वेरिडय मंट्टु उराण वा !
अलि अलि, एडुतु अराणन वायिल उट्टवा,
कोंज्जं कोंज्जं ऊट्ट कुलन्दैकु शिरिप्पु काट्ट ![2]

अर्थात् हे चाँद आओ, बिना रुके दौड़कर पहाड़ पर चढ़कर, फूल लेकर, घर के आँगन में रखकर आओ। अच्छी खबरें सुनाने आओ। चाँदी की कटोरी में दूध और भात जितना चाहे खाने आओ। हाथ भरले लेकर बड़े भैया के मुँह में थोड़ा थोड़ा खिलाओ, बच्चे को हँसाओ !

मैथिली में भी चन्दा मामा पर जो लोरी है वह ठीक इसी प्रकार की है जिसमें दूध भात, खीर, पूरी, पकवान, शहद, मखान, दही, केला, खोआ आदि खाद्य पदार्थों का नाम भी चन्दा मामा के साथ जोड़ दिया गया है—

आ चन्ना, आ चन्ना, दूध ला, भात ला,
खीर ला, पूड़ी ला, मीठ पकवान ला,

मधु मखान ला, दही मटकूड़ी ला,
केरा के भार ला खिरसा माडिला' बौआ मुँह में घुटुक ![1]

कुछ प्रान्तों की लोरियाँ निम्न प्रकार के भावों से परिपूर्ण हैं जिनका उल्लेख श्री देवेन्द्र सत्यार्थी की पुस्तक 'बेला फूले आधो रात' के २५०, २५१ आदि से किया जा रहा है—

उड़िया

जन्हाँ मामू रे ! जन्हाँ मामू
मो कथा ही सुनो !
बिल-र माछ चील खाइगला
खइँची खंडिए बुणों !

चाँद मामा, ओ चाँद मामा। मेरी बात सुनो। खेत की मछली को चील खा गयी। तुम जाल तैयार करो।

असमिया

बापा ए ! न लावी राती;
बाट-ते जलछे खोटा बाती,
छाती जलक बन्नी जलक,
पोहर न होए भाल,
बियार समय महला दीले,
पोहर हवे भाल !

हे शिशु ! रात के समय बाहर न जा। पथ में सोलह दीपक जल रहे हैं। उनका प्रकाश अच्छा नहीं है। तेरे विवाह के समय में दीपक जलाऊँगी।

बंगाली

खोका बोलते पारे, काँदते पारे,
खुमौते पावे ना, लेते पारे नीते पारे
दीते पारे ना !

माँ कहती है कि शिशु बोल सकता है, रो सकता है, सो नहीं सकता।

---

१ नन्दीपति दास : नेना भुटका (मैथिली) पहिला भाग, पुस्तक भंडार पटना, पृ० २२

सावरा

(गंजाम जिले की पहाड़ी जाति)

आकुड़ा अम्बड़ी आ, न इतेन एते
एडोंग एडोंग किन केना !
यान् आरुनंगा ओ—न इयेन् !
एडोंग एडोंग किन केना !

अर्थात् माँ गाती है—हे मेरे ईख के रस के-से बच्चे ! तू रोता क्यों है ? रो मत, गीत गा । मेरा बच्चा बहुत सुन्दर । रो मत गील गा ।

कुई

आपो ड़े ड़ीया-ड़ीया,
आजे वाते काने ड़ीया-ड़ीया,
पाडुगरो ऊड़तान ड़ीया-ड़ीया,
आपो ड़े ड़ीया-ड़ीया !

कुई माँ कहती है—न रो बेटा, न रो, तेरी माँ अभी आयगी, वह तुझे दूध पिलाएगी रो मत ।

डोगरा

चुप्पि करि पौ में जौ घोलड़ा ,
तें जो बोलड़ा चुप्पि करि पौ,
मैं जो वीरगलें दिया चुप्पि करि पौ,

डोगरा माँ कहती है—मैं तुझे कहती हूँ, चुपरह हे मेरे वीर कहलाने वाले बालक चुपरह । रो मत !

शिशु को सुलाने के लिए मराठी की लोरी में माँ अपने बच्चे से कहती है—हे मेरे लाल, सो जा । पलकों की पंखुड़ियों में पक्षियों के बच्चे को सोने दे ! हरे पत्तों में लताओं के बच्चे भी सो गये हैं । अतः तू भी सो जा । उज्ज्वल ज्योति लेकर आसमान में चन्द्र-तारे भी सो गये हैं और बनदेवी ने तेरे लिए स्वप्न मंदिरों के द्वार खोल दिये गये हैं । अब स्वप्न लोक में विचरण करने के लिये तू भी सो जा—

बाला जो जो रे !
पापणिच्या पँखांत झोंपूं, दे०
चिपण्यांची लेकरें - बाला !

हिरन्या पानाधी झींपली,
बेली चीं पोखरें - बाला !
मेघ पांढरे उशास घेउनी,
चन्द्र तारका निजत्या गगनी !
वनदेवी उघड़ी केली
स्वप्ना ची मंदिरे - बाला !

मलयालम में माता अपने बच्चे को संसार की सर्वश्रेष्ठ वस्तुओं का समूह समझती है ।

ओ मनति कल किटा औ,
नल्ल कोमलताम रैप्यूवो,

अर्थात् मेरा बेटा चाँद का टुकड़ा है ।

कन्नड़ की लोरी यों है—

जो जो श्रीकृष्ण परमानन्द
नन्द कोपि मुकुन्द नन्द !

तमिल की एक लोरी का अंश इस प्रकार दिया जाता है । इसमें लोकगीतकार पेरियालवार ने अपने आपको मातृ रूप और भगवान को शिशु रूप मान कर कभी उन्हें पुचकारा है । कभी चन्द्र दर्शन करवाये, तो कभी पालने में लिटा कर मधुर लोरियाँ गायीं हैं ।

माणिवकम् कहिवयिरम् इडौकहि,
अणिणपौणाल शेयद वरणाच्यरु तोहिल ।
पेणि उनकुप्पिरमनु विडुतंदान
माणिवकुरलने तालेलो !
वैयम अलंदाने तालेलो !

अर्थात् मणिमाणिक्य से जड़ा हुआ यह सोने का बना झूला ब्रह्मा ने तुम्हारे लिए भेजा है । इसमें सो जाओ ।

---

१ **नवभारत टाइम्स, बम्बई १७ जुलाई' ५५, प्रादेशीय साहित्य में लोरियाँ, पृष्ठ ४**

तेलुगु की एक लोरी में माँ अपने शिशु को प्रभु का रूप समझती है—

जो जो अच्युतानंद जो जो मुकुन्दा,
रा रा परमानंद राम गोविन्दा ! जो जो ![1]

नीचे की एक बंगला लोरी बड़ी भावपूर्ण जान पड़ती है । इसमें माँ की कोमलतम भावना और कल्पना अनूठी हो उठी है—

खोका आमार घूम ना जाय,
मिटिर मिटिर चक्खू चाय,
घूमेर मासी घूमरे पिसी
घूम दिले भालोबासी,[2]

अर्थात् माँ कहती है—मेरा बच्चा सोता नहीं, अर्धमिची आंखों से देखता है । नींद की बुआ उसे सुला दें तो मैं उससे बहुत प्रेम करूँ ।

अथवा

घुमो घुमो घुमो !
घुमोच्छे गाछेर पाता,
हाटेर घूम, बाटेर घूम
घूम गड़ा गड़ी जाय !

हे मेरे लाल ! सो जा सो जा, पेड़ों के पत्ते सो रहे हैं । बाजार सोता है, मैदान सोता है । जोर की नींद छा रही है । तू भी सो जा ।

देश की कुछ प्रमुख भाषाओं में जो लोरिया प्रचलित हैं वे यों हैं—

संथाली

नींदा बाबू आलमरागा,
नड़े गीतिमे आलमरागा,

संथाली माँ लोरी में यह भाव व्यक्त करती है—सो जा प्यारे बच्चे ! भूमि पर लेटकर ही सो जा !

---

१ कर्णराज शेषगिरि राव : आंध्र लोकगीतों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, दक्षिण भारत : मद्रास : मई ५७ अं० ७, पृष्ठ १

२ देवेन्द्र सत्यार्थी : बेला फूले आधी रात, पृष्ठ २५२

मराठी

रडु नको रडु नको,
माझा बाला रडु नको,
हसुन हसुन झोप
गाऊन गाऊन झोप
झोप झोप माझा बाला,
झोप झोप मधुगोड बाला ![1]

मराठी माँ कहती है—रो मत रो मत, मेरे प्रिय शिशु रो मत हँसता सो जा। गाता गाता सो जा! हे मेरे शहद के से बच्चे! सो जा!

गुजराती

नींछड़ी तू आवे जो आवे जो,
मारां बच्चु सास लावे जो लावे जो,
तूं वदाम मिसरी लावे जो,
तूं खारेक टोपरु लावे जो!

गुजराती माँ कहती है—आ, हे नींद आ, हमारे बच्चे के लिए ला। तू मिश्री और छुहारे ले आ।

मैथिली

मैथिली की लोरी अपने ढंग की निराली-सी जान पड़ती है। इसमें जन-साधारण के अन्तस्तल को स्पर्श करने की शक्ति है और स्वाभाविकता भी कम नहीं है। नीचे की लोरी में यह बताया गया है कि नींद विरनियाँ गाँव से आयी है और बच्चा भी पुनियाँ से थक कर आया है। माँ कहती है—हे शिशु! खेत और खलिहान में चलो, तुझे सूप भर कर देसरिया (सुगंधित) धान दूँगी। उससे खरीद कर पान खाना। और पानवाली कहती है कि उसके पास पान नहीं है और शिशु कहता है कि उसे दाँत नहीं है। इसमें केवल कल्पना की ही उड़ान नहीं है, बल्कि वास्तविकता भी है और एक सम्पन्न परिवार की झाँकी इस लोरी में मिलती है।

मिथिला के विपन्न परिवार की लोरी भी नीचे की लोरी के साथ दी जा रही है। इस लोरी में परिवार की दारुण दशा का चित्रण किया गया है।

---

१ देवेन्द्र सत्यार्थी : बेला फूले आधी रात, पृष्ठ २५२

इसमें यह बताया गया है कि बच्चे का बाप बाँस काटने के लिए गया है और मजदूरी में तीन सेर मरुआ (कदन्न) मिला है। माँ कूटती पीसती है। रोटी पकाती है तो तीन रोटियाँ ही बन पाती हैं। उसे बाँटकर कैसे खिलावे! दोनों लोरियाँ यथाक्रम इस प्रकार हैं—

नीनियाँ एलइ बिरिनियाँ सँ,
बौआ ऐलइ पुरैनियाँ सँ!
चलरे बौआ खेत खरिहान,
भरि सूप देबौ देसरिया धान!
तेकरो कीन क खैहैं गुजापान,
पानवाली कहइ मोरा पानइ!
बौआ कहइ मोरा दाँत नइ!

और

सुत सुत रे हारिला, तोहर बप्पा बाँस काटअ गेल!
एक रोटी छाड़ा छौड़ी, एक रोटी बुढ़वा
एक रोटी सुखले धकेल!

ऊपर की पंक्तियों से पता चलता है कि माँ विपन्नता से खीझ उठी है और उसे बच्चों को सँभालने के लिए सामग्री का अभाव है। इसी से उसके मुँह से कुछ कठोर शब्द अनायास ही आवेश में निकल पड़े हैं—जैसे, छाड़ा-छौड़ी, धकेल आदि। इन शब्दों से माँ के हृदय का आक्रोश व्यंजित होता है।

मिथिला की माँ अपने बच्चे को गोद में लेकर थपकी मार मार कर मधुर स्वर लहरी में यह लोरी गाती है—'आ रे' नीनियाँ आ, आ! बौआ के सुता जा!' और, सचमुच निद्रादेवी आकर उसे सुला ही जाती है। संगीत की ध्वनि बच्चे के कानों में जादू की-सी असर डालती है।

(ई) उपनयन

किसी परिवार में पुत्र-जन्म और लोरी के बाद उपनयन का स्थान है। यह संस्कार हिन्दू जाति में प्रचलित है। उपनयन के पहले एक मुण्डन-संस्कार भी होता है और उस सम्बन्ध में भी कई लोकगीत हैं।

भाव और विषय-साम्य की दृष्टि से भोजपुरी लोकगीत में एक उपनयन संस्कार का वर्णन निम्न प्रकार है—

सभवाँ बइठल तोहे बाबा, अमुक बाबा,
करि डालू हमर जनेब !
बिना रे जनेउआ, बाबा न सोभे कान्हा,
नहिं उतरी जतिया के जोग ![1]

इसी प्रकार एक मैथिली (उपनयन संस्कार सम्बन्धी) लोकगीत है—

वेदी बइसल छथि कओन बरुआ, बहिन-बहिन कहु हे !
आबथु बहिन सुहागिन, लापरि परिछथु हे ![2]

मिथिला के उपनयन-संस्कार की प्रक्रिया से यह स्पष्ट होता है कि एक बहिन अपने भाई के लिए कितनी दूर की बात सोचती है और भाई के प्रति कितनी ममता रखती है। उपनयन-संस्कार अति प्राचीनतम है।

२. लग्न-गीत

(अ) विवाह के गीत

भारतीय समाज में विवाह का मुख्य उद्देश्य संतान उत्पन्न कर अपनी वंश-परम्परा को निरन्तर बनाये रखना है और उत्तम संतान द्वारा समाज की सेवा तथा रक्षा कर उसे विकासोन्मुख करना है। इस दृष्टि से विवाह संस्कार के निमित्त सामाजिक जीवन में परिवार की सत्ता स्थापित रखना आवश्यक है।

आज परिवार के स्वरूप को देख कर यह अनुमान सहज में ही लगाया जा सकता है कि आदिम युग में जब मातृ सत्तात्मक परिवार बना तो किसी समुदाय की स्वामिनी स्त्री ही होती थी और परिवार की सम्पत्ति का वितरण माता के सम्बन्धों के अनुसार ही होता था। मलावार में आज भी मातृसत्तात्मक परिवार सुरक्षित हैं और दक्षिण भारत की तमिल, तेलुगु, कन्नड़ तथा मलयालम भाषाओं में ससुर को मामा कहते हैं। मामा अपनी बहिन की कन्या से व्याह कर लेता है और वह अपनी सन्तान से अपनी बहिन की सन्तान का ब्याह करा देता है। फूआ अपनी सन्तान का ब्याह अपने भाई की सन्तान से करा देती है। इस प्राचीन प्रथा को देखकर परिवार के विकास के सम्बन्ध में अनुमान लगाया जा सकता है।

आदिम युग में जब कोई व्यक्ति मर जाता था तो उसके पशु-धन के

---

१ रामनरेश त्रिपाठी : ग्राम-साहित्य, पृष्ठ २५३
२ रामइकबाल सिंह 'राकेश' : मैथिली लोकगीत, पृष्ठ ९५

स्वामी माता के भाई, बहिन, सगे सुम्बन्धी होते थे और उस व्यक्ति के परिवार वाले इस पशु-धन से वंचित ही रह जाते थे। अतः कालान्तर में यह स्थिति असहनीय हो गयी और सामाजिक आवश्यकता की दृष्टि से पितृ सत्तात्मक परिवार की संस्थापना हो गयी और विशेषतया इसी परिवार की परम्परा आज तक चली आ रही है।

पितृ सत्तात्मक परिवार के समय से हमें निम्नलिखित इतिहास भी मिलने लगता है। विकासवाद के अनुसार आदिम परिवार एक समुदाय को लेकर माना जाता था। सारे समूह के स्त्री-पुरुष एक दूसरे के पति-पत्नी थे। समूह-विवाह में ईर्ष्यायुक्त अधिकार के कारण बर्बर युग के अन्तिम काल से एक-पतित्व की स्थापना हुई। एंजिल्स ने लिखा है कि 'एक पतित्व से सभ्यता के आरम्भिक युग के चिह्न दिखाई पड़ते हैं।'[1] इस प्रकार हम आज के एक-पत्नी-निष्ठ परिवार के आरम्भिक स्वरूप तक पहुँचते हैं। एंजिल्स का कथन है कि श्रम-विभाजन का आदिम आरम्भ भी स्त्री और पुरुष के बीच बच्चे को लेकर ही हुआ था। यह श्रम-विभाजन मानव के विकास के हेतु एक महत्वपूर्ण कड़ी है। लेकिन इस एकनिष्ठता में स्त्री की स्वतन्त्रता का अपहरण, शोषण और करुणाजनक परिस्थिति भी छिपी है।

मध्ययुग में स्त्री की परवशता चरम सीमा तक पहुँच गयी और औद्योगिक युग के साथ स्त्री के स्वातंत्र्य की माँग भी सुनायी पड़ने लगी। स्वतन्त्र प्रेम ऐच्छिक विवाह और धार्मिक रूढ़ियों के विरुद्ध विद्रोह हो उठा। आज हम वर्तमान समाज में इसका खुला रूप भली भाँति देख सकते हैं। किन्तु आर्थिक आव-श्यकता के अनुसार जिस एक पत्नी-निष्ठा का प्रारम्भ हुआ था और उसमें अन्तर्हित विरोध थे। वे आर्थिक विकास के साथ बदल गये, वे गहरे हुए और आज फिर नये सिरे से परिवर्तन चाहते हैं। यों तो श्रम-विभाजन से ही शोषित और शोषक वर्ग भी बन गया। लेकिन इस वर्ग-भेद को मिटाने पर श्रम-विभाजन तो रहेगा ही और इसी प्रकार एक परिवार को बचा रहना जरूरी है जिससे कि पति-पत्नी की प्रेम-ज्योति जगती रहेगी।

मिथिला में विवाह-संस्कार का आयोजन वर और कन्या के चुनाव से, जिसे सिद्धान्त या मँगनी कहते हैं, प्रारंभ होता है। कन्या-पक्ष वाले जब वर

---

१ एंजिल्स, एफ : दी ओरिजिन आफ फैमिली, प्राइवेट प्रोपर्टी एण्ड दी स्टेट, पृ० ८८

को वस्त्र, रुपये, उपहार आदि देते हैं तो उसे 'तिलक' कहते हैं। विवाह के समय वर का जो मांगलिक पूजन होता है उसे परिछन कहते हैं और विवाह के समय मंडप पर कन्या का निरीक्षण होता है। इन विभिन्न अवसरों पर नारी के सतीत्व के आदर्श भरे कुछ लोकगीत गाये जाते है और कुछ गीतों में व्यंग्य-विनोद, हास-परिहास तथा शृंगार रस भरे रहते हैं। अन्य प्रान्तों की भाँति ही मिथिला में भी विवाह-संस्कार के मधुर लोकगीत अनेकों हैं।

ऐसा लगता है कि प्राचीनकाल में विवाह करने के लिए किसी भी कन्या को अपने जीवन के अनुकूल साथी चुन लेने की स्वतन्त्रता थी और वह अपनी इच्छा के अनुरूप योग्य वर वरण करती थी। कालान्तर में इसमें कुछ बुराई आ गयी जिससे अभिभावकों ने इसका उत्तरदायित्व अपने कन्धे पर ले लिया।

(क) वर का चुनाव

गुजराती

अपने लिए वर के चुनाव के सम्बन्ध में एक गुजराती कन्या दादा के सामने सुझाव पेश करती है और अपनी आन्तरिक इच्छा भी कहती है। अपने दादा से वह बताती है—कोई ऊँचा वर न देखना, ऊँचा वर तो छप्पर का सिरा तोड़ डाला करेगा। कितना अच्छा परिहास इस पंक्ति में भरा है! कोई नीचा वर न देखना, नीचा तो सदैव ठुकराया जाएगा। कोई गोरा वर न देखना। दादा! गोरा वर तो अपने ही रूप का बखान करेगा। कोई काला वर न देखना, काला वर तो कुटुम्ब को लज्जित करेगा—

एक ऊँचो ते वर नो जोशो, रे दादा!
ऊँचौ ते नत्य नेवां भांग शे!
एक नीचौ ते वर नो जोशो, रे दादा!
नीचो ते नत्य ठँवे आव शे!
एक धोलो ते वर नो जोशो, रे दादा!
धोलो ते आप बखाण शे![1]

अन्त में वही कन्या कहती है—उसे न ऊँचा वर पसन्द है, न नीचा, न गोरा न काला। यों लगता है कि एक युवक जो बहुत ऊँचा नहीं है और

१ **देवेन्द्र सत्यार्थी : बेला फूले आधी रात, पृष्ठ १०८**

न नीचा है न तो वह गोरा है और न काला वही उसके मन में भा गया है । इस चुनाव में उसकी सखियाँ और भाभियाँ भी अपनी सम्मति देती हैं ।

राजस्थानी

वर के चुनाव सम्बन्धी भावों का निरूपण एक राजस्थानी लोकगीतों में भी ऐसा ही हुआ है—

कालो मत हेरो बाबाजी, कुल ने लजावै,
गोरो मत हेरो बाबाजी, अंग पसीजे,
लांबो मत हेरो बाबाजी, सांगर चूंटे,
ओछो मत हेरो बाबाजी बावन्यू बतावे ![१]

अर्थात् पिताजी काला वर मत ढूँढ़ना जो कुल को लजाए । गोरा वर मत ढूँढ़ना जिसे थोड़ा-सा परिश्रम करते ही पसीना आ जाय । लम्बा मत ढूँढ़ना जो केवल सागर (मारबाड़ के एक वृक्ष की फली) तोड़ने के काम आए, और न ठिगना, जिसे लोग बोना कहें । अन्त में वह कहती है—

ऐसो वर हेरा कासी को बासी,
बाई के मन भासी, हस्ती चढ़ आसी !

मेरे लिए ऐसा वर खोजना जो काशी में बास कर चुका हो, क्योंकि काशी विद्या की केन्द्र रही है और वह शिक्षित तो वहाँ रहने से होगा ही । वह हाथी पर चढ़ कर आएगा, यानी वह सम्पन्नशील होगा, ऐसा ही वर तुम्हारी बाई (बेटी) को मन भाएगा ।

मैथिली

भाव-साम्य की दृष्टि से वर-चुनाव में मिथिला की कन्या भी अपने स्वतन्त्र विचार रखती है । नीचे के मैथिली लोकगीत में इस प्रकार का भाव व्यक्त किया गया है कि आर्थिक कठिनाई के कारण विवश होकर पिता ने अब अपनी बेटी के व्याह के लिए एक निर्धन तपस्वी को तिलक चढ़ाया तो बेटी ने उसका विरोध किया और उसने यह धमकी दी कि ऐसे वर के साथ यदि उसका विवाह होगा तो वह विष खाकर मर जाएगी । लेकिन उसका पिता करे तो क्या करे, कोई योग्य वर कन्या के लिए मिलता ही नहीं—

पूरब खोजल बेटी, पछिम खोजल,
खोजल में मगह मुंगेर हे !

---

२ देवेन्द्र सत्यार्थी, : बेला फूले आधी रात, पृष्ठ १०६

तोहरा जुगुति बेटी वरनहि भेंटल,
खोजि अएलों, तपसी भिखारि हे !
निरधन तपसिया हमें न बिआहब,
मरि जैबौं जहर चबाय हे !

इसी गीत में वह कन्या कहती है कि हे बाबा । जिस घर में कन्या कुमारी है उसके घर के लोग निश्चित होकर कैसे सोते हैं । इस उक्ति से यह स्पष्ट है कि कन्या प्रौढ़ वय की हो गयी है और बल-विवाह प्रचलित होने के पूर्व की यह उक्ति हो सकती है । यद्यपि वह वर-चुनाव की चर्चा नहीं करती है, लेकिन वर खोजने की ओर संकेत अवश्य कर रही है—

जाहि घर आहे बाबा, धिआ हे कुमारि !
सेहो कोना सुतथि, निश्चित हे ?[1]

मैथिली में निश्चित के बदले 'निसचिन्त' का प्रयोग होता है । यहाँ 'श' के स्थान में 'स' नहीं दिया गया है ।

(ख) बेमेल विवाह

भोजपुरी

बेमेल विवाह के प्रति घृणा उत्पन्न करने के लिए शिव और पार्वती का आलम्बन लेकर लोकगीतकारों ने अनेको गीत बनाये हैं । इसमें एक ओर तो भक्ति-भावना है और दूसरी ओर सामाजिक व्यवस्था की व्यंग्य-वाण छोड़ा गया है । एक माँ के हृदय में अपनी बेटी के प्रति कितनी ममता और शुभेच्छा रहती है, वह इस भोजपुरी लोकगीत में स्वाभाविक रूप से अभिव्यंजित हुई है—

एइसन तपसिया के गउरा नहीं देबो,
बलु, गौरा रहिहें कुंवार !
ए आगे परीछे गेली सासु मादागिनि,
सरप छोडले फुफकार ![2]

---

१ राम इकबाल सिंह "राकेश" : मैथिली लोकगीत, पृष्ठ १३३

२ धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी और आनंद : भोजपुरी लोकगीत, मगध राजधानी प्रकाशन, पटना, पृष्ठ १३

मगही

एक मगही लोकगीत में शिवजी के तिलक की बात व्यंग्यात्मक रूप से कही गयी है जिसमें सजीवता निखर उठी है शिव की टोपी में गहुमन साँप लटका हुआ है—

एक मन भांग राखा, एक मन धतुरा,
सौ बोरा देखलू, हम गाँजा गे माई !
गोहुमन साँप तो टोपी में लपटल,
गोजर जड़ित ओमे ताज, गे माई ![1]

ऐसा लगता है कि ऊपर के दोनों लोकगीतों पर मैथिली की नचारी का प्रभाव पड़ा है, क्योंकि 'नचारी' गाने की प्रथा मिथिला में ही है और उसके प्रणेता विद्यापति हैं। उसके गीतों का प्रचार मिथिला के पड़ोसी क्षेत्रों में भी हुआ है।

मैथिली की नचारी में पार्वती की माँ बूढ़े शिव को देखकर रुष्ट हो गयी है और इस ब्याह का विरोध करती है। वह अपनी बेटी को साथ लेकर घर से भाग निकलना चाहती है और इस तरह की क्रान्ति उत्पन्न करने वाली नचारी विद्यापति द्वारा लिखी गयी है। इससे विद्यापति कालीन मिथिला का सामाजिक स्वरूप दृष्टिगोचर होता है।

मैथिली

हम नहिं आजु रहब एहि आँगन,
जों बुढ़ होएत जमाइ, गे माई !
पहिलुक बाजन डामरु तोड़ब,
दोसरे तोड़व रुंडमाल,
बरद हाँकि बरिआत बेलाएब,
धिआ ले जाएब पराइ, गे माई ![2]

(अ) बेटी की बिदाई

कन्या के विवाह के बाद उसकी बिदाई का क्षण माता-पिता और सगे सम्बन्धी के लिए बड़ा ही कारुणिक क्षण होता है। पत्थर का हृदय भी उस

---

१ धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी और आनंद : मगही लोकगीत, मगध राजधानी प्रकाशन, पटना, पृष्ठ, २

२ रामवृक्ष 'बेनीपुरी' : विद्यापति पदावली, पृष्ठ, ३०३

हृदय को देखकर विचल उठता है। विवाह के अवसर पर यह बिछुड़न आँखों में जैसे सावन-भादों उमड़ा देता है। महाकवि कालिदास ने इसी से कण्व मुनि के मुँह से शकुन्तला को ससुराल भेजते समय व्यथा व्यक्त करायी है और उनका हृदय भी फूट पड़ा है। कण्व मुनि कहते हैं कि जब उन्हें ऐसी व्यथा होती है तो साधारण माता-पिता के हृदय में बेटी की बिदाई के समय न जाने, कितनी व्यथा उमड़ती होगी—

(क) करुणा-धारा

संस्कृत

यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्ट मुत्कण्ठया
अन्तर्व्वाष्प भरोपरोधि गदितं चिन्ताजडं दर्शनम्।
वैक्लव्यं मम तावदीहृशमपि स्नेहादर व्यौकसः।
पीडचन्ते गृहिणः कथं न तनया विश्लेषदुः खैर्नवैः॥
(अभिज्ञान शाकुन्तलम् चतुर्थांक) पृ० १७१

भोजपुरी

बेटी की बिदाई का दृश्य निम्नलिखित भोजपुरी गीत में सजीव हो उठा है और बेटी ससुराल जाते समय क्या-क्या कह कर बिसूरती है उसका करुण वर्णन किया गया है। भाभी और ननद की पटरी युगयुगों से नहीं बैठती रही है, इस गीत में भी भाभी के कठोर हृदय की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया है—

बाबा के रोवले गंगा बढ़ि अइली,
आमा के रोयले अनोर !
भइया के रोवले चरन धोती भींजे,
भउजी नयनवाँ ना लोर ![1]

अर्थात् बाबा के रोने में गंगा बढ़ आयी। बाबा का हृदय कितना पवित्र है और वह कितना रो रहा है, ऐसा लगता है कि मानो गंगा उमड़ उठी है, उसके रोने की कोई सीमा नहीं है। इस भाव को दिखाने के लिए यह अनूठी उपमा दी गयी है।

---

१ धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी और आनंद : भोजपुरी लोकगीत, मगध राजधानी प्रकाशन, पटना, पृ० २५

माँ भी बिसूर रही है। भाई इतना रोता है कि आँसू से उसके पैर भींग गये हैं और आँखों को पोंछते पोंछते धोती भी भींग गयी है। लेकिन भाभी तो दूसरे घर की बेटी है, भला अपनी ननद के प्रति उसे क्यों प्रेम होगा और उसकी आँखों में आँसू क्यों छलछला आएगा? उसे अपनी ननद फूटी आँखों नहीं भाती थी। ननद और भाभी के झगड़े बहुत पुराने हैं और आदिम सामाजिक व्यवस्था की ओर संकेत करते हैं।

मगही

मगही और मैथिली में भी इसी तरह का रूप-साम्य है—

अम्मा के रोये मोरा सब घर रोये,
बाबा खड़े पछताए हे !
बीरन के रोये मोरा अँचरा जे भींजे
भउजी के हिया कठोर हे ![1]

बुन्देलखण्डी

बेटी की बिदाई के करुण दृश्य का चित्रण एक बुन्देलखण्डी लोकगीतकार ने भी इसी प्रकार किया है—

माई के रोये से नदिया बहत है,
बाबुल के रोये बेलाताल,
बिरना के रोये से छतिया फटत है,
भउजी के जियरा कठोर ![2]

कन्नड़

अपनी बहिन की बिदाई के समय एक कन्नड़ भाषी भाई विकल होकर कहता है—

तंगीन कलुव्यान तेवरेरि निन्तान,
अँगिलि नीरु वरस्यान नन्नरण,
इंदिगि तंगि एरवेन्द ![3]

---

१ धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी और आनंद : मगही लोकगीत, मगध राजधानी प्रकाशन, पटना, पृ० ११

२ श्रीकृष्णदास : लोकगीतों की सामाजिक व्याख्या, पृ० १८४

३ एच० एम० शंकरनारायण राव : जानपद मुक्तकगल, मैसूर विश्व विद्यालय, सन् १९५३, पृ० २५

मैथिली

मैथिली में बेटी की बिदाई के समय कन्नड़ को छोड़कर ऊपर के सभी लोकगीतों के समान मिलता-जुलता भाव व्यक्त किया गया है—

बाबा क कानले में नग्र लोक कानल,
अमा क कानल दहलल भुइ हे !
भइया निरबुधिया के आँगि टोपी भींजल,
भउजि के हृदय कठोर हे ![1]

यही गीत कुछ परिवर्तित रूप में यों है—

अम्मा के कनबे गंगा बहि गेलनि,
बाबा के कनबे हिलोर !
भैया के कनबे पटुका भीजि गेलनि,
भउजी नयन नइ नोर !

(ख) बेटी को माँ का उपदेश

बेटी को माता-पिता उत्तम गृहिणी बनने की शिक्षा बराबर देते ही रहते हैं और बड़ी साधना के बाद यह पद बेटी को प्राप्त होता है। उसका कर्तव्य बड़ा ही कठिन होता है। कालिदास ने शकुन्तला की बिदा के समय कण्व मुनि से कहलाया है—

संस्कृत

शुश्रूषस्व गुरुन्, कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने
भर्तुर्विप्रकृतापिरोषणतया मास्म प्रतीयंगमः।
भूमिष्ठां भव दक्षिणा परिजने, भाग्यष्वनुत्सेकिनी
यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो, वामा कुलस्याधयः।

अभिज्ञान शाकुन्तलम्, चतुर्थांक, पृष्ठ १८०

अर्थात् हे बेटी ! तू गुरुजनों की सेवा करना और अपने सौतों के साथ भी सखी के ऐसा ही व्यवहार करना। अपमानित होने पर भी क्रोध में आकर अपने पति के विरुद्ध मत जाना। नौकरों के साथ उदार होना। अपने सुखों पर इठलाना नहीं। इन्हीं आचरणों के द्वारा कन्याएँ गृहिणी-पद पाती हैं। इसके विपरीत जाने वाली कन्याएँ वंश में रोग के रूप में हो जाती हैं।

ऊपर की बातों को निम्नलिखित लोकगीतों में कुछ दूसरे ही ढंग से

---

१ राम इकबाल सिंह 'राकेश' : मैथिली लोकगीत, पृष्ठ १८७

कहा गया है। आन्ध्र माता अपनी बेटी को ससुराल भेजते समय यह उपदेश देती है—

तेलुगु

एव्वरिमाडिना एदुरा डकम्मा
नानोटि चेसिना मंकु पोरेल्ला
एरुगनि अंति लो चेयबोय कम्मा
अरटाकु वंटिदि आडजम्मंबु !

अर्थात् ससुराल में कोई कुछ कहे तो हे बेटी ! तू उसका प्रतिवाद न करना। अनजाने तू जो यहाँ हठ किया करती थी, वैसी हठ ससुराल में मत करना। नारी का जन्म तो केले के पत्ते जैसा है।

मैथिली

बेटी को ससुराल भेजते समय मिथिला की माँ उसे सँभल-सँभल कर चलने का उपदेश दे रही है—

धिया हे रहब सबहक प्रिय जाय !
एतय छलहुँ सभके अति प्रिय भेलि,
नेनपन देखि जुड़ाय !
ओतय रहब सबके अनुचरि भेलि,
भेटति ओतय नहि माय !

तात्पर्य यह कि हे बेटी ! ससुराल में जाकर सबकी प्रिय बनकर रहना। तू तो यहाँ भी सभी की प्रिय बनी हुई थी और तेरे भोलेपन को देखकर हृदय शीतल हो उठता था। ससुराल में तू सभी की अनुचर होकर रहना वहाँ तुझे माँ नहीं मिलेगी। इस उपदेश में माँ की व्यथा भरी हुई है और बेटी को ससुराल के वातावरण के अनुकूल बनाने की शिक्षा दी गयी है।

(ग) बेटी के प्रति ममता

बेटी जब पहले-पहल पति के घर जाने लगती है तब उसे माता-पिता बिदा करते समय बेटी अपनी प्रिय वस्तुओं की ओर ध्यान खींचकर विलख विलख कर रोने लगते हैं। यह दृश्य बड़ा ही कारुणिक और मार्मिक हो उठता है। बेटी के प्रति ममता व्यक्त करने वाले कुछ विभिन्न लोकगीत निम्न प्रकार हैं—

कालिदास ने शकुन्तला की बिदा के अवसर पर कण्व मुनि के मुँह से निम्न प्रकार की मानवीय भावनाओं को कहलाया है—

संस्कृत

भोः भोः संनिहित देवतास्तपोवन तरवः ।
पातुं न प्रथमं व्यवस्थति जलं पुष्पास्पीतेषु या ।
ना दत्ते प्रिय नन्डा नऽपि भवतां स्नेहेन या पल्लम् ।
आद्ये वः कुरुम प्रसूति समये यस्या भवत्युत्सवः
से मं याति शुकन्तला पति गृहं सवैर्रनुज्ञायताम् ।

—अभिज्ञानशाकुंतलम्, चतुर्थांक, पृ० १७४

अर्थात् वन देवताओं से भरे हुए हे तपोवन वृक्षो ! जो शकुन्तला तुम्हें पिलाये बिना स्वयं जल नहीं पीती थी । जो आभूषण पहनने का प्रेम होने पर भी तुम्हारे स्नेह के कारण तुम्हारे पत्तों को हाथ नहीं लगाती थी, जो तुम्हारी नयी कलियों के निकल आने पर उत्सव मनाती थी, वही शकुन्तला आज अपने पति के घर जा रही है । तुम अब अपनी शकुन्तला को प्रेम पूर्वक बिदा दो ।

कण्व शकुन्तला से व्यथा भरे स्वर में कहते हैं—

यस्व त्वया व्रण विरोपणभिगुदीनां तैलं न्याषिच्यतमुखे कुशसूचि विद्धै-
श्यामाकमुष्ठि परिवर्धित को जहाति, सोऽयं न पुत्र कृतकः परवांभृगस्ते ।

—अभिज्ञानशाकुन्तलम्, चतुर्थांक, पृ० १७६

कण्व शकुन्तला से कहते हैं—वत्से ! कुश के काँटे से छिले हुए मुहँ को अच्छा करने के लिए तू हिरन पर हिंगोट तेल लगाया करती थी, वही तेरे हाथ के दिये हुए मुट्ठी भर सावें के दानों से पला हुआ तेरे पुत्र के समान प्यारा हिरण तेरा मार्ग रोके खड़ा है ।

राजस्थानी

बेटी की बिदाई के समय राजस्थान की माँ प्रकृति से उसके प्रति सहानुभूति की माँग करती है—

बालए बाल राणी मदरी मदरी चाल,
हाँ ये वैरण धीमी धीमी चाल,
चढ़ती बाई की ए चूनड़ी सरकी जाय,
बढ़ते जवाई का कपड़ा रवै हमरे !

अर्थात् हे पवन, पवन रानी ! मंद-मंद चलो । देखती हो नहीं, मेरी बिदा होती बिटिया की चुनरी उड़ी जा रही है और जमाई के कपड़े धूल से भर रहे हैं ।

मैथिली

मैथिली की समदाउन में बेटी की बिदाई के समय का करुण भाव निम्न प्रकार है। इसमें यह भाव दर्शाया गया है कि जो बेटी (चन्द्रादाइ) अपने नैहर में बाँस की पंक्तियाँ रोपती थी और उसमें पानी डाला करती थी आज वह सुसराल जा रही है। अब उन बाँसों में कौन पानी देगी ? मिथिला के पिता के ये भाव कण्व मुनि के उपर्युक्त भावों से मिलते-जुलते हैं।

बाँस जे रोपल पाँती पाँती, दौना रोपल बिट बाँस !
जखन चन्द्रा दाइ सासुर जइती, दौना में के देत पाइन !

इतना ही नहीं बेटी की बिदा के समय उसके सहचर भी सहानुभूति प्रगट करते हैं और रो उठते हैं। शकुन्तला अपने हिरन को संबोधित कर विकल व्यथा का यों चित्रण करती है—

प्राकृत

वच्छ किं सहवास परिच्चाइणि मं अपुसरसि
अचिरप्प सूदाए जणणीए विणा वड्ढिदो एव्व !

दाणि पिमए विरहिदं तुमं तादो चिन्ताइस्सदि। णिवत्तेहि दाव। अर्थात् वत्स, मुक्त जैसी साथी को छोड़ कर जाने वाली शकुन्तला के पीछे पीछे तू कहाँ चला जा रहा है ? तेरी माँ जब तुझे जन्म देकर मर गयी थी, उस समय मैंने तुझे पाल-पोस कर बड़ा किया था। अब मेरे बाद, मेरे पिता जी तेरी देख भाल करेंगे। जा वापिस लौट जा।

—अभिज्ञानशाकुन्तलम्, चतुर्थांक, पृष्ठ १८०

मैथिली

मैथिली की समदाउन में सीता की बिदाई के समय का मार्मिक दृश्य इस प्रकार खींचा गया है—

हाथी जे रोबै, रामा रोबै हथिसरबा,
घोड़ा जे रोबै, घोड़मरवा, हे सखिया।[1]

शकुन्तला का हिरन उसका पीछा नहीं छोड़ता है और उसे समझा-बुझा कर कण्व मुनि के पास भेज कर वह पति के घर की राह पकड़ती है। लेकिन

---

[1] राम इकबाल सिंह 'राकेश' : मैथिली लोकगीत, पृष्ठ १९१

यहाँ सीता जब जनकपुर को छोड़ कर ससुराल जा रही है तो उसकी बिदाई की व्यथा में केवल माता-पिता, सखी-सहेलियाँ, जनकपुर के आबालवृद्ध ही नहीं रोते हैं बल्कि हाथी अपने हथिसार में रो रहे हैं और घोड़े अस्तबल में रो रहे हैं। लोकगीतकार ने मानवीय भावनाओं को अन्य प्राणियों में निरूपित कर जो सहानुभूति और संवेदना उनके द्वारा उत्पन्न करायी हैं वे उसकी सूझ की ही परिचायक हैं।

घ. विरह-व्यथा

बुन्देलखण्डी

प्रीतम प्रीत लगाइ के बसन दूर नइ जाव !
बसौ हमारी नागरी, सो दरसन दै दै जाव !

अर्थात् हे प्रियतम ! प्रीति लगा कर दूर मत जाओ। इसी नगरी में रहो और दर्शन देते रहो।

पँजाबी

मैं खड़ी आँ बनेरे ते,
बुत मेरा एथे बसदा चित माहिया दे डेरे !

"मै मुँडेरे पर खड़ी रहती हूँ। शरीर तो मेरा यहाँ है, परन्तु मन माहिया (प्रेमी) के डेरे में बसता है।"

भोजपुरी

भोजपुरी की एक विरहिणी इस प्रकार वियोग-व्यथा को व्यक्त करती है—

भारी भइले राम अँखिया !
अमुवाँ मोजरि गइले,
महुवा टपके निरमोहिया !
कत-दिन बटिया जोहवे रे लोभिया !
भारी भइले अँखिया ![1]

मैथिली

इसी प्रकार की भावाभिव्यंजना मैथिली लोकगीतों में भी पायी जाती है—

---

१ रामनरेश त्रिपाठी : कविता कौमुदी, पृष्ठ ३१७

आम मजरि मह तूअल, तैओ ने पहु मोरा घूरल !
दीप जरिय बाती जरल, तैओ ने पहु मोरा आयल ![1]

एक विरहिणी कहती है कि जब वह सेज पर सोयी तो उसे नींद नहीं आयी। वह चौंक चौंक कर उठ पड़ी और उसके हृदय में विरह-व्यथा के शूल चुभने लगे—

सूतल रहलउँमें सेजिया त नीदियों ने आबय हे !
सखि हे ! चमकि चमकि उठय गात,
हिया मोरा शूल चुभय हे !

(ङ) आदर्श दाम्पत्य जीवन

पारिवारिक जीवन का आदर्श निम्नलिखित राजस्थानी लोकगीत में सुन्दर रूप में दीख पड़ता है। नवबधू के स्वाभाविक प्रेम भाव ने सभी आभूषणों को तुच्छ कर दिया है। राजस्थानी नवबधू अपनी सास से यह कह कर चुप कर देती है—

म्हांरा ससुरो जी गढ़रा राजवी,
सासू जी म्हांरा रतन भंडार !
म्हांरा जेठ जी बाजूबंद बाँकड़ा,
जेठाणी जी म्हांरी बाजूबंद रीलूंब ![2]

भाव-साम्य का रूप इसी प्रकार मैथिली में भी झलक उठा है—

माँग के टीका प्रभु तोहे छहु
देवरा शंखा चुड़ि हे !
चन्द्रहार सास दुलरइतिन,
बाजुबंद देवरानी हे ![3]

"हे प्रियतम ! तुम मेरी माँग के सिन्दूर हो, सौभाग्य हो। देवर ही मेरे लिए शंख की चूड़ी है। सास चन्द्रहार के रूप में है। देवरानी बाजूबंद की शोभा बढ़ाती है।

राजस्थानी और मैथिली के (लग्न-गीत) ये दोनों लोकगीत उच्चतम भावों से

---

१ रामइकबाल सिंह 'राकेश' : मैथिली लोकगीत, पृष्ठ १४

२ नारायण सिंह भाटी : राजस्थानी लोकगीत (परम्परा सं० २०१३) पृष्ठ १७८

३ राम इकबाल सिंह 'राकेश' : मैथिली लोकगीत, पृष्ठ १४६

ढाक का एक छोटा-सा, घने पत्ते वाला पेड़ है, जो खूब लहलहा रहा है। उसके नीचे हरिनी खड़ी है। उसका मन बहुत बेचैन है। चरते-चरते हरिन ने हरिनी से पूछा—हे हरिनी! तू उदास क्यों है? क्या तेरा चरागाह सूख गया है? या तेरा मन पानी की कमी से मुरझा गया है? हरिनी ने कहा—हे प्रियतम! न मेरा चरागाह ही सूखा है और न पानी की कमी है। बात यह है कि आज राजा (दशरथ) के पुत्र का छठी है। आज तुम शिकार में मारे जाओगे। रानी कौशल्या मचिये पर बैठी हैं। हरिनी ने उनसे विनती की—हे रानी! हरिन का मांस तो आपकी रसोई में सीझ रहा है, हरिन की खाल आप मुझे दिलवा दीजिये। मैं खाल को पेड़ से टाँग दूँगी। बार-बार मैं उसे देखूँगी और मन को समझाऊँगी, मानो, हरिन जीता ही है। कौशल्या ने कहा—हरिनी! तुम घर लौट जाओ। खाल नहीं मिलेगी। इस खाल की तो खँजड़ी बनेगी और मेरे राम उसे बजाएँगे।

जब-जब खँजड़ी बजती थी, तब-तब हरिनी उसके शब्द को कान लगाकर सुनती और ढाक के पेड़ के नीचे खड़ी होकर अपने हरिन को बिसूरा करती थी।

इस गीत में सतीत्व और आदर्श दाम्पत्य प्रेम की पराकाष्ठा है। पातिव्रत धर्म का इतना मार्मिक वर्णन कहीं नहीं मिलता। साथ ही दुःखिनी हरिनी की दारुण दशा को देखकर पत्थर का हृदय भी पसीज उठता है। इसी प्रकार अपने सतीत्व की रक्षा के लिए भारतीय ललनाओं ने न जाने, कितनी यातनाएँ सहन की हैं!

(३) मृत्यु-गीत

जीवन का अन्तिम संस्कार मृत्यु-संस्कार है। यह शोक का दृश्य उपस्थित करता है। विभिन्न प्रान्तों में जो मृत्यु सम्बन्धी लोकगीत प्रचलित हैं, उनका उल्लेख कर मैथिली के मृत्यु-गीत के भावों की तुलना निम्न प्राकर की जा रही है—

ब्रजभाषा

लाला धरम के कारन जौवए
मरन के काजे हरे हरे बाँस
हरि रे किसन कैसे तिरयऔ![1]

---

1 डॉ० सत्येन्द्र : ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन, पृष्ठ २३२

खड़ी बोली

हाय हाय मेरा खेबैया,
क्या होनी क्या होइया !
हाय हाय मेरा सिरताज !
नदी आयी पहाड़ की,
चढ़ गयी गगन गंभीर ![1]

बुन्देल खण्डी

तिरिया जनम जिन दइयी मोरे रामा !
रामा मोरी को जो—
लगाये नैया पार !
चुरियां अमर री होन न पाई ! रूठे भगवान !

भोजपुरी

के मोरा नइया के पार लगइ हे ए रामा !
अब कइसे दिनवा काटवि राम !
आतना आरामवा हमरा के दिहले,
अब कवन दुरदसवा होई ए राम ![2]

यदि विदेश में जाकर पति मर गया हो तो उसे वहाँ न जाने देने की चर्चा भी की जाती है—

हम नाही जनली विदेसवा में मरिहें,
नाहीं न जाए ना दिहितो ए रामा !
अब के हमार दिनवा पार लगाई ए रामा !
कवन घाटवा हम लागवि ए रामा ![3]

यूरोपीय देशों में भी मृत्युस्गीत गाने की प्रथा है। अपनी प्यारी पुत्री की मृत्यु पर इटली की किसी किसान माता के हृदय से करुणा की धारा फूट पड़ी है—

---

१ सीतादेवी : धूलधूसरित मणियाँ, पृष्ठ ३१६

२ डा० कृष्णदेव उपाध्याय : लोक-साहित्य की भूमिका, १६५७, पृष्ठ ५६

३ वही, पृष्ठ ६०

Now they have buried thee, my little one
Who will make thy little bed ?
Black Death will make it for me
For a very long night.
Who will arrange thy pillows
So, thow mayst sleep softly ?
Black Death will arrange them for me
With hard stones.
Who will awake thee, my daughter
When day is up ?
Down here it is always sleep,
Always dark night.
This my daughter was fair
When I went (with her) to high mass,
The Columns shone
The way grow bright.[1]

सी. आई, गोवर ने नीलगिरि की पहाड़ियों में निवास करने वाली बड़गा जाति के मृत्यु-गीतों के बारे में लिखा है कि रोनेवालों के बीच में एक भैंस का बच्चा लाया जाता है और वे गीत गा-गाकर उस बच्चे को पकड़ते हैं और बोलते हैं कि 'यह पाप है !' जिस घर में यह दुर्घटना होती है वह भैंस के बच्चे को हाथ से छूता है और उनका विश्वास है कि प्रेतात्मा का सारा दोष संक्रमित हो जाता है और प्रेत के भिन्न-भिन्न दोषों को मृत्यु के गीतों से बताया जाता है और अन्त में कहता है[2]—

Oh ! let us never doubt,
That all his sins are gone
That Bassava forgives,

मैथिली

मृत व्यक्ति की प्रिय वस्तुओं का नाम ले लेकर एक विधवा विलाप कर रही है—

---

1 Martirengo C. E. : Essays in the study of Folksongs, 1880 Page, 289

2 Gover C. E. : Folksongs of Southern India, 1872 page, 125

चारि चौकठि मोरा बँधलऊँ हबेलिया,
से हो मोरा भोगियो ने भेल !
स्वामी जी सँ अरजी मगइ छी गोसइयाँ,
स्वामी जी सँ भोगियो ने भेल !

२—धार्मिक संस्कार सम्बन्धी भारतीय लोकगीत और मैथिली लोकगीतों के विशेष तत्त्व ।

(१) देवी-देवताओं की पूजा

देवी-देवताओं की पूजा, जादूटोना[1] (टोना आदिम धर्म का प्रधान मूलभाव है ।)तन्त्र-मन्त्र और त्योहारों का विशेष स्थान धार्मिक संस्कार सम्बन्धी लोकगीतों में पाया जाता है ।

ब्रजभाषा

ब्रजभाषा में देवी- देवताओं सम्बन्धी अनेकों लोकगीत प्रचलित हैं । उनमें से जालपा का गीत इस प्रकार है ।

सोने कौ मन्दिर मैया कौ, ए दुख हरनी मैया,
चन्दन लागे चारौ खम्भ ॥ दुख० ॥
ऊँचे पै मन्दिर मैया को, दुख हरनी मैया,
नीचे बहें श्री गँग ॥ दुख० ॥[2]

मैथिली

नीलरंग घोड़ा जलपा, पाट के लगाम,
ताहि चढ़ल जपला, तीनू भाइ,
हँसइति पाँड़े रहला लजाइ !

उपर्युक्त ब्रजभाषा और मैथिली के जालपा के गीतों में भाव-साम्य दीख पड़ता है । इनमें पारिवारिक रहन-सहन, अन्धविश्वास के भाव अधिक पाये जाते हैं ।

(२) त्योहार

त्योहारों का सम्बन्ध देवार्चन, ऋतु-परिवर्तन, प्रकृतिक-पूजा, वीर-पूजा और कृषि-कर्म से होता है और लोकगीत भी उनके सम्बन्ध में ही रचे जाते

---

१ सर हर्बर्ट रिजले दी : पीपुल आफ इंडिया, पृष्ठ २३१

२ डा० सत्येन्द्र : ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन, पृष्ठ २५०

हैं। उनमें रूढ़ि और अन्ध विश्वास के कारण सामाजिक, धार्मिक और लौकिक भावों का उदय होता है। त्योहारों में आर्थिक समस्या भी छिपी रहती है। अधिकांश त्योहार स्त्री-पुरुष के लिए समान हैं और कुछ त्योहार केवल स्त्रियों के लिए ही हैं। इन त्योहारों में वे अपने हृदय के भावोल्लास को व्यक्त करती हैं।

किसानों को आपस में मिलना-जुलना और बैठना आवश्यक है और इस के लिए कोई अवसर की अपेक्षा है और यह मिलन-अवसर त्योहार ही प्रदान करता है जिससे किसान आपस में एक दूसरे से हिलते-मिलते हैं और अपने हृदय के भावोद्गार प्रकट करते हैं। धार्मिक उत्सवों पर गाये जाने वाले गीतों में विभिन्न प्रकार की मनोकामनाओं की पूर्ति के लिए देवी-देवताओं से विनती की जाती है।

आदिम मानव चेचक की बीमारी को देवी का प्रकोप मानता था। उसका विश्वास था कि देवी की प्रार्थना करने से चेचक को शान्त किया जा सकता है। चेचक की इस देवी को माता माना गया है और इसे त्योहार के रूप में सामाजिक मान्यता दी गयी है।

माताएँ शीतला देवी के त्योहार में अपने बच्चे को नेम-निष्ठा से रखती हैं और शीतला माता से प्रार्थना करती हैं कि चेचक अच्छी तरह निकल जाय और बच्चे को कोई कष्ट न होने पावे। इस सम्बन्ध में तुलनात्मक रूप से दो गीत प्रस्तुत किये जाते हैं जो द्रष्टव्य हैं।

राजस्थानी

जद म्हाँरी माता तूरण लागी,
गाजर को सो बीज, बला ल्यूँ सेडल माता ए !
जद म्हाँरी माता भरणे लागी,
मक्के को सो बीज, बला ल्यूँ सेडल माता ए ![1]

मैथिली

शीतला माता की उदारता की प्रशंसा कर चेचक को शमन करने के लिए मैथिली में एक गीत इस प्रकार है—

झुमुर-झुमुर मैया बोले, फुल गेनमा सोभइ केसिया हे !
कहाँ माइ के आसन-बासन, कहाँ निज धाम हे !
कोने नगरिया माइ हे, गुनमा कैल प्रकास हे !

१. नारायण सिंह भाटी : लोकगीत (परम्परा) सं० २०१३, पृष्ठ १३२

पंजाब में जिस प्रकार लोहड़ी त्योहार होता है मिथिला में भी उसी प्रकार तिला-संक्रान्ति का त्योहार होता है और वहाँ भी तिल की लकड़ी जलाने की प्रथा है और तिल-गुड़ खाया जाता है और तरह-तरह की मिठाइयाँ बनायी जाती हैं। यह त्योहार माघ महीने में होता है और विशेषकर खिचड़ी खाने का इसमें महत्त्व है।

३—पेशा सम्बन्धी भारतीय लोकगीत और मैथिली लोकगीतों के विशेष तत्त्व।

लोकजीवन को मधुर बनाने में श्रम का महत्त्व अधिक है। श्रम का ही दूसरा नाम जीवन है। प्रकृति के पश्चात् श्रम ही मानव को मानव बनाता है। पशु प्रकृति पर आश्रित हैं और मनुष्य अपने श्रम पर। मनुष्य केवल शारीरिक और मानसिक शक्तियों का ही उपयोग नहीं करता है, बल्कि उनके प्रसाधन जो यन्त्र हैं उनका भी प्रयोग करता है। श्रम के द्वारा ही मनुष्य ज्ञान-विज्ञान, संस्कृति एवं सभ्यता का विकास कर सका है। श्रम की लय-ताल-गति में लोकगीत मानो अनायास ही प्रस्फुटित हो उठते हैं। लोकगीत श्रम के रस हैं और श्रम उसकी विषय-वस्तु है।

(१) चाँचर

धान रोपने और काटने के समय जो गीत गाया जाता है उसे चाँचर कहते हैं और इस प्रकार बोने और काटने की प्रक्रिया सम्बन्धी अनेकों गीत रचे जाते हैं। उनमें नारी का उत्साह, उल्लास अधिक पाया जाता है। उदाहरणार्थ—

पँजाबी

मैं बीबाँ वे गाजराँ,
तूँ पाणी देंदा जाँईं।

'मैं गाजरें बो देती हूँ, तू खेत में पानी देते रहना।

मैं तेरी राझना, तू है मेरा साँईं,

'अरे राँझन, मैं तेरी ही तो हूँ, तुम मेरे सिर के मालिक हो।

ऊपर की पंक्तियों में नारी के भावुक हृदय का परिचय भली-भाँति मिल जाता है और श्रम में स्वाभिमान की कितनी शक्ति है, यह भी ज्ञात होती है।

मैथिली

नारी और पुरुष के प्रश्नोत्तर के रूप में मैथिली में चाँचर के गीत अनेकों रचे गये हैं, उनमें एक दृष्टव्य है—

कोन मासे हरिअर पातर तिरिया,
कोन मासे गौना कैने जाइ !
अगहन मासे हरिअर पातर तिरिया,
फागुन मासे गौना कैने जाइ !

बुन्देलखण्डी

जमींदारी प्रथा का जोर जुलुम एक बुन्देली ग्रामीण स्त्री के मुख से इस प्रकार निकल पड़ा है—

गेहूँ हते सो हो गये, भुस ले गयी अंदवार !
टोटे में टलवा गये, बाढ़ी में खेतबार !
जरीबाने में लिखलों, दोई जोबना !

अर्थात् गेहूँ जो था वह खतम हो गया। भूसे को आँधी झक्कड़ ले गयी, घाटे में बैल बिक गये। बनिये को अनाज लौटाने में मेरी हँसुली चली गयी, जुर्माने में मेरे दोनों यौवन लिख कर ले जाओ। इसमें दबी, पिसी जनता की यह करुण पुकार भरी ध्वनि है।

इसी प्रकार के भावों से मिलता-जुलता मैथिली में भी यह गीत है—

मैथिली

राजा नगर सँ त देलन्हिं निकाल,
रोजी पूँजी छीन लेलन्हि घर धन माल !

अभाव से पीड़ित होकर प्रेम नहीं किया जा सकता। भूख जीवन की सत्यता है भूख से मन विकल होकर किसी से प्रेम नहीं कर सकता। अतः इन गीतों से मानव-जीवन की यथार्थता पर प्रकाश पड़ता है।

(२) जाँत के गीत

श्रम के समय स्त्रियाँ अपनी करुण कथाएँ भी कहती हैं। उनका रूप जाँत पीसते समय विशेष रूप से दीख पड़ता है—

भोजपुरी

सेरभर गेहुँवाँ रे बाँस के चँगेरिया,
अरे, पीसन चलेलीं जँतसरिया, हो राम !

जाँत न चले राम, किलवा न डोलै,
अरे, जुववा धइले सखी रोवली, हो राम ![1]

मैथिली

तोहरो जे चानो बहिनो ! बिरह के मातलि,
चेरी सँगे गहुमा पीसन गेली रे, दैया !
जौं मोरी चानो बहिनो गहुमा पीसन गेली,
अम्मा सिखौनी लगनी गैतथि, रे दैया।
तोहरो जे चानो बहिनो, बिरह क मातलि,
चेरी सँग पनियाँ ले, गेली, रे दैया !

४. ऋतु सम्बन्धी भारतीय लोकगीत और मैथिली लोकगीतों के विशेष तत्त्व।

प्रकृति से मानव का चिरसम्बन्ध युगयुगों से बना हुआ चला आ रहा है। प्रकृति से उसे नाना प्रकार की चेतना और प्रेरणा मिलती रहती हैं।

राजस्थानी और मैथिली में वर्षा सम्बन्धी गीत समानता रखते हैं और उनमें जिस प्रकार की कल्पना की गयी है उसी प्रकार की कल्पना ऋग्वेद में भी की गयी है—

प्रवाता वान्ति पतयन्ति विद्युत उदोषधीर्जिहते पिन्वते स्वः
इरा विश्वस्मै भुवनाय जायते यत् पर्यन्यः पृथिवींरतेसावति।
यस्य व्रते पृथिवी तनं भीति यस्य प्रतो शफवज्जमुरीति ;
यस्य व्रत औषधीर्विश्वरूपाः सनः पर्यन्यः महिशर्मयच्छ।

—ऋग्वेद मं० ५ सू० ८३ मन्त्र ४–५

राजस्थानी

नित बरसो मेहा बागड़ में ! नित बरसो !
मोठ-बाजरो बागड़ निपजै,
गेहूड़ा निपजै खादर में !

मैथिली

जेठ के महीने में सूखा पड़ने पर मिथिला में यह गीत गाया जाता है—

हाली हुलू बरसू इन्दर देवता, पानी बिनु पड़इछइ अकाले, हो राम !
चऔर सूखल, चाँचर सूखल, सूखि गेल भाइ के जिराते, हो राम !

१　रामकिशोरी श्रीवास्तव : हिन्दी-लोकगीत, पृष्ठ २२

ऋतु सम्बन्धी गीतों में फाग और बारहमासा के गीतों का अधिक प्रचलन है। अतः उनका उल्लेख निम्न प्रकार किया जा रहा है—

(१) फाग

वसन्त ऋतु मादकता से भरी रहती है और फाग में मस्ती के गीत गाये जाते हैं जिनमें श्रृंगार रस की प्रधानता होती है—

खड़ी बोली

पूजन चली गोरी भवानी जनक सुकुमारी,
भाँति-भाँति कर पाति लगि है, रुचिर फुली फुलवारी,
कोकिल प्रभु सुधारस बोलत, तहाँ घूमि रहै बनवारी![1]

मैथिली

ब्रज के बसइया कन्हैया गोआला,
रंग भरि मारय पिचकारी
एइ पार मोहन लहँगा लुटै सखि!
ओइ पार लूटथि सारी![2]

(२) बारहमासा

बारहमासा के गीतों में प्रत्येक महीने का वर्णन होता है। कहीं-कहीं असाढ़ से और कहीं-कहीं चैत्र से मास का आरम्भ होता है और कहीं-कहीं अवसर के अनुसार भी ऋतु-वर्णन के भाव प्रायः सर्वप्रचलित और सर्वानुभूत होते हैं—

मालवी

(गर्बा की बारहमासी का अंश)
सखि लागो वैसाख मास, उगालो आयो रे!
घर-घर पंखा डोलाय, प्रभु मन्दर सुनो रे!
सखि लागो जेठा मास, प्रभु घर आयो रे!
आयो आयो जवानी रो, जोस कसेना टूटे रे![3]

---

१ रामकिशोरी श्रीवास्तव : हिन्दी-लोकगीत, पृष्ठ १२६

२ रामइकबाल सिंह 'राकेश' : मैथिली लोकगीत, पृष्ठ २६८

३ डा० श्याम परमार : भारतीय लोकसाहित्य, पृष्ठ ११३

मैथिली

आयल मास बैसाख हे सखि !
उखम सहल नहिं जाय यो !
आरे, आजुक रैनि नहिं अओताह,
सखि, प्रातकाल नहिं पओताह,
जेठ हे सखि, अधिक ऊखम,
पियबिन आब नहिं जीव यो !
आनि यम धरि हृदय लगाएब,
विषहिं घोरि हम पीव यो ![1]

उपर्युक्त विभिन्न प्रान्तों के गीतांशों से यह स्पष्ट हो जाता है कि लोकगीतों में भाव-साम्य अधिक होता है। सम्भव है, एक ही गीत कहीं किसी के हृदय से फूट पड़ा हो और लोकप्रियता के कारण अन्य देशों और प्रदेशों की भाषाओं में स्थान पाया गया हो। लोकगीतों में भारत के अन्तर्मन की सूक्ष्म सूझ और शक्ति का दर्शन भली भाँति होता है। लोकगीतों का उनके साथ गहरा भाव-साम्य दीख पड़ता है। डा० धीरेन्द्र वर्मा की स्थापना है कि 'लोकसाहित्य की परम्परा कदाचित उतनी ही पुरानी है जितनी पुरानी मनुष्य जाति। अब तो यह माना जाता है कि भाषा का उदय ही संगीत्मक था। बाद को धीरे-धीरे गद्य-भाषा और संगीत ये तत्व दो पृथक महत्वपूर्ण सामाजिक संस्थाओं के रूप में विकसित हुए।'[2] मैथिली लोकगीतों में धर्म, आचार, नीति-नियम आदि का उल्लेख मिलता है। उनमें सर्वभूत हिताय और सर्वजन सुखाय की भावनाएँ अभिव्यक्ति की गयी हैं। उनमें मिथिला की संस्कृति का सुन्दरतम चित्रण किया गया है। हमारे गाँव में कुआँ खोदवाने, तालाब बनवाने आदि की प्रथा सदा से रही है। ये सारे काम पुण्य के लिए सारे गाँव वालों के उपयोग के लिए होते थे। इनका मालिक कोई एक व्यक्ति नहीं होता था। इसी के आधार पर एक लोकगीत है—[3]

कुँअवा खोदाए कवन फल, हे मोरे साहब !
झोंकवन भरैं पनिहारिन, तबै फल होइ हैं !

---

१ रामइकबालसिंह 'राकेश' मैथिली लोकगीत पृष्ठ ४६०

२ डा० कृष्ण देव उपाध्याय : लोक साहित्य की भूमिका, पृष्ठ ७

३ श्रीकृष्णदास : लोकगीतों की सामाजिक व्याख्या पृष्ठ ७१

बगिया लगाये कवन फल, हे मोरे साहब !
राहे बाट अमवा जे खैहैं, तबै फल होइ हैं !
पोखरा खोदये कवन फल, हे मोरे साहब !
गौआ पियैं जूड़ पानी तबै फल होइ हैं !
तिरिया के जनमे कवन फल, हे मोरे साहब !
पुतवा जनम जब लैहैं, तबै फल होइ हैं !
पुतवा के जनमे कवन फल, हे मोरे साहब !
दुनियाँ आनन्द जब होई, तबै फल होइ हैं !

अर्थात् कुआँ खोदने का फल यह है कि पानी भरने वाली पनिहारिनों की भीड़ लगे। बाग लगवाने का फल यह है कि पथिक मन चाहा आम तोड़ कर खायँ। पोखरा खुदवाने की सार्थकता इसमें है कि गायें आकर ठंडा पानी पी सकें। स्त्री के जन्म को सुफल तब माना जाएगा जब उसकी गोद भरे और आँचल सफल हो। और, बेटे का जन्म भी तभी सार्थक होगा, जब उससे सारे संसार को सुख और आनन्द प्राप्त हो। यही भाव मैथिली लोकगीतों में भी पाये जाते हैं और हमारा ख्याल है कि देश के प्रत्येक प्रदेश के लोकगीतों में इस तरह की भावोक्तियाँ पायी जाती हैं, उनकी कोई सीमा नहीं। मिथिला का का जन-जीवन अपनी प्राचीनतम संस्कृति, सभ्यता, आचार को आज भी अक्षुण्ण बनाए हुए है और उसकी निगूढ़ आत्मा लोकगीतों में मुखरित हो उठी हैं। मिथिला के सामाजिक जीवन का कोई भी महत्व पूर्ण अंग ऐसा नहीं है जो लोकगीतों में अभिव्यंजित नहीं हुआ हो। वहाँ समस्त मानव समुदाय इन से अत्यन्त प्रभावित और उपकृत हो रहा है। ऐसा लगता है कि इन लोकगीतों के बिना मिथिला का जीवन ही सूना है। इनके द्वारा उसका अस्तित्व अपने आप में समासीन है और है प्रगति की ओर उन्मुख। लोकगीतों ने उसके गुण-दोष, सुख-दुख आदि सभी प्रवृत्तियों पर स्वाभाविक ढंग से प्रकाश डाला है और यही कारण है कि आज मिथिला के लोकगीत वहाँ के लोक जीवन में प्राण फूँकते हैं।

पाँचवाँ अध्याय

मैथिली लोकगीतों में दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक और सामाजिक भावों का निरूपण

५

मैथिली लोकगीतों में विविध भावों का निरूपण

मानव सर्व प्रथम अपने आपको जानने के पश्चात् प्रकृति को जान सका है। इस 'स्व' और 'पर' की अनुभूति ने उसे दार्शनिक बना दिया है । सच तो यह है कि उसने अपने को जैसा पाया वैसा ही प्रकृति में भी व्यक्त किया है। उसने उसे ही देखा जो उसके ज्ञान में अंकित था।

प्रकृति को दैनिक जीवन के प्रत्यक्ष व्यवहार में मानव बरतता रहा है। आदि काल में स्वाभाविक रूप में प्रकृति से वह काम लेता रहा है और अपनी आत्म-रक्षा की भावना से वह प्रेरित हुआ है और इस प्रकृति को ही शक्ति का प्रतीक मानता रहा है। जब उसने देखा कि अनेकों छोटे-बड़े पेड़-पौधे पृथ्वी माता के गर्भ से उत्पन्न हुए हैं और नाना प्रकार के फूल-फल दे कर वे उसकी भूख मिटाते हैं तो प्रकृति की इन अचरज भरी लीलाओं को देख कर उसके मन में यह विश्वास जम गया कि प्रकृति में प्रजनन की शक्ति सन्निहित है। उसके संवेग ने उसकी इन्द्रियों को उत्तेजित कर क्रियाशील बनाया, उसे प्रभावित किया। प्रकृति के व्यापार के प्रति एक रहस्यमयी दृष्टि प्रदान की और उसके मन में इसके फलस्वरूप प्रकृति के प्रति श्रद्धा-भक्ति के भावों का उदय हो गया । वह सोचने लगा कि प्रकृति उसकी कामनाओं को, आवश्यकताओं को पूरा करने में सदैव प्रस्तुत रहती है और उसके मन की बातों को समझती है। उसका कहा

मानती है। उसने प्रकृति की अर्चना के गीत गाना आरम्भ कर दिया। प्रकृति की नाना लीलाओं का उसने चित्रण किया, रूपक बाँधे। उसके उपकरणों को देखकर कभी तो उसके मन में भय हुआ और कभी विस्मय। उसने प्रकृति के रहस्यों को जानने के लिए अनेकों कल्पनाएँ कीं, अनुमान किये और उसने अपनी कल्पनाओं और अनुमानों के आधार पर दार्शनिक गीतों की रचना प्रारम्भ की। उसने प्रकृति के अन्तराल में विराट रूप का दर्शन किया और बाह्य जगत के परे किसी अज्ञात अनन्त शक्ति के अस्तित्व की कल्पना की।

दर्शन और लोकगीत

दर्शन ऐसे गहन विषय की भी कहीं-कहीं लोकगीतों में इस प्रकार स्वाभाविक ढंग से अभिव्यक्ति की गयी है कि वह सबके लिए ग्राह्य बन गया है। दर्शन में मस्तिष्क पक्ष की प्रधानता रहती है, लेकिन लोकगीतों में हृदय पक्ष की प्रबलता होती है। दार्शनिक जिस सत्य को चिंतन के द्वारा प्राप्त करता है, लोकगीतकार उसे भावना द्वारा मूर्त रूप देता है। वह प्रेम के आधार पर नीरस सत्य को मधुर और सरल बनाने का प्रयत्न करता है।

प्रत्येक लोकगीतकार प्रकृति की सत्ता में विश्वास रखता है और उसका वह पुजारी होता है। इस दृष्टि से वह स्वभावतः रहस्यवादी कहलाता है। दर्शन के मूल में बौद्धिकता रहती है और रहस्यवाद के मूल में प्रेम प्रतिष्ठित होता है।

सत् चित् और आनन्द तीनों ब्रह्म के स्वरूप हैं। लोकगीतकार अपने गीतों में इनमें से केवल आनन्द को लेकर नाना भावों की अभिव्यक्ति करता है। सच तो यह है कि मनुष्य अपने जीवन में सबसे बढ़ कर आनन्द ही को अधिक ढूँढ़ता है और उसी के लिए व्याकुल रहता है। यदि उसे आनन्द मिल जाता है तो फिर उसे और चाहिए ही क्या ? लोकगीतकार अपनी रचनाओं में इसी आनन्द की अभिव्यक्ति स्वाभाविक रूप से करता है। इसीसे उसकी रचनाएँ सभी पसन्द करते हैं और उनका हृदय प्रभावित होता है। उनके सुप्त भाव जाग जाते हैं और वे क्रियाशील बनते हैं। लोकगीतों में जो प्रभाव की शक्ति भरी हुई है उसका आधार आनन्द ही है।

कभी-कभी अपनी आत्मानुभूति के निमित्त लोकगीतकार को कच्छप की भाँति बाह्य जगत से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लेना पड़ता है। सामाजिक बन्धनों के स्तर से उसे भी ऊँचा उठने की प्रेरणा मिलती है और उसकी कल्पना कम तीव्र नहीं होती। उसकी सूझ एक दार्शनिक-सूझ से अधिक

व्यावहारिकता लिए हुए होती है। इसीसे जनसाधारण उसकी सूझ को पकड़ पाते हैं और अपनी आँखें खोल पाते हैं। वे काव्य का रसास्वादन इसलिए नहीं कर पाते हैं कि उसकी भाषा जटिल होती है और कल्पना और सूझ उसकी अधिक सूक्ष्म होती हैं जिनसे उलझन उत्पन्न हो जाती है और उनमें स्पष्टता नहीं रह पाती। इसीलिए लोकगीतों और काव्य के दार्शनिक भावों में भिन्नता आ जाती है।

पिछले अध्याय में विभिन्न प्रादेशिक लोकगीतों के साथ मैथिली के कुछ लोकगीतों का तुलनात्मक और समन्वयात्मक अध्ययन द्वारा यह स्पष्ट किया गया है कि उनमें कितना विषय, भाव और रूप साम्य दृष्टिगोचर होता है। अब इस अध्याय में मैथिली लोकगीतों में जो दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक और सामाजिक भावों के निरूपण हुए हैं उन पर भी थोड़ा प्रकाश डालना आवश्यक प्रतीत होता है। अतः कुछ मैथिली लोकगीतांशों का उद्धरण प्रस्तुत कर ऐसे भावों का स्पष्टीकरण किया जा रहा है :

मैथिली लोकगीतों में दार्शनिक भावों का निरूपण

मिथिला कृषि प्रधान भूमि है। उसमें कृषकों की संख्या अधिक है। श्रमिक भी हैं तो वे खेतों में ही अधिक काम करते हैं। अतः यह स्वाभाविक है कि कृषक प्रकृति पर निर्भर रहते हैं, क्योंकि वर्षा, ग्रीष्म, शीत प्रकृति ही प्रदान करती है। ऐसी दशा में कृषक प्रकृति की सत्ता को मानते हैं। लेकिन मिलों में काम करने वाले मजदूर प्रकृति पर अवलंबित बहुत कम रहते हैं और उनको ऐसी आवश्यकता भी नहीं पड़ती। कृषक प्रकृति पर निर्भर रहने के कारण धार्मिक और दार्शनिक भावों से प्रेरित होते हैं। अतः इस दृष्टि से मैथिली लोक गीतों में कहीं कहीं दार्शनिक भाव स्वाभाविक रूप में अभिव्यक्त हुए हैं और वे सरस तथा अनूठे हैं। साधारण जीवन में ऐसे भावों को निरूपित करना और उस अज्ञात शक्ति की ओर लक्षित कर जीवन को सशक्त और धार्मिक बनाने का जो यह प्रयास है वह वास्तव में सराहने योग्य है। निम्नलिखित झूमर में कोई पतिव्रता नारी अपने पति से अपने सच्चे प्रेम का परिचय इस प्रकार देती है—

बलमुआ नयना में शीशा लगाउ.
जकर्हि हिया परमात्मा बसय,

से कोना रन बन भरमाय !
बलमुआ नयना में शीशा लगाउ [1]

यहाँ पर ज्ञान रूपी शीशे के द्वारा हृदय मंदिर में बसे हुए परमात्मा को देखने के लिए संकेत किया गया है। उस पतिव्रता नारी ने ऐसा कह कर अपने अटल विश्वास और तर्क से यह सिद्ध करने का प्रयास किया है और बताया है कि वह परमात्मा जब अपने अन्तरतममें ही विद्यमान है तो उसे जंगलों में या बाह्य जगत में खोज कोई क्यों करेगा ? इस झूमर में जो इस प्रकार का दार्शनिक भाव निरूपित हुआ है वह सब के मन को मोहित कर सकता है। हिन्दी के सन्त कवि कबीर ने उस परमात्मा के सम्बन्ध में लिखा है—

तेरा साईं तुज्झ में ज्यों पुहुपन में बास,
कस्तूरी का मिरग ज्यों फिरि फिरि ढूढ़ै घास !

और गुरु नानक ने भी ऐसा ही कहा है—

काहे रे बन खोजन जाई।
सर्वनिवासी सदा अलेपा, तोही संग समाई !

रहिमन कवि के शब्दों में—

प्रीतम छवि नैना बसी, पर छवि कहाँ समाय !
रहिमन भरी सराय लखि, आपु पथिक फिरि जाय !

रहस्यवाद सम्बन्धी भाव मैथिली के एक निर्गुण गीत में बड़े ही मार्मिक रूप से व्यक्ति किया गया है। वह निम्न प्रकार है—

फुलवा लौढ़ै रामा, पनिया बरसि गेलइ,
भिजि गेलइ पातरि चीर रे की।
वोहि समय में रामा पिया मोरा आबि गेलइ,
मन नइ रहलइ मोरा थीर रे की !

इस निर्गुण में यह भाव व्यक्त किया गया है कि सुख रूपी फूल को प्राप्त करते समय प्रकृति ने प्रेम की वर्षा करदी जिससे आत्मा रूपी वियोगिनी का चीर रूपी शरीर भीग गया और परमात्मा रूपी प्रियतम को देखकर उसका मन स्थिर नहीं रह सका और वह उसी में एकाकार हो गयी। कबीर के शब्दों में—

लाली मेरे लाल की, जित देखौं तित लाल !
लाली देखन मैं गयी, मैं भी हो गई लाल !

---

१ राम इकबाल सिंह 'राकेश' : मैथिली लोकगीत, पृष्ठ २११

मैथिली के निम्नलिखित 'झूमर' में नश्वर शरीर के सम्बन्ध में ध्यान आकर्षित किया गया है और प्राण को एक तोते की तरह माना गया है। यहाँ माटी शरीर है और उसका सुगना आत्मा है। कदम का पेड़ परमात्मा है। उसी पर वह उड़ उड़ कर बैठता है, क्योंकि उसी से उसे रस-शक्ति मिलती है और उसके बिना उसका कोई अस्तित्व नहीं है। सूर ने भी कहा है—

उड़ि जहाज के पंछी उड़ि जहाज पर आवे !

और अनादि काल से ही आत्मा-परमात्मा का अटूट सम्वन्ध होता चला आ रहा है :

बोलिया सुना क कहाँ गेलैं रे, माटी के सुगनमा ?
उड़ि उड़ि सुगना कदम चढ़ि बइसल,
कदम के सब रस लै लेल हे, माटी के सुगनमा !

इसी प्रकार एक और मैथिली लोकगीत में भी दार्शनिक भावों का संकेत मिलता है—

एसन सूगा नहि पोसिय,
नेह लगाविय,
सुगबा हैत उड़ियाँत, अपन गृह जाएत ![1]

यहाँ भी 'सुगबा' का संकेत आत्मा के प्रति है और वह आत्म जहाँ से आयी है वहाँ ही चली जाएगी। अर्थात् वह परमात्मा का अंश है और वह उसी में मिल जायगी।

जीवात्मा इस संसार की अनित्यता के कारण प्रतिक्षण विकल रहता है और उस परमात्मा से मिलने के लिए उत्कंठित रहता है। जीवात्मा को परमात्मा से बिछुड़ने की वेदना निरन्तर होती ही रहती है। मैथिली के लोकगीतों में वियोग-व्यथा के करुण वर्णन की अधिकता है। इस तिरहुति में जो कि नीचे दी जा रही है, राधा की विकल वेदना का उत्कृष्ट चित्रण किया गया है। राधा एक परिवार में रहती है जहाँ उसके सास, ननद, भैंसुर, ससुर सब कोई हैं और केवल उसका प्रियतम कृष्ण नहीं है। अतः कृष्ण के बिना भादों की काली रात उसके लिए असहनीय हो गयी है। पारिवारिक जीवन में रहते हुए भी उस परमात्मा के प्रति प्रेम-निवेदन और उससे मिलने की आकुलता का सजीव चित्र खींचा गया है।

---

१ भोला झा : मिथिला गीत संग्रह, प्रथम भाग, पृष्ठ ३५

एक हम झाँझरि हरि बिनु हो प्रीतम भेल त्यागी,
सासु ननद घर ससुरहिं हो, भैंसुर एहि ठामे,
एक त गेल मनमोहन हो, उसरन भेल गामे,
सुनितउँ हुनक गमनहिं हो, करितउँ परिचारे,
यादव हमरो दयगेल हो, भादव सन राते,
नन्दलाल कवि गाओल हो, धीरज धरु नारी,
आइ आवत हरि गोकुल हो, कुब्जा गढ़ त्यागी ![1]

ऊपर की तिरहुति में जीव और ब्रह्म के बीच माया की भाँति ही वर्णन जान पड़ता है। राधा जीवात्मा है और कृष्ण ब्रह्म हैं, कुब्जा जो कि राधा की सौत है वह माया के रूप में है। वह इसलिए कि जीव और ब्रह्म के बीच जो माया का व्यवधान है, उसके हट जाने से ही दोनों का साक्षात्कार हो सकता है। इसी से कुब्जा राधा और कृष्ण के मिलन में बाधक है। इस प्रकार का यह दार्शनिक भाव इस तिरहुति में सरल ढंग से व्यक्त किया गया है।

लोकगीतकार भक्त और भगवान को समान धरातल पर लाने का प्रयास करता है। एक पारिवारिक जीवन की झाँकी के चित्रण के साथ ही साथ इस तिरहुति में आत्मा और परमात्मा के सम्बन्ध की ओर भी संकेत कियागया है।

वियोगिनी आत्मा अपने प्रियतम परमात्मा के विरह में यह उपालंभ देती है और उसे निठुर बतलाती है और कहती है कि पुरुष के प्रेम (परमात्मा के प्रेम) का विश्वास नहीं, क्योंकि यहाँ पर आत्मा जब जीव के साथ रहती है, तब उसे भौतिकता के कारण निराशा होती है और माया के कारण अपनी अमरता का भ्रम हो जाता है। इस 'तिरहुति' में वियोग-कथा का उल्लेख करते हुए उस परमात्मा को अविश्वासी कह दिया गया है। उस पर दोषारोपण किया गया है जो कि निश्छल प्रेम का प्रतीक है और यह अप्रत्यक्ष रूप से एक भक्ति भावना है। उपालंभ भी तो उसे ही दिया जाता है जो अपना है और जिसके साथ प्रेम-सम्बन्ध है। क्योंकि विद्यापति के शब्दों में—

'जतहि प्रेम रस ततहि दुरन्त,
पुन कर पलटि विदित गुनमंत ![2]

यह भाव और भी पुष्ट होता है।

---

१ **राम इकबालसिंह 'राकेश' : मैथिली लोकगीत, पृष्ठ २४२**

२ **रामवृक्ष 'बेनीपुरी' : विद्यापति पदावली, पृष्ठ १५७**

विद्यापति ने इस प्रकार साधारण नारी जीवन को आलम्बन के सहारे जो उस अनन्त चिरन्तन के प्रति दार्शनिक भाव व्यक्त किया है वह यों है :

आज हमर बिह बाम हे सखि,
मोहि तेजि पहुँ चलल गाम !
पहुँ क भेल हृदय कठोर हे सखि,
घूरि ने तकय मुख मोर !
जाहि बन सिकियो ने डोल हे सखि !
ताहि बन पिया हँसि बोल !
भनहि विद्यापति मान हे सखि,
पुरुषक नहि विश्वास ![1]

अपने प्रियतम परमात्मा की खोज में दृढ़ता एवं संकल्प लेकर चलने वाली एक नयी बधू जो कि आत्मा के रूप में है, एक 'समदाउन' में कहती है—

फोरबइ में शंखा चूड़ी, फारबइ में चोलिया,
से धरबइ जोगिनिया क वेष आहे सखिया !
दास कबीर एहो गावेल समदाउन,
करबइ में पिया के उदेश आहे सखिया ।[2]

मैथिली में शंखा और वेष का उच्चारण 'संखा' और 'भेख' के रूप में होता है ।

इसी तरह इस पूर्वी लोकगीत में कितनी तन्मयता और दार्शनिकता है—

चल चल री गोरिया, पी के नगरिया, नदिया किनारे मोरा गाँव,
गंगा से जमुना का होइरे मिलनवाँ, नील गगन तरे मोरा छाँव !

भले ही उपर्युक्त समदाउन में स्थूल रूप में एक विरहिणी नववधू की आतुर पुकार सुनाई पड़ती है, किन्तु इस वास्तविक जगत के साथ आध्यात्मिक भावों का निरूपण सजीव हो उठा है । मैथिली लोकगीतों में यदि दार्शनिक भावों का विशद वर्णन करना है तो 'समदाउन' तिरहुति, झूमर इसके लिए विशिष्ट साधन है और निर्गुण भी ।

विरहिणी की विरह-व्यथा ही अपने प्रियतम से मिलन करा सकती है, यही उसका संवल है । इस 'तिरहुति' में विद्यापति ने एक विकल आतुर नवबधू के कोमलतम भावों का चित्रण इस प्रकार किया है—

---

१ राम इकबाल सिंह 'राकेश' : मैथिली लोकगीत, पृष्ठ २५९
२ वही, पृष्ठ १९०

मोहि तेजि पिय गेलाह विदेस
कोने परि खेपव वारि वयस,
नयन सरोवर काजर नीर,
ढरकि खसल पहुँ धनिक शरीर,
सेज भेल परिमल फूल लेल वासे,
कोन देश पिय पड़ल उपासे,
भनहिं 'विद्यापति' सुनु ब्रज नारि !
धइरज धय रहु मिलत मुरारि ! [१]

विरहिरणी कहती है—हे सखी ! मेरे प्रियतम मुझे छोड़कर प्रवासी हो गये। मेरी यह जवानी कैसे कटेगी ? मेरी आँखें सरोवर बन गयी हैं, उनमें मेरा काजल ही आँसू बन गया है और प्रियतम के विरह में ये आँसू (काजल) ढर-ढर गिर रहे हैं। मेरी सेज सौरभ बन गयी है और फूलों में जाकर बास कर चुकी है । परन्तु न जाने, मेरे प्रियतम किस देश में भूखे विहरण कर रहे हैं ? इसी तरह के मिलते-जुलते भाव कुछ अन्य कवियों ने भी दर्शाये हैं :—

निसिदिन बरिसत नैन हमारे !
सदा रहत पावस ऋतु हमपैं, जबतें श्याम सिधारे !
दृग अंजन लागत नहिं कबहूँ, उर कपोल भये कारे !
कंचुकि नहिं सूखत सुनु सजनी, उर बिच बहत पनारे !

—सूरदास : सूर-सागर

कागा सब तन खाइयो, चुन चुन खैयो मास !
दो नयना मत खाइयो, पिय देखन की आस !

—मीरा

कागा नैन निकाल दूँ, पिया पास ले जाय,
पहिले दरस दिखाय कैं, पीछे लीजै खाय !

—भोजपुरी, ग्राम गीत

कागा नैन निकार कैं ले जा पी के द्वार !
पहिले दरस दिखाय के, पीछे लीजै खाय !

—मीरा

मिथिला की विरहिणी की दशा कुछ भिन्न है। वह खिन्न है कि अँगुली में आने वाली अँगूठी कलाई का कंगन बन गयी है—

---

१ राम इकबाल सिंह 'राकेश' : मैथिली लोकगीत, पृष्ठ २३४

जे हो मुँदरि छल आँगुरी कसि-कसि,
से हो भेल हाथ क कंगन !

रहस्यवाद में दाम्पत्य प्रेम की भाँति ही आत्मा और परमात्मा के मिलन का वर्णन किया गया है। लोकगीतों में इस वर्णन की सजीवता और भी अधिक निखर उठने का कारण है साधारण गार्हस्थ्य जीवन का आलम्बन। एक भोली भाली ग्राम बधू के मुँह से जो निम्नलिखित तिरहुति में भावों की अभिव्यक्ति हुई है वे हृदय को हिला देने की शक्ति रखते हैं :—

पहु परदेश गेल, पोखरी खनाय गेल,
रोपि गेल नेमुआँक गाछ !
फरिय फुलाय गेल, अधरस चुबि गेल,
कतेक दिन रखबै जोगाय !
अन्न पानी पैंच लेल, सिंदूर सपन भेल,
पिया भेल डुमरी के फूल !
निसि दिन मदन बढ़त तन दुइ गुन,
हृदय बेथत अब मोर !
किछु दिन धैरज धरु तोहे कामिनि,
'देवनन्दन' पिया आवोता तोर !

ऊपर की 'तिरहुति' में पोखरी' का भाव आँखों के आँसू से सम्बन्धित है और नीबू है प्रेम का बृक्ष। भाव यह है कि प्रेम-वृक्ष रोप कर प्रियतम चला गया और उसे आँसू जल से वियोगिनी ने सींचा और वह अब फूल कर फलने लग गया है। अर्थात्, उसमें यौवन-विकास हो चुका है। उससे रस झड़ता है और कितने दिनों तक उसे यह सुरक्षित रख सकती है। प्रियतम के वियोग में रोते-रोते प्रेम और भी पवित्र हो गया है और प्रगाढ़ बन गया है। वह विरहिणी रोष प्रकट करती हुई कहती है कि उसका प्रियतम तो उससे दूर है, ओझल है और उससे मिलने की उत्कण्ठा उसके मन में बढ़ रही है। लेकिन वह करे तो क्या करे! इस प्रकार प्रियतम के अभाव में ऐसे अनुपम भावों का सरस चित्रण इस 'तिरहुति' में किया गया है। विरह रहस्यवाद का प्रथम सोपान है और प्रियतम से मिलाने का साधन है। जैसा कि 'पथिक' में पं० रामनरेश त्रिपाठी ने लिखा है :—'विरह प्रेम की जाग्रत गति है और सुषुप्ति मिलन है।'

---

१ बाबू रघुवरसिंह बुकसेलर : नवीन तिरहुतगीत-संग्रह, भाग १, पृष्ठ १६

रूप-सौंदर्य के अनुपम वर्णन में विद्यापति ने अपनी अनुभूति एवं प्रतिभा का यों परिचय दिया है :—

'जनम अवधि हम रूप निहारलहुँ, नयन न तिरपित भेला'।

उन्होंने प्रेम की प्रगाढ़ता का चित्रण इस प्रकार किया है :

सखि, कि पूछसि अनुभव मोय !
सेहो पिरीत अनुराग बखानिय, तिल तिल नूतन होय !
जनम अवधि हम रूप निहारल, नयन न तिरपित भेल,
सेहो मधु बोल स्रवनहि सूनल, स्तुति पथ परस न भेल,
कत मधु जामिनी रभस गमाओल, न बूझल कइसन केल !
लाख-लाख जुग हिय मँह राखल, तइयो हिय जुडल न गेल !
कत विदग्ध जन रस अनुमोदइ, अनुभव काहु न पेख !
विद्यापति कह प्रान जुड़ाएत, लाखवौ मिलल न एक !

विद्यापति ने अपने जीवन के अन्तिम सोपान में यह निम्नलिखित गीत लिख कर दार्शनिक भावों को और भी स्पष्ट कर दिया है :—

माधव ! हम परिनाम निरासा !
तों जग तारन दीनदयामय, एते तोहि विश्वासा !
तापत सैकतहि वारि बिन्दु सम, सुतमित रमनि समाजे !
तोहि बिसारि मन ताहि समरपल, अब आ ओत के काजे ?[1]

कवि ने यह निर्देश अपने लिए किया है कि मैं अपने चरम फल मोक्ष के संबंध में निराश हूँ, किन्तु इतना तो मुझे विश्वास अवश्य है कि इस संसार से उद्धार करने वाले तुम हो और दीनदुखी प्राणी पर तुम दया करते हो। उन्होंने लिखा है कि तप्त बालू पर गिरी हुई बून्द जिस प्रकार नश्वर है, उसी प्रकार पुत्र-मित्र-कलत्र भी इस संसार में हैं। केवल तुम ही शाश्वत हो। तुम्हें भूल कर अपने मन को उनमें मैंने समर्पित किया था। अब न जाने, कौन काम आ सकेगा ? इस प्रकार विद्यापति भी आकुल विरह व्यथाएँ परमात्मा के प्रति अभिव्यक्त कर दार्शनिक भावों की ओर ध्यान आकृष्ट करते हैं। जितने भी लोकगीतकार हैं उनके सामने एक कोई स्पष्ट लक्ष्य होता है और वे उसी के आधार पर लोकगीतों की रचना करते हैं। वे साधारण जीवन में ही दार्शनिक भावों की अभिव्यक्ति करने के आदी होते हैं और उनका स्तर जनसाधारण के

---

१ रामवृक्ष 'बेनीपुरी' : विद्यापति पदावली, पृष्ठ ३१४

स्तर से ऊँचा नहीं उठता। उसके साथ उनका हृदय निरंतर सम्बन्धित रहता है। उनकी यही अन्य की अपेक्षा विशेषता है।

मैथिली लोकगीतों में मनोवैज्ञानिक भावों का निरूपण

प्रत्येक लोकगीत का प्रायः कोई न कोई मनोवैज्ञानिक आधार होता है और मैथिली लोकगीत भी इससे वंचित नहीं है। मैथिली लोकगीतों में करुण क्रन्दन, विवशता की अकुलाहट और ग्लानि में गलने के भावों का यत्र-तत्र निरूपण किया गया है। जहाँ इन मनोभावों का चित्रण किया गया है वहाँ इनकी क्षति-पूर्ति के निमित्त आवेगोद्रेक, उत्तेजन और क्रियाशीलता की ओर उन्मुख होने की उत्कण्ठा एवं उत्साह भी कम नहीं हैं। मिथिला के लोकजीवन में तत्कालीन विषम परिस्थितियों से असन्तुष्ट हो जाने के कारण यह भी विशेषता आयी है कि अतीत को गौरव गरिमा के गुण-गान कम नहीं हुए हैं और इस प्रकार की कुण्ठाओं को आध्यात्मिक पुट देने की कला दिखाई गयी है।

जीवन के नाना प्रकार के अभावों की पूर्ति के लिए आदि काल से ही मानव अपना काल्पनिक जगत सर्जन करता आया है और वह जगत वास्तविक जगत की अपेक्षा विस्तृत और व्यापक रहा है। अभाव का भराव यदि न हो पाता तो मानव-जीवन का विकास उत्तरोत्तर नहीं हो सकता था। मानव अपने अभाव की पूर्ति में सदैव प्रयत्नशील रहा है। कोई भी लोकगीत मानव के हृदय को तभी प्रभावित करता है जबकि उसमें मानव के मन की बात निहित रहती है और उसे सुन्दरतम ढंग से व्यक्त की जाती है। प्रत्येक लोकगीत में मानव अपनत्व देखता है और इसीसे उसके प्रति उसे मोह एवं आकर्षण होता है, क्योंकि युग-युगों से वह उसके साथ रहता आया है। प्रत्येक लोक गीत उसके मनोवैज्ञानिक तत्वों का ही प्रतिफल है।

राधा की सूझ

मैथिली की एक 'समदाउन' में वियोगिनी राधा की अनूठी सूझ देखने योग्य है। जब श्री कृष्ण मथुरा जाने लगे तो उन्होंने वृन्दावन के परिवार को परित्याग कर दिया। राधा अपनी सखी से कहती है कि हे सखी! यदि मैं जानती कि कृष्ण मथुरा जाएँगे तो उन्हें रेशम की डोर में बाँध कर रखती फिर उसके मन में संदेह होता है और वह कहती है कि नहीं, रेशम की डोर तो कोमल होती है। उसे तोड़ कर वे भाग ही जाते और वह डोर तो टूट जाती। अतः उन्हें चुँदरी के आँचल से बाँध कर रखती। यहाँ यह

विचारणीय है कि सच्चे प्रेम में विश्वास कभी टूटता नहीं और मिलन की पिपासा बराबर वियोग में उद्दिप्त ही होती रहती है। आँचल में बाँधकर रखने का मनोभाव यही है कि वे दृष्टि-पथ से इस प्रक्रिया के द्वारा कभी ओझल नहीं हो पाते राधा के प्रेम-मन्दिर में वे निरन्तन निवास करते—

जौं में जनितौं पिया माधोपुर जयता,
बाँधितौं में रेशम क डोर, आहे सखिया !
रेशम बँधनमा टूटिए फाटि जएतइ,
बाँधितौं में अँचरा लगाय, आहे सखिया ![1]

साधारण जीवन में तादात्मक सम्बन्ध स्थापित करने की यह कल्पना अत्यन्त ही अनुपम है। अन्त में राधा कहती है—

अँचरा के फारि - फारि कगदा बनइतौं,
लिखितौं में पिया के सन्देश, आहे सखिया !
काते-कुते लिखितौं हुनक कुशलिया,
बिचे में पिया क वियोग, आहे सखिया ![2]

ऊपर की पँक्तियों का थोड़ा सा परिवर्तित रूप एक झूमर में इस प्रकार है—

अउँठि-पउँठि देवर लिखह खेम कुशलवा,
माँझे ठँइयाँ धनी के वियोग !

उपर्युक्त समदाउन में भोली भाली ग्राम बाला राधो की यह मनोवैज्ञानिक सूझ है। वह आँचल को फाड़ कर कोगज बनाना चाहती है और उस पर अपने प्रियतम श्री कृष्ण के पास संदेश लिखकर भेजना चाहती है, लेकिन पत्र के चारों ओर के हाशिये पर तो वह कुशल क्षेम लिखती है और बीच में अपने प्रियतम का 'वियोग' लिखती है। पत्र के मध्य में 'वियोग' शब्द अंकित करने का तात्पर्य उसका यह है कि पहले पहल कृष्ण का ध्यान 'वियोग' शब्द पर ही अटक जाएगा और वे भी प्रेम-विह्वल होकर उससे मिलने के लिए वृन्दावन अवश्य आएँगे। विरहिणी राधा के पास और है ही क्या ? उसके पास तो केवल वियोग का ही संबल है और उसे विश्वास है कि यही वियोग उसके प्रियतम को उसके पास तक खींच

---

१ राम इकबाल सिंह 'राकेश' : मैथिली लोकगीत, १६० पृष्ठ
२ वही, पृष्ठ १६१

लाने का साधन है। इस प्रकार की सूक्ष्म मनोविज्ञान से खाली नहीं है।

जब वियोगिनी राधा की विरह - व्यथा पराकाष्ठा तक पहुँच जाती है तो वह उद्धव से कहती है। इस 'मलार' में राधा के सन्तोष और धैर्य का चित्रण स्वाभाविक रूप से यों किया गया है—

श्याम निकट नइ जाएब, हे ऊधो !
बरखा बादरि बुंद चुअइय,
जमुना जाय नइ नहाएब, हे ऊधो ![1]

मानसिक प्रतिक्रिया के रूप में राधा कहती है—हे ऊधो ! मैं श्याम के निकट नहीं जाऊँगी। मेरी आँखों से पावस कालीन बादल की तरह आँसुओं की झड़ी-झड़ रही है। अब यमुना में पैठकर मैं स्नान क्यों करूँगी ? इन पँक्तियों में यह भाव दिखाया गया है कि राधा मान करने लग गयी है और उसे अपने प्रेम में इतना विश्वास है, वह जानती है कि उसकी विकल-व्यथा से विह्वल होकर कृष्ण अवश्य उसके पास पधारेंगे। भामिनी राधा को कृष्ण के पास स्वयं जाने की आवश्यकता नहीं होगी। कवि जयशंकर प्रसाद के शब्दों में—

इस शिथिल राह से खिच कर तुम आओगे आओगे,
इस बढ़ी व्यथा को मेरी रो रो कर अपनाओगे !

—आँसू, पृष्ठ १२

जो राधा अपने प्रेमाश्रु से अन्तरतम को पवित्र कर सकती है। भला, उसे बाह्य उपचार करने की क्या पड़ी है। वह यमुना में स्नान क्यों करेगी ? यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि जब मानव को अपने अभीष्ठ की पूर्ति नहीं हो पाती है तो अपने पास जो भी साधन प्रस्तुत रहता है वह उसी पर ही सन्तोष की साँसें लेता है। राधा के मनोभावों का चित्रण भी इस 'मलार' में ऐसा ही किया गया है।

मानव के मन में जो भावोदय होते हैं उनका आभास वह प्रकृति में भी देखने लगता है और प्रकृति तथा जीवन के साथ चेतनात्मक सत्ता स्थापित कर वह प्रकृति को सजीव रूप में देखता है। एक अन्य 'मलार' में विरहिणी बादल से बिनती करती है, क्योंकि बादल उसकी विरह-व्यथा को और भी उभार देता है और वह उसके प्रियतम के अभाव की अनुभूति कराता है। इससे उसका जीवन भार-सा बन जाता है और उसकी वेदना असह्य हो उठती है—

---

१ राम इकबाल सिंह 'राकेश' : मैथिली लोकगीत पृष्ठ ३१७

रे बदरा ! मति बरसु एहि देसवा,
रे बदरा बरिसु ललन जी के देसवा,
बदरा हुनके भिजाउ सिर टोपिया, रे बदरा !
एक त बैरिन भेल सासु रे ननदिया ,
दोसर बैरिन तुहुँ भेले, रे बदरा !

नवबधू का प्रियतम परदेश चला गया है और पावस ऋतु आ गयी है। उसके हृदय में उद्दीपन जग गया है। उसे बादल काटने दौड़ता है, क्योंकि उसका पति उसके साथ तो है नहीं ! यदि वह रहता तो यह बादल भी उसके सुख का साथी बन सकता था। लेकिन वह तो परदेश में है। इसलिए वह कहती है—रे बादल ! तू यहाँ मत बरस, जहाँ मेरे प्रियतम रहते हैं वहाँ ही बरस। उनके सिर की टोपी तू बरस-बरस कर भिगा दे। यहाँ पर यह बात विशेष उल्लेखनीय है कि वियोगिनी का प्रियतम टोपी पहनता है और जब उसकी टोपी को बादल भिगा देगा तब सम्भव है, उसे अपनी प्रियतमा के वियोग की अश्रुधारा का स्मरण हो आएगा और वह व्याकुल होकर शीघ्र ही परदेश से लौट आएगा, और अपनी प्रियतमा की पावस में उभरी हुई विरह वेदना को दूर करेगा।

बादल को अपना संदेश-वाहक मानकर अपनत्व का भाव ऊपर के गीत में व्यक्त किया गया है और सास-ननद को बैरिन के रूप में माना गया है इस प्रकार का मनोद्भावन उसे होना स्वाभाविक ही है, क्योंकि जब दुःख का साथी कोई नहीं होता है तो प्रकृति के उपकरणों को ही दुःख का साथी मानकर धैर्य बाँधा जा सकता है। इस मलार में लोकगीतकार ने नवबधू की वियोग-व्यथा की स्थिति पर प्रकाश डालकर सहज प्रवृतियों का परिचय दिया है।

दाम्पत्य जीवन के मधुर प्रेम के सम्बन्ध में रहीम ने लिखा है—

टूट खाट घर टटियो टूट !
पिय के बाँह सिरहनवाँ सुख के लूट !

नारी का स्वरूप

जब किसी विवाहिता कन्या को अपनी ससुराल के नये वातावरण में सर्व-प्रथम रहने का अवसर मिलता है तो उसे अपने नैहर जाने की उत्कण्ठा तीव्र हो उठती है। और, उसका भयंकर रूप तब दीख पड़ता है, जबकि वह अन्य बधुओं को नैहर जाते हुए देखती है जो उससे बाद में ससुराल आयी है। निम्नलिखित समदाउन में वह अपने पति से कहती है—

---

१ राम इकबाल सिंह 'राकेश', : मैथिली लोकगीत, पृष्ठ ३१२

कते दिन लै परतारव, हे पति !
आब मरव विष खाय !
काल्हिक भामिनि भाग हुनक भल,
सब जनि नइहर जाय ![1]

यहाँ पर विष खाकर मर जाने की धमकी द्वारा वह सुन्दरी अपने पति से नैहर जाने के लिए अनुमति प्राप्त करना चाहती है और यह एक ग्राम वधू की अपनी मर्यादा है। लेकिन यदि उसका पति उसे जाने न देगा, तो वह विष खाकर मर जाएगी। इस प्रकार का भाव मन में तभी उठता है, जबकि अपनी इच्छाओं की पूर्ति न हो पाती है और वे भीतर ही भीतर मन को मथती रहती हैं। सोचने की बात तो यह है कि जो बधू उस सुन्दरी से बाद में ससुराल आयी वह तो नैहर जा रही है, किन्तु वही एक ऐसी अभागिन है जो अभी तक अपना नैहर नहीं जा सकी है। उसे एक प्रकार की इर्ष्या भी हो रही है। जब कोई व्यक्ति अपनी इच्छाओं की पूर्ति किसी प्रकार नहीं कर पाता है तो दूसरों के सुख को देखकर उसे ईर्ष्या होती ही है। यह भी एक वैज्ञानिक तथ्य है। इस प्रकार अनुकरण का दृष्टान्त देकर लोकगीतकार ने मधुर भावों की अभिव्यंजना की है और पारिवारिक परिस्थितियों की ओर संकेत किया है।

यह तो नैहर जाने की बात हुई। लेकिन जब कोई सुन्दरी अपने नैहर में रहती है, तब उसे अपने पति-गृह जाने की भी कामना कम नहीं रहती। नीचे की समदाउन में इसी प्रकार का भाव यों व्यक्त किया गया है :—

उठु भइया, उठु भइया, बिदा मोहि दिउ,
गहना देअइत भाइ लेलन्हि लुलुआय।
पाथर के छतिया बहिन बिहुँसि नेहे जाउ,
चलइत के बेरिया बहिनि देल समुझाय !

ऊपर की समदाउन में यह बताया गया है कि आँगन छोटा है, और परिवार बड़ा है। बेटी को मिलने-जुलने में ही साँझ हो गयी और जब वह पति-गृह जाने की सबसे बिदा माँगती है तो उसका भाई कहता है—'पत्थर की तरह कठोर हृदय वाली हे मेरी बहिन ! बिदा के समय हँसो मत। इसका कारण यह है कि भारतीय समाज में यदि कोई विवाहिता कन्या सर्वप्रथम ससुराल से नैहर

---

१ राम इकबालसिंह 'राकेश', : मैथिली लोकगीत, पृष्ठ १८६

२ वही, पृष्ठ १६२

आने के बाद फिर पति-गृह जाती है तो उसे इतनी व्यग्रता दिखलाना उचित नहीं माना जाता। यह स्वाभाविक ही है कि बेटी की बिदाई के समय बड़ा ही कारुणिक दृश्य उपस्थित हो जाता है और सबके सब रो पड़ते हैं। लेकिन बेटी की ही आँखों में आँसू नहीं छलके तो यह चिन्तनीय अवश्य है। इससे दो बातें प्रमाणित होती हैं। एक तो यह कि बेटी को अपने नैहर से असंतुष्टि है और दूसरा उसके ज्ञान का स्तर ऊँचा है। इसमें यह मनोवैज्ञानिक तथ्य दीख पड़ता है कि जब किसी लक्षित वस्तु के प्रति आत्मबोध स्पष्ट हो जाता है तो विशेष परिस्थिति में भी मनुष्य अपने मन को नियन्त्रित कर सकता है। वह घबड़ा नहीं सकता। इस गीत में संभवतः यही कारण है कि बेटी की बिदा के समय उसके हँसने का उल्लेख किया गया है। ऐसा लगता है कि उसे अपने पति से मिलने की इतनी तीव्र उत्कण्ठा और व्यग्रता है कि वह सबके साथ गले मिलकर रोना ही भूल गयी। भावाधिक्य में यह स्थिति आती ही है। प्रायः आजकल यह देखा जाता है कि पढ़ी-लिखी लड़की पति-गृह जाते समय नहीं रोती। इसका कारण यह है कि उसे लक्ष्य-बोध पहले से ही हो जाता है।

नीचे लिखी एक 'झूमर' में पति-पत्नी के बीच नोंकझोंक, तर्क-वितर्क चल रहा है जो बड़ा ही विनोद प्रिय बन गया है। इसमें यह बताया गया है कि पति कलकत्ता जा रहा है और पत्नी रूठ कर नैहर जाना चाहती है। पति कहता है कि मेरे ब्याह में जितने रुपये लगे हैं, उन्हें तुम लौटा दो। इस पर पत्नी उत्तर देती है कि मैं अपने पिता के घर से यहाँ जिस रूप में आयी थी, तुम मुझे ठीक उसी रूप में बना दो। इस पर पति कहता है कि तुम्हें मोतीचूर की मिठाई, अँगूर का शरबत पिलाकर ठीक उसी रूप में बना दूँगा, परन्तु मेरे ब्याह में जितने रुपये लगे हैं, तुम पहले उन्हें मेरे पास रख दो। इसका उत्तर पत्नी यों देती है :—

नहिएँ बनबइ हे पिया, नहिएँ बनबइ हे !
जेहन अयलौं बाबा घर सँ तेहन नहिएँ बनवौं हे ![1]

भोली भाली ग्राम वधू की यह उक्ति और तर्क युक्तिसंगत जान पड़ता है। इसमें यह भी देखा जा सकता है कि पुरुष की सूझ से नारी की सूझ कम नहीं है। यहाँ लोकगीतकार ने नारी की सूझ का चित्रण मनोवैज्ञानिक ढंग से किया है।

---

१ राम इकबाल सिंह 'राकेश' : मैथिली लोकगीत, पृष्ठ २१४

दाम्पत्य जीवन में जब तक समानता का भाव नहीं उत्पन्न हो सकता तब तक वह संतुलित नहीं कहा जा सकता और न मधुमय ही। उसमें व्यंग्य-विनोद के भाव और भी उसे सुखद बना देते हैं। प्रस्तुत 'झूमर' में, जो कि नीचे दिया जा रहा है, विनोदपूर्ण वाद-विवाद तो है ही, साथ ही नारी के प्रगतिशील मनोभावों का चित्रण भी सजीव हो उठा है। इसका संदर्भ यह है कि पत्नी अपने भाई के ब्याह के अवसर पर नैहर जाना चाहती है, लेकिन पति उसे जाने नहीं देता है। वह कहता है कि हे प्रियतमे ! तुम यदि नैहर चली जाओगी तो मैं दूसरा ब्याह कर लूँगा और तुम्हें फिर कभी नहीं बुलाऊँगा। इस पर उसकी पत्नी व्यंगवाण छोड़ती है :—

पिया हे नइहर में भाइ अछि वकील,
तोही के बँधबाएब,
पिया हे नइहर में भाइ छथि दरोगा,
तोहि के पिटबाएब।[1]

अर्थात् हे प्रियतम ! यदि तुम दूसरा ब्याह कर लोगे तो मेरे नैहर में मेरा भाई वकील है। तुम पर अभियोग लगा कर तुम्हें कारागार भिजदा दूँगी और मेरा भाई दारोगा भी है उससे तुम्हें पिटवाऊँगी। भले हीं, यह भावोक्ति मर्यादा के प्रतिकूल दीख पड़ती है, लेकिन नारी की प्रत्युत्पन्न बुद्धि की झलक इसमें भली भाँति दृष्टिगोचर होती है। कवि श्री मैथिलीशरण गुप्त के शब्दों में :

प्रेमियों का प्रेम गीता तीत है,
हार में जिसमें परस्पर जीत है।
—साकेत, पृष्ठ १०

इस प्रकार पत्नी और पति के बीच कोई व्यवधान तो आ ही नहीं सकता। बड़े और छोटे का प्रश्न प्रेम में नहीं उठता है, क्योंकि दोनों की आत्मा एक है, दोनों के हृदय मिलकर एक हैं और एक की हार है दूसरे की हार और एक की विजय दूसरे की विजय है और प्रेम में तो कुछ भी बुरा होता नहीं—साकेत, पृष्ठ ५

पत्नी अपने नैहर की महत्ता पर बराबर बल देती है और उसका यह संस्कार परम्परानुगत है। ऊपर की 'झूमर' में पत्नी के द्वारा जहाँ तक

---

१ राम इकबाल सिंह 'राकेश' : मैथिली लोकगीत, पृष्ठ २०४

डर दिखलाने की बात कही गयी है, वहाँ तो वैज्ञानिक दृष्टि से यह मानना पड़ेगा कि भय को भगाने के लिए ही वीरता का संवेग उदित होता है। भय से मानव भागता है, किन्तु अपनी चेतना की प्रखर शक्ति से उसका निवारण भी वह करता है। यहाँ पर पत्नी के मन में यह भय घर कर गया था कि उसका पति कहीं दूसरा ब्याह कर लेगा तो उसके प्रेम में बाधा पहुँचेगी। इसी से उसने अपने पति को धमका कर शान्त कर दिया। यह स्पष्ट है कि जब कोई दबी भावनाएँ उभरना चाहती हैं तो उनका रूप उत्तेजक और विभीषक होता ही है। यही कारण है कि यहाँ पर लोकगीतकार ने पत्नी के मुँह से इस प्रकार की उत्तेजना और तर्कनापूर्ण बातें बतलायी हैं—

निम्नलिखित फाग में ग्राम बधू के निश्छल और पवित्र प्रेम का सजीव चित्रण इस प्रकार किया गया है—

तोरा लागि धयछि बरदा खरि रे बँगरवा,
त पिया लागि पाललि रे जोबनमा !
कोल्हुआ तोर टुटउ मोहनमा तोहर न,
रसवा बहि जाय रे गोंअरवा ![1]

वह ग्राम बधू अपने पति से कहती है कि हे बालम, तुम्हें गाँव के खेत में ईख रोपने के लिए मना किया था। तुमने जाड़े का मौसम तो खेत खलिहान में बिता दिया और गर्मी कोल्हुआर में काट दी। अन्त में वह सुन्दरी अपने गोला बैल से ही निहोरा करती है और कहती है कि तुम खूँटा तोड़ कर आँगन में आ जाओ जिससे मेरा प्रियतम आकर दर्शन देगा। रे बैल मैंने तुम्हारे लिए सरसों की खली और बिनोला रख छोड़े हैं और अपने प्रियतम के लिए यौवन को सुरक्षित रखा है। अन्त में वह झुँझला कर कठोर शब्दों में कहती है कि रे निर्दयी प्रियतम ! तुम्हारा कोल्हू टूट जाय और ईख का रस इधर उधर नष्ट-भ्रष्ट हो जाय। इस कथन से यह निष्कर्ष निकलता है कि ईख की खेती के कारण ही उसका प्रियतम कार्य में व्यस्त हो गया है और उसकी सुधि भूल बैठा है। अतः 'न बाँस रहेगा और न बजेगी बाँसुरी' की बात यहाँ लागू होती है। उस ईख की खेती को बन्द करने पर ही वह अपने प्रियतम से साक्षात्कार कर सकेगी और अभीष्ठ पूरा कर सकेगी। अपनी वाँछित वस्तु न पाने पर उसके प्रतिकूल भयंकर प्रतिक्रिया का होना स्वाभाविक

---

१ राम इकबाल सिंह 'राकेश' : मैथिली लोकगीत, पृष्ठ ३००

ही है। नारी के हृदय की ये कोमलतम भावनाएँ युग-युगों से लोकमानस को शीतल और स्निग्ध करती आ रही हैं। इस गीत से किसान के जीवन की झाँकी तो मिलती ही है, साथ ही किसान बधू के सरल स्वाभाविक प्रेम का परिचय भी प्राप्त हो जाता है।

ठीक इसी प्रकार का मनोभाव एक भोजपुरी लोकगीत में भी व्यक्त किया गया है—

गोड़ तोर लागी लै सुरही के बछवा,
जुअठिया तूर हो, घरवा आय हो राम !
जुअठिया त टूटले कपरो ने, फूटले,
घइया लठावे, घरवा अइलें हो राम !
किया घइया लठि हैं, माइ बहिनियाँ,
किया लठि है भउजइयाँ हो राम ![1]

अर्थात् हे सुरही गाय के बछिये ! मैं तेरे पाँव पड़ती हूँ। तू जुए को तोड़कर घर आ जा। तेरे पीछे पीछे वे भी (पति) घर आ जाएँगे। और, बैल ने जुआ तोड़ डाला। मगर मेरे पति का सिर भी फट गया। वे घाव पर पट्टी बँधवाने घर आए। अब बताओ प्रियतम ! तुमने तो मुझे अँगारा फेंक कर भगा दिया और माँ बहिन, भौजाई के लिए तुम कमाई करते रहे। अब बताओ, इस घाव को किससे बँधवाओगे ? मुझसे या उन्हीं सबसे ? अब तो सीधे मेरे पास आए ना ! इसमें सूझ और भी तीव्र हो उठी है।

मैथिली की नचारी में शिव को पार्वती से हीन बताने का प्रयास किया गया है और उसमें व्यंग-विनोद का चित्रण बड़ी कुशलता से किया गया है। उसमें मिथिला के नारी-जीवन का दिग्दर्शन एवं भाव-विश्लेषण रोचक ढंग से हुआ है—

खन नहि चैन, कखन सुतती,
माँगि-चाँगि लयथिन धान कूटती,
माँड़ संग गोलभात कोना खैती ?
गौरी दुख भोगती ![2]

पार्वती की माँ कहती है—मेरी बेटी को क्षण भर के लिए विश्राम नहीं

---

१ इरादा तामील व तरक्की जामिआ, दिल्ली, : भोजपुरी लोकगीत, पृष्ठ १५

२ रामइकबाल सिंह 'राकेश' : मैथिली लोकगीत, पृष्ठ १६५

मिलेगा। जाने, वह कब सोएगी ? इधर-उधर से माँग कर शिव धान लावेंगे और उसे वह कूटेगी और न जाने, मेरी बेटी कैसे माँड़ के साथ गीला भात खाएगी ? गीला भात खाने की बात इसलिए उठायी गयी है कि बूढ़े होने के कारण शिव के मुँह में दाँत नहीं हैं और पार्वती को गीला भात खाने की आदत नहीं है। उसे वह कैसे खाएगी और शिव के साथ रहेगी ? इस प्रकार की ममता अपनी सन्तान के प्रति प्रत्येक माता-पिता के हृदय में रहती ही है। शिव और पार्वती के जीवन की ओर संकेत कर लोकगीतकार ने बेमेल विवाह की दुर्दशा का चित्रण किया है और उसने जो यह मनोवैज्ञानिक सूझ व्यक्त की है वह सराहनीय है।

चैत का महीना आ गया, लेकिन प्रियतम ने कोई पत्र नहीं भेजा। विरहिणी को कोयल की कुहुक सुनकर रात में नींद नहीं आती। इस 'चैतावर' में व्यंग्यात्मक और मार्मिक भाव यों है—

बेली चमेली फूले बगिया में,
जौबन फुलल मोरा अँगिया हे रामा !
नइ भेजे पतिया ![1]

फुलवारी में बेला और चमेली चटक गयी हैं और हे सखी, मेरे शरीर में (अँगिया में) यौवन भी विकसित हो गया है। लेकिन मेरे प्रियतम ने पत्र नहीं भेजा ! तात्पर्य यह कि उस सुन्दरी के जीवन की सार्थकता प्रियतम के साथ जीवन बिताने में है। उसके पास रूप, गुण और सौन्दर्य है। उसके सौंदर्य में आकर्षण है। किन्तु प्रियतम का अभाव इस चैत महीने में उसे अत्यन्त खटक रहा है और उसके हृदय में संवेगों को उत्तेजित कर रहा है। जीवन में सभी सामग्रियों के रहते हुए भी अपनी इष्ट-सिद्धि के बिना सब बेकार है। मनोहर वातावरण के रहते हुए भी प्रियतम का न रहना उस वियोगिनी को व्यथित कर रहा है।

प्रकृति के साथ जीवन का सामंजस्य स्थापित कर नाना मनोभावों का विशद विश्लेषण करना ही लोकगीतकारों का अभीष्ठ रहा है। उपर्युक्त विवेचनाओं से यह बात भलीभाँति स्पष्ट हो जाती है और लोकगीतों में निरूपित मनौवैज्ञानिक भावों का विश्लेषण उद्धरणों के द्वारा यथासम्भव कर दिया गया है।

---

१ रामइकबाल सिंह 'राकेश' : मैथिली लोकगीत, पृष्ठ ३०३

मैथिली लोकगीतों में सामाजिक भावों का निरूपण

परम्परा से लोकगीतों को समाज से प्रेरणा और कल्पना मिलती रही हैं और वे उन्हीं से अनुप्राणित होते है। ऐसी बात यदि न होती तो विद्यापति संस्कृति के विद्वान होकर भी मैथिली में क्यों रचना करते ? कारण यही है कि लोकगीतों के विकास का आधार सामाजिक है और वह सामाजिकता व्यक्ति के द्वारा ही निखर सकती है। व्यक्ति के सुख-दु:ख की अनुभूति में जो अन्तर आ जाता है। उसका कारण है—सामाजिक स्थितियाँ। इसीलिए संभव है, विभिन्न प्रान्तों की स्वाभाविक प्रवृत्तियों की अभिव्यक्ति की प्रणाली में भिन्नता आ जाए।

सामाजिक नियमों के कठोर बन्धनों के कारण लोकगीतकारों के मन में जो कुण्ठा रहती है वह समाज के प्रति व्यंग्योक्तियों, लाक्षणिकों एवं कटूक्तियों के रूप में अभिव्यंजित होती है और कभी कभी समाज के प्रति उपेक्षा के भाव भी व्यक्त हो जाते हैं। व्यंग्योतियों एवं कूटक्तियों का उल्लेख मैथिली लोकगीतों में नारी के मुँह से कराया गया है और उसके द्वारा मिथिला के सामाजिक नियमों पर व्यँग्यवाण छोड़ा गया है।

विषाद एवं वेदना का कारण अपने प्रिय का बिछुड़न है। किन्तु उसकी निष्ठुरता की स्मृतियाँ वियोगिनी के हृदय को अधिक मथ डालती हैं और वह जो उलहना देती है वह तो समाज के बन्धन के प्रति ही संकेत है।

प्रियतम प्रवासी है। मिलने की आकुल उत्कण्ठा रखकर भी वह पंख कटे पक्षी की भाँति विवश है। वह अपने प्रियतम से मिल नहीं सकती और कई प्रतिबन्ध ऐसे हैं जो मिलन में बाधक हैं। मैथिली लोकगीतों में कहीं उलहने के भावों की अभिव्यक्ति है, तो कहीं वेदना, विषाद की, और व्यंग्य-विनोद की। उनमें पारिवारिक जीवन के सामंजस्य को सुदृढ़ रखने वाले अनेकों प्रकार के भावोन्मेष निहित हैं। माता-पिता, सास-सुसर, भाई-बहिन, ननद-भौजाई, के मधुर सम्बन्धों के अनेक गीत लोकमानस को शीतल कर देते हैं। इन गीतों में जो माधुर्य हैं, जो सौंदर्य हैं, जो पवित्र भाव हैं, जो आत्ममुक्तता हैं वे अनायास ही हृदय को प्रभावित करते हैं।

सामाजिक भावों को व्यक्ति करने में लग्न-गीत, सोहर और त्योहार प्रमुख हैं। अतः अब इन्हीं कुछ लोकगीतों के आधार पर विवेचना करना उपयुक्त जान पड़ता है।

लग्न-गीत

इस लग्न-गीत में मिथिला की प्राचीनतम संस्कृति की झलक मिलती है। गाँव के सुन्दरतम आदर्श का परिचय सीता के मुँह से कराया गया है। विवाह-मंडप पर कलशे की ओट से सीता राम से कहती है और इसमें मर्यादा की रक्षा इस प्रकार की गयी है :

कलसा क ओते-जोते सीता मिनती करथि,
सोआमी जी सँ अरज हमार हे !
सोने के कलसा से बिआह ने होएत,
माँटी के कलस मँगाउ हे ![1]

बेमेल विवाह का भंयकर परिणाम मिथिला के सामने आ खड़ा हुआ और अत्याचार बढ़ने लगा। कहीं तो बूढ़े के साथ बालिका का विवाह रचा गया और कहीं प्रौढ़ स्त्री के साथ बालक का ब्याह ! विवाह के संताप से प्रपीड़ित स्त्री का करुण - क्रन्दन मैथिली लोकगीतकारों में मुखरित हो उठा। इसका प्रमाण इस नचारी में यों है—

गाल छइन बोकटल, मुँह छइन चोकटल,
मुँह मधे एको गो ने दाँत गे माई !
सउँसे देह बुढ़बा के थर थर कँपइन,
पुरुष बड़ भोगिआर, गे माई ![2]

और भी-

पिया मोर बालक, हम तरुनी !
नहि मोरा टका अछि, नहि धेनु गाइ !
कोन विधि पोसब, बालक जमाइ ![3]

सोहर

प्रेम का महत्त्व

मिथिला में धीरे-धीरे गहने का वहिष्कार होने लग गया है और प्रेम की पूजा का महत्व बढ़ रहा है। निम्नलिखित सोहर में इसका दृष्टान्त यों है—

---

१ राम इकबाल सिंह 'राकेश' : मैथिली लोकगीत, पृष्ठ १३१
२ वही, पृष्ठ १७२
३ रामवृक्ष 'बेनीपुरी' : विद्यापति पदावली, पृष्ठ ३२४

अहाँ क चुँदरिया राजा भइया पैन्हथि,
सिकिरिया बहिन पेंन्हथु, रे ललना !
राजा हम त बचनियाँ के भूखल,
दरशन चाहिए हे ![1]

हे प्रियतम ! तुम्हारी यह चुन्दरी तुम्हारा भाई पहिने। सिकड़ी अपनी बहिन को पिन्हा दो। मैं तो तुम्हारे प्रेम की भूखी हूँ। गहने लेकर क्या करूँगी। मुझे तो सिर्फ तुम्हारे दर्शन चाहिए। इस प्रकार के आदर्श से भरे लोकगीतों में पलने वाले पति-पत्नी कभी भी अनैतिकता के गर्त में नहीं गिर सकते।

सीता का सामाजिक स्वरूप

सीता को लोक जीवन की भाव - भूमि में उतार कर एक आदर्श ग्रहण कराना मैथिली लोकगीतों की सामाजिकता का परिचायक है। नीचे के सोहर में यह बताया गया है कि गर्भिणी सीता को राम नैहर भेजने के बहाने लोकावाद से बचने के लिए बाहर भेजना चाहते हैं और सीता उनसे कहती है कि नैहर में न तो उसे माँ है, न सहोदर भाई है और न अब उसके पिता जनक ही जीवित हैं। अतः वह किसके बल पर जनकपुर जाएगी ? इससे यह ज्ञात होता है कि पति के रहते पत्नी नैहर में जीवन बिताना पसन्द नहीं करती।

अन्त में लक्ष्मण सीता को अयोध्या से कहीं दूर छोड़ आते हैं। लेकिन सीता अपनी प्रसव-पीड़ा के कारण आँचल से आँसू पोछती हुई कहती है—हाय ! ऐसे समय में मेरा दुःख कौन बँटाएगा ? कौन मेरे नवजात शिशु का नाल काटेगा ? पुत्र-जन्म की बधाई में कौन मुझसे सोने की हँसुली पुरस्कार में लेगा ? और, मेरी लालसा कैसे पूरी होगी ! सीता का यह करुण विलाप सुनकर वन-देवियाँ बाहर निकल आती हैं और अपने आँचल से सीता के आँसू को पोछती हैं। वे कहती हैं—हे सीता बहिन ! धीरज धरो। तुम्हारी देखभाल हम करेंगी। हम ही तुम्हारे नव जात शिशु का नाल काटेंगी और और तुम्हारे पुत्र-जन्म की बधाई में सोने की हँसुली लेंगी। इस प्रकार तुम्हारी लालसा पूरी होगी—

दुअरे से अएले रघुनाथ कि धनि के बोलाओल हे !
धनि अएलो नइहरवा के नेओत कि हमें तुहुँ जाएब हे !

---

१ राम इकबाल सिंह 'राकेश' : मैथिली लोकगीत, पृष्ठ ७५

नय मोरा नइहर में माय, भइया सहोदर हे !
प्रभु जी, नइ रे जनक रिसि बाप, ककरा बल जाउग्र हे !
एक कोस गेलि सीता दुइकोस गेली, अग्रोरो तेसरे कोस रे !
ललना, हुनको उठल जुरि बेदन, लछुमन तेजि पराएल हे !
काने सीता हकन करे, अँचरे लोर पोछथि हे !
ललना, केहि मोरा आगुपाछु होयत, केहि रे नार छीलत रे !
ललना, केहि लेत सोने के हँसुलियाँ, हृदय जुरायत रे !
बन से निकललि बनसपतो, अँचरे लोर पोछथि रे !
ललना, हम सीता आगुपाछु होएब, हमें नार छीलब रे !
ललना, हमें लेब सोने के हँसुलिया, हृदय जुराएब रे !

सीता के प्रति किये गये राम के द्वारा इस निष्ठुर व्यवहार की कड़ी निन्दा ग्रामीण स्त्रियों ने की है और सीता के प्रति सहानुभूति प्रकट की है।

लोकगीतकारों ने दैनिक जीवन में राम और सीता के दाम्पत्य जीवन को अवश्य लिया है, किन्तु उसमें जो अन्याय और निष्ठुरता है उसकी ओर अँगुली उन्होंने उठायी है। प्रेम के आगे कर्त्तव्य को भी हेय माना है। इस सोहर में यह भी संकेत किया गया है कि न्याय के साथ दया का भी रहना मानवता के नाते आवश्यक है। सीता के हृदय की यह करुण पुकार मिथिला को समस्त नारियों की चीत्कार है और यह किसे नहीं पिघला देती। ऐसी कल्पना और सूझ लोकगीतकारों में ही होती है और यही कारण है कि उनकी रचनाएँ हृदय के मर्म को छूने की शक्ति रखती हैं।

बहिन की सेवा

भाई अपनी बहिन की सेवा करने में सर्वदा तत्पर रहता है। फूल चुनते-चुनते एक सुकुमार बहिन पसीने से तर हो गयी है और उसके माथे की सिंदूर-बिंदी और आँखों का स्नेहमय काला काजल भी पसीज गया है। अपनी बहिन को धूप से बचाने के लिए भाई छाता लेकर दौड़ा जा रहा है—

छतवा नेने दउड़ल अबथिन मोहन भइया हे !
कि बइसु बहीनि एहो जुड़ि छंहियाँ हे !

अपने भाई की सेवा-भावना से भाभी भी प्रेरित होकर ननद की सेवा करने लग जाती है—

कि पनिया नेने दउड़ल अबथिन कनियां भउजो हे !
कि पिऊ हे ननद इहो शीतल पनिया हे !

कनिया भउजो के केसिया चँवर सन हे !
कि एहि केस गूँथवो चमेली फूल हे ![1]

इन पँक्तियों से विदित होता है कि बहिन किसी घर में मेहमान की भाँति ही है और भाई और भाभी को उसकी सेवा करना परम कर्त्तव्य है। इस प्रकार बहिन के प्रति सेवा-भावना का आदर्श दिखला कर मिथिला के सामाजिक जीवन का दिग्दर्शन कराया गया है।

सन्तोष और त्याग

नीचे की नचारी में साधारण जीवन में संतोष के महत्त्व पर प्रकाश डाला गया है—

भोला, एम्हर सुनि जाउ !
दालि लिउ, चाउर लिउ—
खिचड़ी बनाउ,
हमारा परमेश्वर छथिन,
अहाँ भरि पेट खाउ ![2]

ऊपर की पँक्तियों में जो संतोष की बात कही गयी है वह स्वाभाविक जँचती है। एक साधारण परिवार की कामनाओं का चित्रण इस छठ गीत में निम्न प्रकार किया गया है—

थोड़ नइ लेब माता, बहुँत जनि दीउ,
एगो पंडितवा माइ गे, दुइ हर लेव,
हरी हरी परसन होउ, हे माता, छठि देइ भेली ![3]

हे माँ ! मुझे थोड़ा नहीं चाहिए और तुझे आवश्यकता से अधिक भी मत दो। मैं एक पंडित पुत्र और खेत जोतने योग्य दो हल माँगती हूँ। हे दया-शीला छठी माँ शीघ्र प्रसन्न होओ। संतोष और त्याग की ऐसी भावना ही तो सर्वोदय की स्थापना कर सकती है—

साईं इतना दीजिये जामें कुटुम्ब समाय !
मैं भी भूखा ना रहूँ, साधु न भूखा जाय !

—कबीर

---

१ रामइकबाल सिंह 'राकेश' : मैथिली लोकगीत, पृष्ठ ३८४
२ वही , पृष्ठ १७१
३ वही , पृष्ठ ३५९

वसुधैव कुटुम्बकम्

निम्नलिखित 'बैंजनथिया गीत' में ग्रामीण जीवन का ऊँचा आदर्श बताकर मिथिला की संस्कृति की महत्ता दिखलाई गयी है। इसमें यह कहा गया है कि मैं शंकर के दरबार में प्रसन्नता से रहूँगा। अन्न, धन और स्वर्ग किस के लिए हैं? यह रूप किसके लिए है और स्वस्थ शरीर किसके लिए? किसके लिए यह पुत्र है? इन प्रश्नों का उत्तर है—अन्न धन और सोना दान के निमित्त है। रूप देखने के लिए है। स्वस्थ शरीर तीर्थ-यात्रा के लिए है और प्यासे को पानी पिलाने के लिए है पुत्र—

लुटवै लागि अन-धन सोना,
देखई लागि रूप !
तीर्थ चलइ लागी, निरमल काया.
जलर्भार लावय पूत !
हम त खुशी सँ रहबइ ए !
बइजनाथ दरबार में !

ऊपर के गीतांश के अन्त में दो बातें विशेष मार्मिक हैं। पहली बात है स्वस्थ शरीर तीर्थ-यात्रा के लिए है, अर्थात् धार्मिक कार्यों में ही जीवन की सफलता एवं सार्थकता है। तीर्थ-यात्रा के द्वारा नाना प्रकार के अनुभव प्राप्त होते हैं और उन अनुभवों से जीवन में सफलता मिलती है। प्यासे को पानी पिलाने के लिए पुत्र है। अर्थात् दूसरों की सेवा करना उनके दुःख को दूर करना, नाना प्रकार की इच्छाओं और आवश्यकताओं कीतृप्ति करना ही पुत्र का कर्त्तव्य है। इसलिए ही पुत्र का जन्म होता है। इस प्रकार के सामाजिक भावों की अभिव्यंजना कर मैथिली लोकगीतकार ने मिथिला के सामाजिक प्रेम और कर्त्तव्य की ओर निर्देश किया है। दूसरी बात जो इसमें कही गयी है वह है अन्न, धन और सोना दान करने के लिए है। तात्पर्य यह कि समाज में यदि किसी के पास अधिक सम्पत्ति हो जाय तो उसे दान में बाँट देना व्यक्ति का कर्त्तव्य हो जाता है, क्योंकि इससे समाज में दूसरों का भरण-पोषण होता है और दूसरों की भलाई में ही आत्म-शान्ति मिल सकती है। न्यायोचित धन-वितरण के बिना समाज में सुख-शान्ति की स्थापना सम्भव नहीं। रहीम के शब्दों में—

पानो बाढ़्यो नाव में, घर में बाढ़्यो दाम।
दोउ हाथ उलीचिये, यही सयानों काम।

इस कथन से यह स्पष्ट होता है कि समाज में जो वर्ग विषमता है वह उदारता, सहानुभूति और प्रेम की अभिवृद्धि के अभाव के कारण ही है। ऐसे उदात्त सामाजिक भावों का निरूपण लोकगीतों में सरल ढंग से किया गया है जो द्रष्टव्य हैं।

त्योहार

फाग

मिथिला में फाग का त्योहार बहुत प्रसिद्ध है और यह भी सामुदायिक त्योहारों में से एक है। इस त्योहार में बड़ी एकता और सहृदयता दीख पड़ती है—

जनकपुर रंगमहल होरी,
खेलथि दशरथलाल !
लय पिचकारी रामलखन दोउ,
भरि मुख मारत गुलाल !

मिथिला के सामाजिक जीवन में पक्षी, पशु, वृक्ष, फूल आदि का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है, साथ ही संगीत और नृत्य का भी कम महत्त्व नहीं है। अतः मैथिली लोकगीतों में इन से संबंधित भावों का भी निरूपण सामाजिक दृष्टि से किया गया है जिसका उल्लेख कर देना समीचीन जान पड़ता है।

मैथिली लोकगीतों में वर्णित पक्षी, पशु, वृक्ष, फूल आदि

पक्षी

जबकि आदि मानव पर्वत, नदी, समुद्र में अपनी आत्मसत्ता की चेतना देख सकता है तो चेतन प्राणी पक्षी और पशु में भी अपने अनुकूल भावों को क्यों नहीं देख सकता ? पशु-पक्षियों से उनका निकटतम सम्बन्ध युगयुगों से चला आ रहा है। आज भी वैज्ञानिक युग में मिथिला में कौए, कोयल और सुग्गे को संदेश बाहक के रूप में माना जाता है। पति के पास पत्नी किसके द्वारा संदेश भेज सकती है। कौआ जब प्रातः काल काँव काँव अधिक करता है तो ऐसा समझा जाता है कि कोई न कोई आनेवाला है।

एक कौए से गर्भवती इस सोहर में कहती है—

किये मोरा कगवा रे बाबा अयता, किए मोरा भइया अएता रे !
कगबा कओने सगुनमा लए अएले, त बोलिया बड़ सोहावन रे !

अर्थात् रे काग, क्या नैहर से मेरे पिता आ रहे हैं या भाई ? आज तुम कौन-सा शुभ संदेश लाये हो कि तुम्हारी बोली इतनी मीठी लग रही है।

इस पर कौआ उत्तर देता है—

नइ तोरा रानी हे बाबा अयता, नइ तोरा भइया अयता हे !
ललना, होरिला सुगुनमा लए अइली, त बोलिया बड़ सोहावन हे ![1]

हे सुन्दरी ! नैहर से न तो तुम्हारे पिता आनेवाले हैं और न तुम्हारे भाई ही। मैं तुम्हारे पुत्र जन्म की भविष्य वाणी करने आया हूँ। इसीलिए आज मेरी बोली तुम्हें इतनी मीठी लग रही है।

ऊपर की पंक्तियों से पता चलता है कि मानवीय भावनाओं का प्रतिबिम्ब पक्षियों में भी देखा जा सकता है और उनके द्वारा जीवन में शक्ति, आशा एवं धैर्य प्राप्त करने में सरलता होती है। यह तो मानी हुई बात है कि मानव अपने हृदय के भावों के अनुसार ही अन्य में भी उन भावों को वैसा ही देखता है और चूँकि गर्भवती की लालसा पुत्र-प्राप्ति की है, इसलिए वह ऐसी कल्पना सुनना चाहती है। एक विरहिणी कौए से पूछती है—

काक भाख नित भाखहु रे, पहु आओत मोरा !
खीर खाँड़ भोजन देब रे ! भरिकनक कटोरा !
सोनहि चँचु समारब रे, देब चरन मढ़ाई,
प्राननाथ आँगन बिच जौं, आओत आइ !

वह कहती है हे काग ! बताओ मेरा प्रियतम आएगा कि नहीं। यदि वह आएगा तो सोने के कटोरे में भर कर खीर खाने को तुम्हें दूँगी और आज तेरी चोंच तथा पैरों को सोने से मढ़वा दूँगी।

काग और कौए में इतना ही भेद है कि काग झुंड बाँध कर नहीं रहता। काग को वन में ही रहना पसन्द है। यदि एक कौआ किसी के द्वारा मार दिया जाता है तो हजारों कौए अपनी जातीय भावना से प्रेरित होकर इकट्ठे हो जाते हैं। लेकिन काग में ऐसा नहीं देखा जाता। कोयल अपनी कुहुकन में ही मस्त रहती है और अपने अण्डे को स्वयं न से कर कौए के घोंसले में उन्हें रख आती है और उनकी रक्षा में कौआ कोई कोरकसर उठा नहीं रखता। कौआ कीड़े-मकोड़े को खा लेता है। प्रातः काल सबसे पहले उठ जाता है और वह सब को जगाता है। अपने कार्य के अनुसार कभी कभी उसे लोभ में डालकर न जाने, उसे क्या क्या कोसते हैं।

मैथिली के एक जाँत-गीत में कोयल को प्रियतमा कहा गया है और सुग्गे

---

१ राम इकबाल सिंह 'राकेश' : मैथिली लोकगीत, पृष्ठ ४३

को प्रियतम माना गया है। इस गीत में जाँता पीसनेवाली इस प्रकार उलहना देती हैं—

गीरी पर्वतसँ सुगा एक आएल, सुतल कोइलिया जगावह हो रामा !
तोहें कोइलि जाह आम रे अमोलिया, हम सुगा जाइ छी गहुमाक खेत हो रामा !
तोहरे कारण सुगा माय बाप तेजल, पलंगा सुतल बालम तेजि अएलहुँ हो रामा !
इहो हम जनितहुँ सुगा एते छल करबे, सोनाकेर पीजड़ा गढ़बितहुँ,
रूपा के जंजीर लगवितहुँ हो रामा ![1]

इस तिरहुति में सुन्दी कोयल से कहती है कि हे कोयल यहाँ आओ, मधु-मिश्रित षट्रस भोजन खाओ और मेरे प्रियतम के पास जा कर कहो कि उसने मेरी सुधि क्यों भुला दी ?—

सुनि सुनि कोयल एहिं ठाँ आउ,
मधुमय खटरस भोजन खाउ,
कहब बुझाय, सुनब पहुँ बात,
कथिलय कैलहुँ, कामिनि कात ![2]

एक सुन्दरी कहती है कि कोयल ने कुहुक कुहुक कर आधी रात में ही मेरे प्रियतम को जगा दिया। मेरा प्रियतम मेरे पास सोया हुआ था। पहले तो कोयल प्रातः काल कुहुकती थी। आज न जाने, वह क्यों आधी रात में ही कुहुकने लग गयी—

चैतावर

आन दिन बोले कोइली साँझ भिनुसरबा,
आजु कोना बोले आधी रतिया,
सूतल बालम मोरा जागल, कोइलिया ![3]

पशु

पारिवारिक जीवन में गाय, बैल, भैंस, बकरी, कुत्ते, बिल्ली आदि पशुओं का निकटतम संबंध रहा है और उनके प्रति मानवीय चेतना अधिक सजग और सजीव होती रही है। बेटी की बिदाई के कारुणिक दृश्य को देख कर गाय भी रो पड़ी है। निम्नलिखित समदाउन में यह भाव यों व्यक्त किया गया है—

---

१ डा० जयकान्त मिश्र : फोक लिटरेचर आफ मिथिला, पृष्ठ १९
२ राम इकबाल सिंह 'राकेश' : मैथिली लोकगीत, पृष्ठ २४९
३ वही पृष्ठ ३०८

गैया जे हुँकरय दुहान केर बेर,
बेटी के माय हुँकरय रसोइया केर बेर ![1]

दूध दुहने के समय गाय हुँकारती है और रसोई घर में बेटी की जुदाई में माँ भोजन करने के समय बिसूरती है। प्रकृति के सहचर में भी इस करुणा की पराकाष्ठा दिखाई गयी है।

वृक्ष

माँ कहती है कि यदि यह जानती कि सुसराल जाते समय चैत, वैशाख की कड़ी धूप में कुम्हला जाएगी तो मार्ग में दोनों ओर वृक्ष लगवा देती। निम्न-लिखित समदाउन में माता का वात्सल्य द्रष्टव्य है—

चैत वैशाख केर धूप मतओना,
धिया मोरा जइति कुम्हलाय !
जौं हम जनितौं धिया सासुर जयती,
बाटहिं बिरिछ लगाय ![2]

और, बेटी थोड़ी दूर जब आगे जाती है तो वह बाँस के कोंपल से उपमा देकर यह कहती है—

बाँस कोंपर सन भाइ हम तेजल,

वह कहती है जिस प्रकार बाँस अपने कोंपल को छोड़ देता है, आज मेरा भाई भी इसी प्रकार मुझ से छूट गया है—

एक लग्न गीत में सुन्दरी कहती है—

घर पछुअरबा लवंग केर गछिया,
लवँगा चुअए आधि रात हे !
लवँगा में चुनि-चुनि सेजिया डँसाओल,
इँगुर ढेउरल चारु कोन हे !

मिथिला में वृक्ष के प्रति इतनी सबल भावना है कि आम और महुए के विवाह के बिना विवाह-संस्कार सम्पन्न नहीं होता।

एक विरहणी वसन्त ऋतु के आगमनपर प्रियतम के बिना व्यथित हो उठती है —

आम मजरि, महु तूअल,
तेओने पहुँ मोरा घूरल !

---

१ राम इकबाल सिंह 'राकेश' : मैथिली लोकगीत, पृष्ठ १६६

२ वही पृष्ठ १८०

भाई के रूप का वर्णन निम्न प्रकार की उपमा देकर किया गया है—

समदाउन—

जइसन आमक फाँक,
तइसन भइया क आँखि,
जइसन चन्ना बिरीछ,
तइसन भइया हाथक लाठी !

फूल

मिथिला में फूल का प्रयोग प्रत्येक पवित्र कार्य में होता रहा है। प्राचीन काल से ही फूलों की सुन्दरता और कोमलता से मानवीय भावों को सुसज्जित किया गया है—

कमलक फूल सन बाप, पुरइन दह सन माय हम तेजल,
छुटि गेल बाबा केर राज !
डाँरि उघारि जब देखलन्हि धिया, काँकरि जेकाँ हिया फाट ![1]

ऊपर की पँक्तियों में एक बेटी कहती है—कमल के फूल की भाँति मैं पिता को छोड़ आयी। मैंने कमल से हरे भरे तालाब की भाँति माँ को त्याग दिया। बाबा के सुखमय राज्य को भी छोड़ दिया। सुसराल जाते समय रास्ते में जब उसने डोली का पर्दा उठा कर देखा तो जन्म-स्थान की याद आ जाने से उसका हृदय ककड़ी की तरह फटने लग गया।

एक दामाद के रूप-लावण्य की प्रशंसा सास इस लग्न गीत में यों करती हैं—

दाँत अहाँ क देखु दुलहुआ, अनार केर दनमा।

हे दूल्हे ! तुम्हारे दाँत तो अनार के दाने की तरह सुन्दर हैं।

निम्नलिखित झूमर में बेली और चम्पा फूल के खिलने का समय आ गया है। उसे लक्ष्य कर प्रेम की मादकता की ओर संकेत किया गया है—

कोन फूल फूले आधी आधी रतिया,
कोन फूल फूले भिनसार, मधुबन में !
बेली फूल फूले आधी आधी रतिया,
चम्पा फूल फूले भिनसार मधुबन में ![2]

उपर्युक्त मैथिली लोकगीतांशों के द्वारा यह प्रमाणित होता है कि मिथिला

---

१ राम इकबालसिंह 'राकेश' : मैथिली लोकगीत, पृष्ठ १६६

२ वहीं पृष्ठ २२१

का लोकजीवन कितना सरल और साधारण है, साथ ही उसमें कितनी मानवता भरी हुई है। इस प्रकार पक्षी, पशु, वृक्ष, फूल आदि के साथ उसका रागात्मक सम्बन्ध युगयुगों से जुटा चला आ रहा है और लोकजीवन में उनका महत्त्वपूर्ण स्थान है। उन्हीं से वह विकसित और अनुप्राणित है।

मैथिली लोकगीतों में संगीत के तत्त्व

मैथिली लोकगीतों की यह विशेषता है कि वे किसी खास समय में खास अवसर पर गाये जाते हैं। समदाउन बेटी की विदाई के समय आँखों को सजल कर देती है और कमरधुआ की स्वर-लहरियाँ पैरों में बल भर देती हैं। मैथिली लोकगीतों की एक खास रागिनी है—तिरहुति, नचारी, महेशवाणी। मिथिला के संगीत पर लोकगीतों की छाप स्पष्ट दीख पड़ती है और यह नचारी, गोसाउनी, विष्णु पद में भली भाँति दृष्टिगोचर हो सकती है। मिथिला की स्त्रियाँ सामवेद-गान की भाँति ही मैथिली लोकगीतों को आरोह-अवरोह एवं ताल-लय-गति में बाँध कर प्रत्येक स्वर पर जोर डालती हुई गाती हैं। कभी-कभी तो सुनने वालों को ऐसा लगता है कि संगीत के स्वर-बल के कारण कोई गुनगुनाहट ही पैदा हो रही है। उच्च वर्ग की स्त्रियाँ ताल और बाद्य यन्त्रों का प्रयोग गीत गाने के समय नहीं करती हैं, क्योंकि उनके द्वारा गीतों की स्वाभाविकता मारी जाती है और स्वर-भंग होने की सम्भावना रहती है, और कण्ठों से निकली हुई ध्वनियाँ उनके स्वर में अपने माधुर्य को खो देती हैं। किन्तु निम्न वर्गों की स्त्रियाँ ताल लय गति का ध्यान कम रखती हैं और वे भी गाते समय वाद्य यन्त्रों का प्रयोग नहीं करतीं।

गीत गाने की विशिष्टता तो इसमें है कि बिना किसी ढोलक, सितार, सारंगी आदि के सहारे ही संगीत की रक्षा की जाय। किन्तु आजकल इन वाद्य यन्त्रों के बिना गीत का महत्त्व बढ़ाना कठिन है। मैथिली लोकगीत प्रायः चार-पाँच स्वरों से अधिक नहीं होते हैं। यथा—

बड़ रे जतन सँ हम सियाजी के पोसलौं !
सेहो रघुबंसी नेने जाइ, आहे सखिया !

धुन

ग री ध नि सा सा
—

नि ग ग री ग सा री ध सा
— —
+ + +

ग री ध नि सा सा सा सा

ब ड रे जतन सँ हम सियाजी के पोसलौं,

नि ग ग री ग सा री ग सा

से हो रघुवंसी नेने जाइ, आहे सखिया।
ग री री ध नि सा-सा सा

भारतीय संगीत में षड्ग, ऋषभ, गंधार, पंचम, धैवत और निषाद प्रकार माने गये हैं। इन्हीं को छोटे रूप में 'सा, रे, ग, म, प, ध, निं' कहा जाता है। संगीत सुनने की वस्तु है। उससे कानों को आनन्द मिलता है और हृदय प्रभावित होता है। लोकगीतों में श्रवण का बहुत महत्त्व है और लोकगीतों को प्रभावशाली बनाने का श्रेय संगीत को ही दिया जा सकता है। भाषा के साथ-साथ अनादिकाल में संगीत भी फूट पड़ा।

मैथिली लोकगीतों में 'तिरहुति' एक ऐसा लोकगीत है जिसमें शास्त्रीय पद्धति भी देखी जा सकती है। उसमें भाव और भाषा की छटा निखर उठी है।

संगीत की यह विशेषता है कि वह मानव के परिश्रम के प्रति सौंदर्य की भावना को उत्पन्न कर देता है। लोकगीतों में जहाँ तक भाषा, शब्द और छन्द हैं वहाँ तक उन्हें सोहर, नचारी, समदाउन में देखा जाय तो उसका आनन्द संगीत के द्वारा ही मिल सकता है। तत्वतः प्रत्येक लोकगीत संगीत से रिक्त नहीं है।

मैथिली लोकगीत और नृत्य

सर्ग के आरम्भ में ब्रह्मा के मुख से 'ओम्' ध्वनि निकली। यह संगीत का प्रथम नाद था। समुद्रमंथन से प्राप्त शंख को बजाकर विष्णु ने वाद्य-संगीत के प्रथम नाद को उत्पन्न किया। त्रिपुर के वध पर शिव प्रसन्न होकर नाचने लगे और बस, नृत्य-कला की सृष्टि हुई। भारतीय नृत्य के तीन प्रकार हैं—नाट्य, नृत्य और नृत्त। नृत्य के दो भेद हैं—तांडव (उग्र भाव-प्रदर्शन) जिसे शिव ने जन्म दिया और लास्य (मधुर भावाभि व्यंजन) जिसे पार्वती ने। तांडव नृत्य पुरुषों और लास्य नृत्य स्त्रियों के लिए है। भावमूलक अवस्थानुकृति को नृत्य कहते हैं। मन के विकार को भाव कहते हैं। भाव के दो प्रकार होते हैं—स्थायी और संचारी। लय तथा ताल मूलक अवस्थानुकृति

को नृत्त कहते हैं नृत्य और नृत्त मूक होते हैं, इनमें वाचिक साधन का प्रयोग नहीं होता। मूक नृत्य की भाषा अनुभाव (सात्त्विक भाव) और मुद्राएँ हैं। नृत्य और नृत्त में यही अन्तर है कि नृत्य भाव-प्रदर्शन करता है और नृत्त लय और ताल। नृत्त में घुंघरू द्वारा ताल प्रदर्शन किया जाता है। तबलची का हाथ और नर्त्तक के पैर साथ-साथ काम करते हैं। नृत्त का बोल है—'ता त थेई त त गदि-गिन'। भारतीय संस्कृति में संगीत (गायन, वाद्य और नृत्य) आदिकाल से देवताओं से सम्बन्धित रहा है और आज भी पूजन कीर्त्तन आदि में प्रयुक्त होता हुआ धर्म का अंग बना हुआ है।[1]

मिथिला की नृत्य-कला का विकास उत्तरोत्तर होता जा रहा है। उसमें मैथिली लोकगीतों का विशिष्ट स्थान है और उन्हीं गीतों के सहारे नृत्य-कला आज तक जीवित भी है। सबसे मोहक नृत्य है—जट-जटिन। इसे गीति-नृत्य कहते हैं। असाढ़ में यह नृत्य शुरू होता है। मिथिला से मध्य और निम्न वर्गों में प्रायः जितने भी लोकगीत प्रचलित हैं वे नृत्य से सम्बंधित हैं। उनमें गीत और नृत्य साथ-साथ चलते हैं और यही उनकी विशेषता है। दशहरे में नटुआ नाचता है और कत्थक नृत्त करता है। इसमें पैर से ताल दी जाती है और ताल ही सब कुछ है। भाव-प्रदर्शन और मुद्राएँ नहीं के बराबर हैं। यह दक्षिण की (मलावार) कथाकलि का आभास दिलाता है। यह कर्णाटक की नृत्य, संगीत, अभिनय और कथा की संयुक्त कला है। इसमें रामायण, महाभारत अथवा पौराणिक कथाओं को गायक पर्दे के पीछे से गाते हैं। वादक ताल के लिए मृदंग और स्वर के लिए रुद्रवीणा और वंशी बजाते हैं। अभिनेता मूक रहकर कथा के भावों को अभिनय करके दिखाता है। कमला मैया का जो नृत्य है उसे कमल नृत्य कहते हैं। यह नृत्य मिथिला में अति प्रचलित है।

डम्फा, बाँसुरी, के द्वारा राधा-कृष्ण का रास-नृत्य, वैष्णव पदों को गाते हुए सत्यनारायण पूजा के अवसर पर नारदीय-नृत्य, कीर्त्तन के पदों को गाते हुए दुर्गा पूजा के अवसर पर असि-नृत्य रणगीत गाते हुए भी नृत्य प्रचलित है। इनके अतिरिक्त जूड़शीतल त्योहार के अवसर पर शिव-पार्वती के नृत्य भी बड़े आकर्षक हैं। नचारी तथा महेशवाणी के गीतों के सहारे डमरू बजा बजाकर नृत्य करने की परम्परा चली आ रही है। सोहर, झूमर, बटगमनी, समदाउन, तिरहुति, मलार, पावस, वसन्त, फाग आदि लोकगीतों में नृत्य की मादकता विशिष्ट रूप से भरी हुई है।

---

१ **राजबली शर्मा : भारतीय नृत्य, (धर्मयुग, १६ मार्च १९५८) पृष्ठ ६**

छठा अध्याय

मैथिली काव्य-परम्परा तथा मैथिली लोकगीतों का पारस्परिक सम्बन्ध

६

मैथिली काव्य-परम्परा तथा मैथिली लोकगीत

काव्य मानव-जीवन की जन्म-जात क्षुधा है। सुन्दरतम भाव और रस काव्य के प्राण हैं। वर्डसवर्थ ने कहा है—'कविता आप से आप उमड़ने वाले भावों की तीव्र उमंग है।' काव्य से क्या लाभ है, इस सम्बन्ध में काव्य-प्रकाश के प्रणेता मम्मटाचार्य की सम्मति यों है—

काव्यं यशतेऽर्थ कृते व्यवहार विदे शिवेतरक्षतये,
सद्यः पर निर्वृतये कान्ता सम्मति तयोपदेश युजे।

अर्थात् काव्य, यश, द्रव्य-लाभ, व्यवहार-ज्ञान, दुखः-नाश, शीघ्र परमानन्द और कान्ता-सम्मति मधुरतायुक्त उपदेश का साधन है।

ध्वन्यालोक में काव्य के विषय में यह श्लोक आया है—

प्रतीयमानं पुनरन्यदेव वस्त्वस्ति वाणीषु महाकवीनाम्।
यत्तत्प्रसिद्धावयवातिरिक्त विभाति लावण्यभिवांगनासु॥

ध्वनि, रूप, व्यंग्य, अर्थ काव्य में उसी प्रकार शोभित होते हैं जिस प्रकार चन्द्रमुखी का लावण्य। काव्य के प्राण रस, भाव आदि व्यंग्यार्थ ही होते हैं। उनकी ध्वनि ही निकलती है। रसों की व्यंजना ही आस्वादनीय होती है।

काव्य के विकास में श्रम, वाणी और यन्त्र का बड़ा महत्त्व है। प्रकृति

ने पशुओं की अपेक्षा मानव को कम शारीरिक शक्ति प्रदान की है, किन्तु श्रमशक्ति के आधार पर उसने असंभव को भी संभव करने की क्षमता प्राप्त कर ली है। श्रम द्वारा ही उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति इस समाज में हो पाती है। यह श्रम मानव के उद्भव के साथ संयुज्ज है।

मानव के सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास में वाणी की शक्ति ने उसके जीवन-पथ को प्रशस्त कर दिया है और इसे उसमें मानवता आयी है और उसकी अभिव्यक्ति के साधनों का निरन्तर विकास हुआ है। सारे शरीर की विभिन्नता में एकता लाने वाला मस्तिष्क है और वाणी के पश्चात् जब लिपि आ गयी तो उसका विकास होने लग गया। वाणी का जन्म आदि मानव की आवश्यकताओं द्वारा हुआ।

सृष्टि में मनुष्य ने अपने यन्त्र और अपनी भाषा का प्रयोग कर प्रकृति पर भी विजय प्राप्त करने की चेष्टा की है और आज वह इस रूप में परिवर्तित हो सका है। आज की भाँति आदि मानव के जीवन में विविधता नहीं थी, और यही कारण था कि उसके लिए जो कला थी वही उसका विज्ञान भी। आदिम जीवन के प्रारंभिक युगों में वाणी के द्वारा अभिव्यक्ति अवश्य हुई होगी और काव्य भी आदि मानव की आनंदाभिव्यक्ति में फूट पड़ा होगा। उसकी रागात्मक अनुभूति और स्वाभाविक अभिव्यक्ति परम्परा से चली आ रही है। आदिम मानव प्रारंभिक अवस्था में अपने शरीर से और प्रकृति की बाह्य वस्तुओं से प्रभावित हुआ। तत्पश्चात व्यक्तित्व और अनुभूति से वह मननशील बन सका। यही कारण है कि दृश्य-काव्य के बाद श्रव्य-काव्य की रचना हुई। आदिम युग में संगीत काव्य से भिन्न नहीं था और न नृत्य संगीत से पृथक था। काव्य में गति, लय, छन्द होता है। संगीत से अलग होकर वाणी सामूहिक आवश्यकता को पूर्ण कर सकती थी। इसीलिए संगीत और काव्य में आदिम युग में कोई भेद नहीं था। वाणी के द्वारा एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से अपने विचारों का आदान-प्रदान करता है, किन्तु काव्य के माध्यम से तो सामूहिक भाव जगत का पारस्परिक सम्बन्ध जुटता है और काव्य का संगीतात्मक रूप सामूहिक संवेदना को उद्भाषित करता है। आदिम मानव के लिए समुदाय ही जीवन था। वह अकेला मर सकता था, लेकिन अकेला जीवित नहीं रह सकता था।[1] आदिम मानव ने ज्वालामुखी, भूकंप, वर्षा, बिजली आदि प्रकृति

---

१ नारायणसिंह भाटी सं० : परम्परा (लोकगीत) जोधपुर, चैत्र संवत् २०१८ (श्री विजयदान देथा : लोकगीत और कविता, पृष्ठ १२६)

के भयंकर प्रकोप का सामना सामूहिक रूप से किया। उसके जीवन की रक्षा के लिए, आने वाली दुर्घटनाओं से बचने के लिए कठिन श्रम ही एक साधन था जो उसे प्रोत्साहित कर सकता था। उसके श्रम, उसकी आवश्यकता ने काव्य को जन्म दिया और काव्य उसके श्रम को, थकान को हलका करता था, जीवन को मधुर बना देता था। आदिम मानव को ऐसा विश्वास था कि प्रकृति उसकी चेतना का अंश है और उसे नियन्त्रण करने के लिए प्रकृति को भी अनुकूल बनाया जा सकता है जिसका सहारा काव्य है। लय गति, छन्द, संगीत और नृत्य द्वारा काव्य में एक रहस्यात्मक शक्ति आती है जो समूह के हृदय को बाँध सकती है। इस प्रकार आदिम युग में काव्य का उद्‌भव हुआ और आज तक उसमें परिवर्तन होता रहा है। मानव में प्राकृतिक भावों के अभाव होने पर ही कृत्रिमता आती है और उसका जीवन सूख जाता है। यही कारण है कि काव्य में सौंदर्य एवं स्वाभाविकता की मात्रा भी धीरे-धीरे घटने लग जाती है।

गीत-काव्य, संगीत और गीत

गीत-काव्य में वैयक्तिक रागात्मक अनुभूति सामूहिक भावों का रूप धारण करती है। उसमें छन्द-गति, शब्दों के अर्थों की लय और भावना की अभिव्यक्ति होती है। उसमें समुदाय को प्रभावित करने की शक्ति होती है। उसकी आत्मा में रसानुभूति है। मनुष्य अपनी वासनाओं, विचारों एवं अनुभूतियों में संजीवित है और प्रेम की उसकी अनुभूति ही उसके जीवन की सार्थकता है। उनमें उसकी मानवता निखरती है।

आज तो गीत- काव्य और संगीत में भी भेद हो गया है। आदिम युग में न तो गीत- काव्य और लोकगीत में अन्तर था, और न नृत्य तथा संगीत में ही। लेकिन धीरे धीरे सभ्यता और संस्कृति ने करवट बदली और सबमें भेद भी आता गया।

संगीत में शब्दों की अपेक्षा स्वर का विस्तार और संकोच होता है—शब्द और अर्थ का स्थान उसमें कम होता है—स्वर-प्रसार ही उसकी प्रधानता है। उसमें स्वर, लय के सामंजस्य और ताल-गति की महत्ता होती है। उस में वाद्य-यंत्रों की आवश्यकता है।

गीत में आत्माभिव्यंजना होती है और अर्थ-शक्ति की विशिष्टता रहती है और नाद-सौंदर्य को भी। काव्य और संगीत के शास्त्रीय नियम से अलग होकर गीत वैयक्तिक आत्मनिष्ठता की अभिव्यक्ति करता है। उसमें रागात्मक वृत्ति,

व्यक्ति से समष्टि की उद्भावना, कल्पना द्वारा भावोत्तेजन, संगीतात्मकता द्वारा रसानुभूति होती है। उसमें व्यंजनाशक्ति अधिक होती है और वर्णनाशक्ति कम। उसमें संगीत और काव्य दोनों का सामंजस्य होता है।

काव्य और लोकगीत

मानव के मन में विशेष परिस्थितियों के कारण सुख-दुःख,आशा-निराशा, उत्साह आदि के सवेगों का उद्रेक होता रहता है और उनकी अभिव्यक्ति के बिना वह रह नहीं सकता। उसकी रचना के लिए उसे शक्ति, निपुणता एवं अभ्यास की आवश्यकता होती है। मानव के जीवन के उच्चतम भावों और रागात्मक अनुभूतियों की कलात्मक अभिव्यक्ति ही काव्य है। काव्य और लोकगीत में कालान्तर में भेद होने लग गया। सम्भवतः मानव भाव और ज्ञान की अभिवृद्धि के कारण ही यह भेद दीख पड़ता है और जहाँ भेद है, वहाँ साम्य भी है। एक ही विषय पर यदि काव्य और लोकगीत लिखे जाएँ तो सम्भव है कि भिन्नता के साथ साथ समानता भी उसमें आ जाय।

लोकगीत गीत-काव्यों और गीतों के अविकसित एवं आरम्भिक रूप हैं। लोकगीत में व्यक्ति गत राग-द्वेष, आशा-निराशा, हर्ष-शोक ही व्यक्त नहीं होते हैं, बल्कि समष्टिगत भावों का भी निरूपण होता है। प्रायः यह देखा जाता है कि लोकगीतों का काव्यात्मक रूप गीत काव्यों में व्यक्त होता है। लोकगीतों में शव्द और अर्थ के साथ ही साथ संगीतात्मक तथा रागात्मक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति है। उसमें संवेदनशीलता एवं आत्मीयता काव्य की अपेक्षा अधिक है। उनमें है भावना और संगीतात्मकता का स्वाभाविक समन्वय।

लोकगीतों का महत्त्व संगीत एवं काव्य की दृष्टि से भी अधिक है। आज का संगीत लोकगीतों की गति पर ही चल रहा है। लोकगीतों के बिना काव्य में भाव कहाँ से पनप सकते हैं। समय के प्रत्यावर्तन में लोकगीत ही कभी कभी काव्य हो जाते हैं और कभी कभी काव्य ही लोकगीत हो जाते हैं। दोनों का अन्तर भी मिट जाता है। दोनों में साम्य आ जाता है। लोक गीतों में लोक मानस के छोटे उल्लास, उमंगे, व्यथा पीड़ा है। उनमें परम्परा से चली आयी हुई दूरदर्शिता रीति-रिवाज हैं और हैं काव्य की रसात्मक अनुभूतियाँ।

मैथिली की काव्य-धारा मैथिलीलोक गीतों के नाद-सौंदर्य, व्यंग्य-विनोद रूपक-योजना और लयात्मक प्रस्फुटन से अति प्रभावित है। कहने का तात्पर्य यह है कि वह भावपक्ष और कलापक्ष दोनों से प्रभावित है। मैथिली के काव्य भावों की गहराई में सनी हुई ताल लय गति के आधार पर ध्वनि माधुर्य

व्यक्त करते हैं। मैथिली लोकगीतों के विशेष कर तिरहुति, समादाउन, बटगमनी, झूमर और चैतावर में प्रेम की भावनाएँ मुखर हो उठी हैं और उन की प्रतीक-योजना से मैथिली काव्य में जो शक्ति आयी है वह हृदय को प्रभावित किये बिना नहीं रह सकती।

मैथिली काव्य की परम्परा विद्यापति काल से प्रारम्भ होती है। यों तो उनके पितामह के दूर के चचेरे भाई ज्योतिरीश्वर ठाकुर थे जिन्होंने मैथिली में 'वर्णरत्नाकर' ग्रंथ लिखा था। इस ग्रंथ को गद्य-काव्य के रूप में लिया जा सकता है। वीरेश्वर ठक्कुर ने छन्दोग दशकर्म पद्धति लिखी जिसका प्रचार आज भी मिथिला में है। इनके पुत्र चण्डेश्वर ने विवाद-रत्नाकर, राजनीति रत्नाकर आदि सात रत्नाकर लिखे। विद्यापति के पिता गणपति ठक्कुर ने 'गंगा-भक्ति-तरंगिणी' लिखी थी। विद्यापति इस वंश में अधिक चमक सके।

विद्यापति से प्रायः पाँच सौ वर्ष पूर्व 'कर्पूरमंजरी'[1] के रचयिता संस्कृत की अपेक्षा प्राकृत काव्य को मधुर मानते थे और इसी से उन्होंने कर्पूरमंजरी प्राकृत में लिखी। विद्यापति को वही प्राकृत सरस नहीं मालूम पड़ी और संस्कृत को जनसाधारण समझ नहीं पाते थे। इसी से उन्होंने देशी भाषा-अपभ्रष्ट अथवा अपभ्रंश में बहुत-सी रचनाएँ कीं, 'जिनमें कीर्तिलता' उन्होंने बीस वर्ष की उम्र में ही लिख डाली थी। इसका समय लगभग सन् १३८० ई० माना गया है। अपभ्रष्ट का अर्थ है बिगड़ी हुई, आदर्श से गिरी हुई। इसके बारे में आचार्य दण्डी ने (छठी शताब्दी ईस्वी) अपनी पुस्तक 'काव्यादर्श' में लिखा है—

आभीरादिगिरः काव्येष्वपभ्रंशतयोदिताः,
शास्त्रेषु संस्कृतादन्यदपभ्रंश इति स्मृतम्।

इससे स्पष्ट है कि आचार्य दण्डी के समय यानी छठी शताब्दी ईस्वी में काव्य में अपभ्रंश का प्रयोग होने लगा था। संभवतः जनसाधारण की बोली अपभ्रंश रही होगी और काव्यभाषा के रूप में उसका प्रयोग प्रारम्भ हुआ था।

विद्यापति की कीर्तिलता की भाषा न तो आधुनिक मैथिली से मेल खाती

---

१. पुरुसा सक्कअबन्धा पाउअबंधो विहोइ सुउमारो।
पुरिस महिलाणं जेत्तियमिहन्तरं तेत्तियामिमाणम्।
—कर्पूरमंजरी, पृष्ठ १-७

है और न संस्कृत ही से। वह मैथिली अपभ्रंश के रूप में दृष्टिगोचर हो रही है। उस पर लोरिक और वर्णरत्नाकर का प्रभाव है। उपमा और उत्प्रेक्षा एवं वस्तु-वर्णन की सामग्री दोनों से प्राप्त हैं। आगे इसका भी उल्लेख किया जारहा है।

मैथिली काव्य की प्राचीनता विद्यापति के रचनाकाल से ८०० ई० पूर्व तक मानी जाती है। ज्योतिरीश्वर ठाकुर के वर्णरत्नाकर के षष्ठ कल्लोल में सिद्ध लोगों का उल्लेख आया है।[1] सिद्ध लोग अपने मत के प्रचार में जहाँ गये वहाँ की भाषा उन्होंने अपना ली। मिथिला में वे आये तो मैथिलो को अपनाया और उसमें कुछ गान लिखे गये। उदाहरणार्थ कुछ ऐसे गीतों पर विचार किये जा सकते हैं। यथा—

केअइ सबब दित पइसइ, पीअर सब्बउ भासे,
आउ बसन्त काह सहि, करिअइ कंतण थाकइ पासे।[2]

इसी से मिलता-जुलता विरह काव्य का भाव विद्यापति ने भी दर्शाया है—

समय वसन्त कंत रहु दुर देस,
जानत विधि प्रतिकूल रे![3]

महायान सम्प्रदाय के सिद्ध लोगों की रचना मैथिली काव्य की प्राचीनता की ओर संकेत करती है। 'गान ओ दोहा' जिसे महामहोपाध्याय श्रीहरप्रसाद शास्त्री नेपाल के दरबार पुस्तकालय से ले आये थे और उसी का प्रकाशन 'बौद्धगान ओ दोहा' के नाम से बंगीय साहित्य परिषद, कलकत्ता द्वारा सन् १९१९ ई० में हुआ था। उसके चर्यापद (८०० से ११०० तक) के बाद से जो साहित्य मिलता है वह मौखिक है। मिथिला की जनता आज तक उसे कंठों में रखती चली आ रही है। इसका उल्लेख सर्वप्रथम हुआ है ज्योतिरीश्वर ठाकुर के (१३ वीं शताब्दी) वर्ण रत्नाकर में 'लोरिक नाचों' नाम से।[4] इससे विदित होता है कि 'लोरिक' की रोचक कथा तेरहवीं शताब्दी के ज्योतिरीश्वर

---

१. ज्योतिरीश्वर ठाकुर : वर्णरत्नाकर, सं० डा० सुनीतिकुमार चटर्जी, सन् १९४०, पृ० ४४
२. राहुल सांकृत्यान : हिन्दी काव्यधारा, पृष्ठ ३२४
३. रामवृक्ष 'बेनीपुरी' : विद्यपति पदावली, पृष्ठ २०१
४. ज्योतिरीश्वर ठाकुर : वर्ण रत्नाकर, सं० डा० सुनीतिकुमार चटर्जी, पृष्ठ २

ठाकुर के समय भी प्रचलित थी। विद्यापति की रचनाओं पर 'वर्ण-रत्नाकर' का कम प्रभाव नहीं पड़ा है। उसके दूसरे कल्लोल में 'नायक-वर्णना' में श्रृंगार की प्रत्येक सामग्री का उल्लेख आया है। 'सखी वर्णना' उसमें इस प्रकार है—

पूर्णिमा क चाँद अमृत पूरल अइसन मुह।
श्वेत पंकज काँ दल भ्रमर वयिसल अइसन आँषि।[1]

ऊपर की पंक्तियों से मिलती-जुलती कुछ उत्कृष्ट पंक्तियाँ विद्यापति ने 'नखशिख' वर्णन में अंकित की हैं—

जुगल सैल-सिम हिमकर देखल,
एक कमल दुइ जोति रे ![2]

स्मरण रहे कि विद्यापति की ये पँक्तियाँ लोचन कृत राग-तरंगिनी में कवि गजसिंह के नाम से उद्धत की गई हैं। (प्रकाशक राज प्रेस, दरभंगा, पृष्ठ ७२) विद्यापति ने सौन्दर्य वर्णन की सूझ वर्ण रत्नाकर से अवश्य प्राप्त की है, लेकिन उनकी अभिव्यंजना की प्रणाली अनूठी है और वे उक्त पंक्तियों में जो कम शब्दों में ही अधिक कह डालते हैं, यह तो उनकी अपनी प्रतिभा और व्यक्तित्व का परिचायक है। उरोज रूपी दो पहाड़ों के बीच मुख रूपी चन्द्रमा का उदित होना एक ही मुख कमल में दो आँखें रूपी ज्योतियों की कल्पना करना उनकी प्रतिभा एवं कलाकारिता में चार चाँद लगा देता है।

ऊपर की पँक्तियों से यह ज्ञात होता है कि लोकगीतों के लिए यह ग्रन्थ (वर्ण रत्नाकर) अनमोल प्रमाणित हुआ है और उसके बाद के कवियों को विशेषतया विद्यापति को इस ग्रन्थ से प्रकाश मिला है। उस समय के कवियों और लोकगीतकारों को उपमा तथा उत्प्रेक्षा की बनी बनायी हुई सामग्री हाथ लग गयी और वस्तुओं की वर्णन-प्रणाली का भी उन्हें परिचय मिल गया था।

विद्यापति की कीर्तिलता में वस्तु-वर्णन शैली पर 'वर्ण-रत्नाकर' की छाप एक प्रसंग से देखी जा सकती है—

'उभारि-उभारि केशपाश बन्धन्ते, सखि जन प्ररन्ते, हसि हरन्ते[3]

---

१ ज्योतिरीश्वर ठाकुर : वर्णरत्नाकर, सं० डा० सुनीतिकुमार चटर्जी, पृष्ठ ३ और ५

२ रामवृक्ष 'बेनीपुरी' : विद्यापति पदावली, पृष्ठ २२

३ डा० बाबूराम सक्सेना : कीर्तिलता : विद्यापति, पृष्ठ ३४

इसी प्रकार 'वर्ण-रत्नाकर' के चतुर्थ कल्लोल को 'वेश्या-वर्णना' में भी कुछ मिलते-जुलते वाक्य हैं—

'केशकइ संमार्ज्जन, अलंकार उपनय दूतीक गतागत, भूजंगक आलाप[1]'

वर्णन की प्रणाली में भले ही भिन्नता दोनों में क्यों न हो, लेकिन इतना तो स्पष्ट है कि विद्यापति के काव्य पर उनके पूर्ववर्ती कवियों की रचनाओं का प्रभाव पड़े बिना रह नहीं सका है।

शिष्ट प्रबंध काव्य की अपेक्षा लोकप्रबन्ध काव्य (कथा-गीत) सरस और सुबोध होते हैं और उनमें घटनाओं, प्रकृति-वर्णन, संघर्ष का वर्णन सरल ढंग से किया जाता है। उनका रसास्वादन शिक्षित और अशिक्षित दोनों वर्ग भली-भाँति कर सकते हैं। मिथिला में कुछ प्रमुख लोककथा-गीत प्रचलित हैं। उनकी कुछ विशिष्टताएँ मैथिली काव्यांशों के उद्धरण द्वारा स्पष्ट की जा रही हैं—

लोरिक का कथागीत

'लोरिक' का रचनाकाल वर्ण रत्नाकर से दो सौ वर्ष पूर्व का है। लिखित न होने के कारण इसमें भाषागत परिवर्तन होता गया है। यह वीर एवं संघर्ष कथागीत-काव्य है और शृंगारिक भी। इसका पात्र है लोरिक और पात्री है सुन्नरि चनैन जो राजा सहदेव की बेटी है। दोनों में प्रेम होता है और वे दोनों नगर से भाग जाते हैं। लेकिन पहली पत्नी मँझारी का विरह-विलाप हृदय विदारक है और रास्ते में लोरिक को चनैन के लिए राजा मोचनि से भिड़न्त होती है। लोरिक युद्धोपरांत घर लौटने पर अपनी दोनों पत्नियों-चनैन और मंझारी के रहने की व्यवस्था अलग-अलग करता है और आनन्द पूर्वक जीवन व्यतीत करता है। संक्षेप में लोरिक की कथा इतनी ही है, किन्तु बड़ा ही रोचक एवं हृदय स्पर्शी वर्णन इसमें किया गया है। चनैन का सौन्दर्य वर्णन यों है—

आँगी में जे झाँगी सोभइ, रत्तन लागल चारि,
सोना टाँकल मखमल सोभइ, गोटा झमकारि।
हँसइ जखन दामिनि छिटकइ, हँसक ठुमकी चालि,
जकरा दिशि उठा के ताकइ, देइ करेजा सालि॥

ऊपर के सौंदर्य वर्णन को देखकर विद्यापति की निम्नलिखित पँक्तियाँ स्मरण हो आती हैं—

---

१ ज्योतिरीश्वर ठाकुर : वर्ण रत्नाकर, सं० डा०सुनीति कुमार चटर्जी, पृष्ठ २७

जहाँ जहाँ पग-जुग धरई, तहिं तहिं सरोरुह झरई ।
जहाँ जहाँ झलकत अंग, तहिं तहिं बिजुरि तरंग ।
कि हेरल अपरुप गोरि, पइठल हिय मधि मोरि ।
जहाँ जहाँ नयन विकास, तहिं तहिं कमल प्रकास ।
जहाँ लहु हास संचार, तहिं तहिं अमिय बिकार ।[1]

उपर्युक्त वर्णन शैली में कितनी सजीवता और सप्राणता है और हृदय को उसमें झकझोरने की कितनी शक्ति है। इनकी स्वाभाविकता और प्रवाह प्राञ्जलता एक सजीव चित्र आँखों के सामने खड़ा कर देती है।

लोरिक में एक स्थान पर और भी उक्ति वैचित्र्य निम्न प्रकार से व्यक्त किया गया है—

सुनिले, सुनिले मोचनि राजा ! बचन प्रमान,
चोरी कैं क किया आनलक दुतिया क चान,
तरबा के नइ धोइनि हैतो, तोहर रानी सात ।
कमलक फूल झमान करइ छइ, जानथि बैजनाथ !

लेकिन सौंदर्य के शिल्पी विद्यापति ने भी अनूठी अभिव्यंजना की है—

अम्बर वदन झपाबइ गोरी,
राज सुनइ छिअ चाँन क चोरी ।
घर पर पहरि गेल अछि जोहि,
अबहि दूखन लागत तोहि ।
कतए नुकाएव चाँन क चोर,
जतए नुकाएब ततहि उजोर ।

सखी राधा से कहती है—हे सुन्दरी ! तुम मुख को अँचल से ढक लो। सुना है इस राज्य में चाँद की चोरी हो गयी है। प्रहरी घर घर ढूँढ़ गया है। इसके प्रकट होने पर इसका दोष तुम्हारे ऊपर ही मढ़ा जायगा। चाँद की चोरी कहाँ छिपा सकोगी। जहाँ छिपाओगी वहाँ ही प्रकाश हो जाएगा। इस अन्योक्ति में भाव-व्यंजना बड़ी सरस हो उठी है। लेकिन उपर्युक्त लोरिक में जो स्वाभाविकता है, वह इसमें नहीं है। जनसाधारण के मर्म को छूने की शक्ति जितनी उस लोरिक में है उतनी इसमें नहीं है।

लोरिक एक पराक्रमी ग्वाला था और था वह बलशाली योद्धा। चनैन

---

१ रामवृक्ष बेनीपुरी : विद्यापति पदावली, पृष्ठ २२

उसके रूपगुण पर मोहित थी। लोरिक के रूपरंग का वर्णन सजीव हो उठा है—

सूप सन-सन कान छलइ, छिट्टा सनक कपार,
डोंका सन-सन आँखि छलइ, दाँत जेना फार,
लटभरि टिक्की फहराइ छलइ, सीना हाथ चार,
मुट्ठी भरि जे डाँड़ छलइ, धोती पेंचदार।

इन पँक्तियों में लोरिक के कान की उपमा सूप से दी गयी है और कपाल उसका टोकरी के समान था। घोंघे की तरह उसकी आँखें थीं और हल के फाल की तरह दाँत थे। चोटी घनी थी और चार हाथ चौड़ा उसका सीना था। उसकी कमर पतली थी और पेंचदार धोती पहने था। वह एक जोरदार पहलवान की सुडौलता का वर्णन बड़े ही आकर्षक ढंग से किया गया है। साधारण दैनिक जीवन में जो व्यावहारिक वस्तुएँ हैं उन्हीं का उपमा में प्रयोग कर स्वाभाविकता लाना लोकगीतकार के लिए बाएँ हाथ का खेल है। इसी प्रकार रन्नू सरदार के पुरुषार्थ का सजीव वर्णन है—

भैंसा सनक मनुसवा गे बहिनो, बज्जर सन गात हे !
मोंछ बहिंगा सन रानू आबइ हे !

रन्नू सरदार का कथा-गीत

रन्नू सरदार मुसहर जाति का प्रतिनिधि माना जाता है और मुसहर लोग उसकी वीरता की पूजा करते आ रहे हैं। उपर्युक्त पंक्तियों में रन्नू के रूप का वर्णन किया गया है—रन्नू भैंसा के ऐसा पुरुष है, बज्र की तरह उसका शरीर है, उसकी मूँछ बाँस की दो फक्की बत्ती की तरह है। पौरुष का ऐसा वर्णन बहुत कम देखा जाता है। कोशी गीत में एक जगह यह उल्लेख आया है—

जखन तों आहे कोसिका हमरो डुबइबे,
आनव हम अस्सी मन कोदारि।
अस्सी मन कोदरिया हे रानी, बेरासी मन बेंट,
आगू आगू धसना धसाय।

कोशी नदी को रोकने के लिए रन्नू सरदार की वीरता का वर्णन अनेकों रूप में किया गया है। कोशी गीत में कोशी नदी और रणपाल के प्रेमालाप का वर्णन अनेक स्थानों पर सुरुचिपूर्ण ढंग से किया गया है।

सलहेस का कथा-गीत

मैथिली का प्राचीनतम कथा-गीत सलहेस का भी है। वह पौराणिक

वीर-कथा गीत है जो मिथिला में अधिक प्रचलित है और इसका संग्रह ग्रियर्सन ने किया है। उन्होंने अंग्रेजी में इसका अनुवाद भी कर दिया है। सलहेस जाति का दुसाध था और राजा भीमसेन (केवलगढ़) का चौकीदार था। उसकी पत्नी मोरंग की थी और उसका नाम दौना मालिन था। उसे एक उद्यान भी था। आज भी मोरंग में (नेपाल की सरहद) यह उद्यान सलहेस उद्यान के नाम से प्रसिद्ध है। दौना मालिन अपनी विरह-व्यथा व्यक्त करती है—

बिना पुरुष सों कोना दिवस गमाएब,
एहि सोग सन्ताप सँ तेजि दितहुँ मोरंग राज,
देस पैसि के स्वामी तकितहुँ।[1]

राजा भीमसेन की रानी हंसावती थी। उसके पलंग और कंठहार को चुहड़मल चोर ले भागा। उसका वर्णन इस प्रकार है—

सेन्ह काटि पहुँचल जाहि घर में, रानी हंसावती सूतलि
सोना क पलंग पर मुसहर घर में, ताहि ठाम घर में पहुँचल
चुहड़मल चोर।

सलहेस को राजा भीमसेन ने उसे पकड़ने के लिए भेजा तो चुहड़मल चोर एक कलाल की दुकान पर मिला—

देखलि सलहेस में कलाल क भट्ठी पर दारू पिबैत गांजा मलैत,
करिआ पगड़ी माथ में, ललकी लाठी हाथी में, घोरुआ माटी देह में।

सलहेस की पत्नी दौना जादू जानती थी और उसने चुहड़मल को पकड़ लाने के लिए आज्ञा दी और सारा माल जेबर आदि सात दिनों के अन्दर ले आने का वचन दिया। वह कसबिन (वेश्या) बन गयी और सलहेस नट बन गया। दोनों की रूप-सजावट का वर्णन है—

मथा क टीक मुड़ाए दिअ, जुलफी रखाए लिअ,
तसरक धोती काछ लगाए लिअ,
उत्तिम रंग ताखी मूड़ बैठा लिअ,
घोरुआ माटी गात लगाए लिअ।
दुइ चारि दंड लगाए लिअ, जे असले नट क भेस लागे।

---

१ ग्रियर्सन : इनट्रोडक्शन टु दी मैथिली लैंग्वेज आफ नौर्थ बिहार, भाग २, पृ० ४ सन् १८८२ ई०

तत्पश्चात दौना मालिन के रूप-लावण्य का वर्णन किया गया है—

तखन दौना मालिन दछिनिक चीर पहिरि लेलि,
पाटी समारि लेलि, नैना काजर पेन्हि लेलि,
सीके-सीके मिसी बैठाए लेलि, चोली पहिरि लेलि,
हाथ में बाँक पहिरि लेलि, पैर में काड़ा पहिरि लेलि,
माँग में तरचक टिकुली पहिरि लेलि, असले कसबीन भेली ।

दौना मालिन चुहड़मल को पकड़ने में सफल हो गयी । राजा की सारी सम्पत्ति उसे प्राप्त हुई । जब चुहड़मल अपने खेमे में सोया हुआ था उसने तब सलहेस से कहा कि चुहड़मल को पकड़ लो । सलहेस अपने भाई मोतीराम और भतीजे कारीकान्तु को साथ लाया था और सात सौ हाथियों को भी । चुहड़मल और सलहेस में जो मल्ल-युद्ध हुआ उसका सजीव वर्णन यों है—

एक बेरि छरपल चुहड़मल, उपर उड़ि गेल सै पचास खसल,
हाथिक हलका क बाहर, लड़े लागल सलहेस से ।
चुड़ामाल जहिना पैसे बकरी में हुड़ार तहीना छरपल
फिरै चुहड़मल, जेंभर छरपै, तेम्हर हाथी कटितै जाए,
सात से मकुना के एकदम सँ काटिदेल तीनि राति दीन,
परल लड़ाई, तखन तीनू बापुत कें खिहारने फिरै—
परती के खेत में ।

चुहड़मल की शक्ति से सलहेस बुरी तरह पछाड़ खा गया । दौना उसकी सहायता के लिए आयी और उसने चुहड़मल चोर को पकड़ लिया । राजा भीमसेन ने चुहड़मल को क्षमा कर दिया और उसे छोड़ दिया । सलहेस तथा उसकी पत्नी दौना मालिन आनन्द पूर्वक रहने लग गये । आज भी सलहेस की पूजा देवता की भाँति होती है । इसमें नारी की सूझ और वीरता का वर्णन सराहनीय है ।

दीना-भद्री का कथा-गीत

दीनाभद्री का कथा-गीत भी ग्रियर्सन द्वारा प्रकाशित किया गया है । दीना और भद्री दोनों भाई थे और मुसहर के देवता माने जाते हैं । दोनों सलहेस की सहायता से फोटरा द्वारा मारे गये ।

दीना और भद्री दोनों स्वतंत्र-प्रिय थे । कनकसिंह धाइम (जादूगर) की तूती चारों ओर बोलती थी । उसके खेतों में हजारों मजदूर मुफ्त खटते थे । वे पेटभर खाना खाकर ही काम करते थे । खेत-रोपनी हो रही थी ।

दीना-भद्री किसी के यहाँ काम न कर खुद शिकार कर के जीवन-निर्वाह करते थे। कनकसिंह का लोहा मान लेने को वे तैयार न होते थे। दीना-भद्री की माँ का नाम था बुधनी। उससे कनकसिंह ने कहा कि तुम्हारे बेटे मेरे खेत में काम करेंगे। वह बोली हमें खेत नहीं है तो क्या ? हम किसी का खेत नहीं जोतती। किसी का ऋण नहीं खाती हैं। जंगली कंद-मूल और शिकार पर हम लोगों का जीवन पलता है। तुम्हारे खेत में क्यों काम करें ? हाँ, कनकसिंह को डिंगरा भी कहते थे। कनकसिंह से मुठभेड़ हुई। कनकसिंह ने अपनी बहिन अलोपी (लुल्ही बाघिन) की मदद लेकर दीना-भद्री को मार डाला। लेकिन सात दिनों के बाद दीना-भद्री दोनों फिर जीवित हो गये। अन्त में कनकसिंह मारा गया। दोनों भाई दीना-भद्री मजदूरी बढ़ाने में ही अपनी शक्ति खो चुके। अन्त में वे दोनों मुसहरों के देवता हो गये और मुसहरों को आज भी विश्वास है कि उनके दादाजी (दीना-भद्री) एक दिन लौट आएँगे। इस कथा-गीत में दीना-भद्री की वीरता का वर्णन बड़ा ही उत्साह-वर्द्धक है और माता के साहस और धैर्य का भी चित्रण सजीव हो उठा है। कुछ जादूटोने की ओर भी संकेत किया गया है।

दीना-भद्री का पिता था कालू। वह जोगिया नगर आया। उसकी दारुण व्यथा का चित्र ऐसा है—

कोनो मुसहरनी नहि कैलक सिंगार।
हमरा मुइनें एक उरसी भेल उदगार।
कालू बबा क कनवे धार बहि जाय,
अम्मा निरसो कनवे विरिछि झरि जाय।

इसी प्रकार बेटी की बिदाई के गीत में भी एक वर्णन है—

बबा क कनले नग्र लोग कानल,
अमा क कनल दहलल भुंइ हे !

दीना और भद्री जब पुनर्जीवित होकर अपने घर उरसी डीह आते हैं, तब उस समय का चित्रण इस प्रकार है—

खोपा झुनकी, फखरि झुनकी, मूसर झुनकी,
सूपा झुनकी, चालनि झुनकी, खुरपी झुनकी,
हाँसू झुनकी, बँसुला झुनकी, काजर सिन्नूर सिंगार कएलक,
जौं जीबैत छलाह दीना-भद्री जोगिया नगर !

बिहुला का कथा - गीत

बिहुला गीत का सँदर्भ यह है कि बिसहरि महादेव की बेटी थीं। वह बारह साल की उम्र में बासुकि नाग से ब्याही गयी थी। वह गौरी को काट लेती थी, लेकिन उसे फिर जीवित भी कर देती थी। उस पर महादेव ने प्रसन्न होकर वरदान दिया था कि चान्दो बनिया के द्वारा उसकी पूजा होगी। जब वह चाँदो शहर में आयी जहाँ पर चान्दो रहता था तो उसने उसकी पूजा करने से असमर्थता प्रगट की—

> होरे हमैं नहिं पुजब रे देबा, कानी बेंगा खौकी रे !
> होरे बेंगबा बेंगवी रे छिको तोहर आहार रे !

इस धृष्टता पर चिढ़ कर विसहरि ने चान्दो से इसके बुरे फल के विषय में कहा—

> होरे बिसहरि पुजब रे बनियाँ भलफल पाइबे रे !
> होरे बिसहरि ना पुजबैं रे बनियाँ बड़ दुख देबौ !

और, चान्दो बनिया के सभी पुत्र सर्प द्वारा डँसे जाने से मर गये। उसका एक पुत्र अन्त में बलाकुमर था जो बिहुला से ब्याहा गया था। बिहुला ने अपने पातिव्रत धर्म से सावित्री की भाँति ही अपने पति को मृत्यु से बचा लिया।

बिसहरि ने बिहुला के पति को, जिसके ब्याह हुए चार दिन ही हुए थे, काटने से विवशता प्रगट की—

> गे कोना डसबै बलाकुमर के, आइ कोना पलँग चढ़बै !

बिसहरि ने तत्पश्चात शेष नाग से प्रार्थना की। उसने जादू की जड़ी-बूटी से नेवले के द्वारा गंभीर निद्रा में उसे रखा। जहाँ पर बिहुला तथा बलाकुमर सोये थे वहाँ वह गयी और बलाकुमर को काटने में सफल हो गयी। अब बिहुला अपने पति को जिलाने में नाना कष्टों का सामना करने लगी। वह अपने मृत पति को इन्द्र, सूर्य आदि देवताओं के पास लें गयी और वहाँ पर उसके पति को पुनः प्राण मिल गये। बिहुला ने अपने पति की रक्षा की। खूब उसकी सेवा की। वह पतिपरायणा नारी थी। रायबहादुर सेन ने बंगला में जब बिहुला-कथा लिखी तो इसका प्रचार बढ़ गया। परन्तु मैथिली का बिहुला कथा-गीत कुछ भिन्न है।

कुमर ब्रजभान का कथा-गीत

यह कथा-गीत आठ अध्यायों में है। पुहुपी नगर के राजा रोहनमल का

भागिनेय कुमर ब्रजभान था। राजा रोहनमल के सात रानियाँ थीं जो सभी बाँझ थीं। राजा से ज्योतिषी ने कुमर ब्रजभान को बुलाने के लिए कहा। कटका की रानी मनाचली की बहिन सोराठी थी। वह उसे राज्य देने को प्रस्तुत थी। हाल ही में उसका ब्याह हुआ था। इसीसे वह अपनी पत्नी को छोड़ कर आना नहीं चाहता था, किन्तु मामा की आज्ञा टाले तो कैसे ? वह राजा के पास आया और उसने उसे आज्ञा दी कि सोरठी को ले आओ और वह गुरु गोरखनाथ के पास गया और उनकी सहायता से वह मैनाक पर्वत को पार कर कटका (कटैया जिसमें दीना–भद्री रहते थे) जंगल में पहुँचा। उसकी यात्रा के इस बीहड़ मार्ग का वर्णन बड़ा ही प्रभावशाली ढंग से किया गया है। उसे बत्सा, लावालंग, सनोपिपरिया, महानद, मालिन के उद्यान, गिदरगंज, दौरा आदि स्थानों से गुजरना पड़ा था और जादू के द्वारा उसे अपने कार्य में सफलता मिली थी। राजा भर्थहरि की कथा की भाँति ही यह कारुणिक है। इसमें साहस, प्रेम, यात्रा, शृंगार और वीरत्व के भाव भरे हुए हैं।

गोपीचंद-मैनावती का कथा-गीत

राजा भर्थहरि और उसके भतीजे गोपीचंद का कथा–गीत बंगला और हिन्दी की भाँति ही मिथिला में भी प्रचलित है। राजा गोपीचंद ने गोरखनाथ का शिष्य होने के लिए अपने राजपाट को भी त्याग दिया था। उसकी माँ ने ऐसा करने से उसे मना किया था, लेकिन उसने माना नहीं। अन्त में उसकी माता मैना रोती है :–

> मैना माता रोये पटकि सिंघासन,
> हंसा चिरई रोये कोठा के अटारी !
> गाँव के रोये रैअत किसान, बाट के रोए बटोही !
> कूआँ के रोये पनिहारिन,
> ऐसन-ऐसन दुलरुआ निकल कए भेलन जोगी ![1]

माता की आज्ञा के अनुसार वह अपनी बहिन के यहाँ बीहड़ जंगलों, पहाड़ों को पार करता हुआ पहुँचा। दैवीशक्ति उसकी सहायता करती थी। उसकी बहिन इस करुण-कथा को सुनकर दुखी हुई––

> मूँगा लौंड़ी सभ खाय हमरा नगरी में,
> जोगी उपास परए।

---

१ **ग्रियर्सन : जरनल आफ एशियाटिक सोसाइटी, बंगाल, भाग १,१८८५, पृष्ठ ३९**

मूँगा लौंड़ी कहली, हम का जाने,
बरुआ बरहमन के, बोलाइ भेजल,
बरुआ बरहमन के बोललन, कि जल्दी दे आबह, जोगी के ।

मूँगा नौकरानी ने गोपीचन्द को पहचान लिया । वह जान गयी कि यह तो रानी का भाई है । इस पर वह बाहर आयी और अपने भाई गोपीचन्द को योगी का रूप देखकर बिलख बिलख कर रोने लगी—

एतना सुनि बहिनी बिरना घर के गुदरी लागे रोये,
माय बिरोगिन, भाइ जोगिया आज,
बैस बैस भैया कें सिंघासन, दुनियाँ दौलत देऊ मँगाय ।

अपने भाई का यह योगी रूप देखकर वह सहन न कर सकी और मर गयी । लेकिन गोपीचन्द ने फिर से उसे जीवित कर दिया । उसकी बहिन की मृत्यु का वर्णन बड़ा ही हृदय बिदारक है—

बहिना उठि बैटल, गली के गली रोये ।
चन्दन के पेड़ धरि रोये । चन्दन के पेड़ जवाब कैलक तुमका रोऊ ।
तोहर भाई जोगी होइ गेल, एतना में बहिनी हाय करे ।
फाटे धरती जाय समाय ।
भाइ बहिन के नाता दुन्नो कै टूट गेल ।

बंगला के कथा-गीत से यह कथा-गीत अधिक मार्मिक है ।

अजुरा का कथा-गीत

अजुरा अपने सात भाइयों में अपने बाप की एक लाड़ली बेटी थी । उसके माता-पिता मर गये थे । उसके भाई परदेश में व्यापार करने के लिए चले गये थे । उसकी करुण-कथा इस प्रकार प्रारम्भ होती है—

कनिएँ चान भेल तँ माए मरि गेल,
आधा चान भेल तँ बाप मरि गेल,
सौसें चान भेल तँ सातो भैआ गेल विदेस ।

अजुरा को उसकी भाभियों ने बहुत सताया । काले कम्बल को सफेद करने के लिए उन्होंने अजुरा से कहा । उसे अपनी ससुराल में भी कम यातनाएँ नहीं उठानी पड़ीं । बारह साल के बाद उसके भाई परदेश से कमाकर लौटे । उन्होंने अपनी बहिन की दयनीय दशा देखी । वे उसे अपने घर ले आये और अपनी पत्नियों को दंड दिया । प्यार से अपनी बहिन को घर में रखा । इस प्रकार उन्होंने बहिन का आदर किया ।

नेवार का कथा-गीत

ग्रियर्सन ने इस कथा के बारे में उल्लेख किया है। शम्भु बनिया के दो बेटे थे। वे बड़े धार्मिक थे और तीर्थाटन करते थे। शोभा जब मोरंग के लिए प्रस्थान करने लगा तब गोकुल यात्रा की कठिनाई से रो उठा, क्योंकि उसकी हाल में ही शादी हुई थी। वह डर गया कि मोरंग की जलवायु अनुकूल नहीं होगी। अतः उसने अपने ससुर के पास पत्र लिखा कि उसकी पत्नी को ले जाय, जिससे वह मोरंग में जाकर व्यापार कर सकेगा। उसने जो पत्र लिखा वह यों है—

सामिक अरजल छथिन्ह कुटुम भल होना !
गौना क भाइ करथीन्ह दिनमा ठेकनमा हो ना !
मोरंग जतरा करबैबैन्हिं धन असबे हो ना,
से हो साँए जी मानिहथि हमर दिनमा हो ना !

जलेछी का कथा-गीत

एक राजा ने पोखर खुदवाया। उसमें पानी नहीं निकला। पुरोहित ने कहा कि अपनी पुत्री की बलि से पोखर में पानी आएगा। जलेछ कुमारी अपने पति के घर से आयी। जैसे उसने पोखर में प्रवेश किया कि पानी भीतर से ऊपर बलबला आया। वह तो उसमें डूबती गयी और पानी बढ़ता गया। इसमें जो करुणा भरे गीत हैं वे लोगों को बिना रुलाये नहीं छोड़ते। जनता की भलाई के लिए राजा ने अपनी पुत्री तक को न्योछावर कर दिया और धर्म की रक्षा की। यह आदर्श इसमें दिखाया गया है।

उपर्युक्त कथा-गीतों में श्रोताओं के मस्तिष्क और हृदय को प्रभावित करने की शक्तियाँ और सरसताएँ भरी हुई हैं इनमें बलिदान, आत्म-त्याग, वीरता, कोमलता, प्रेम एवं वात्सल्य के मधुर भाव हैं। इनमें देवत्व और मानवत्व की उदात्त भावनाएँ एवं कल्पनाएँ अभिव्यंजित की गयी हैं।

डाक-वचन

लोरिक कथा-गीत के बाद जो प्राचीनतम साहित्य है वह डाक-वचन है। इसे हम लोरिक के समकालीन मान सकते हैं। डाक-वचन का प्रचार मिथिला में ही नहीं, बल्कि असम, बंगाल, उड़ीसा और उत्तर प्रदेश में भी है। उसकी भाषा मैथिली का अपभ्रंश रूप है। राय बहादुर दिनेशचन्द्र सेन ने डाक-समय दशम शताब्दी निश्चित किया है। 'डाक' को अन्य प्रान्त में 'घाघ' और राजपूताना में 'डंक' कहते हैं। कृषि सम्बन्धी बहुत-सी आवश्यक

बातें डाक-वचन में कही गयी हैं। प्राचीनता की दृष्टि से डाक-वचन के बाद 'वर्णरत्नाकर' का स्थान आता है।

डाक की भाषा विद्यापति की 'कीर्तिलता' की भाषा से मेल खाती है और उस पर उसके उपदेश का प्रभाव है—

सगुणा सआणा पुच्छिअउँ, तँ पल्लविअउँ आस।
तोन असंझहि मज्जुपुर, विप्प घरहिं करु वास॥[1]

अर्थात् सगुण चतुर लोगों से पूछने पर आशा पल्लवित हुई। फिर संध्या होने के पहले ही नगर के मध्य एक ब्राह्मण के घर बास किया।

विद्यापति ने 'कीर्तिलता' में भाषा, भाव और कल्पना की दृष्टि से निम्न-लिखित प्राकृतिक वर्णन बड़ा ही सजीव किया है—

रअणि विरमिअ, हुअउँ पच्चूस तरणि तिमिर,
सँहरिअ हँसिअ अरविन्द कानन, निन्देनअन,
परिहरिअ उट्ठि राए पक्खर आनन।[2]

रात बीती, सबेरा हुआ, सूर्य ने अंधकार का संहार किया, कमलगण हँसने लगे, नींद ने नेत्र छोड़े, राजा ने उठकर मुँह धोया।

'कीर्तिलता' में कुछ बातें नीति एवं उपदेश की हैं—(कायर के लक्षण)

मानविहूना भोअना, सतुक देअल राज।
सरण पइट्ठे जीअना, तीनू काअर काज॥[3]

अर्थात् मान बिना भोजन करना, शत्रु के दिये हुए राज्य का उपभोग, शरणागत होकर जीना, ये तीनों कायर के काम हैं।

रस के पारखी का प्रमाण

महुअर बुज्झइ कुसुम रस, कव्वक लाउ छइल्ल।
सज्जन पर उअआर मन, दुज्जन नाम मइल्ल॥[4]

भ्रमर ही फूलों के रस का मूल्य समझता है, कला-विज्ञ पुरुष ही काव्य का रस ले सकता है। सज्जन का मन परोपकार में लीन रहता है। किन्तु दुर्जन का मन सदा मलिन होता है।

---

१ डा० बाबूराम सक्सेना : कीर्तिलता, संवत् २०१० पृष्ठ ५२
२ वही, पृष्ठ ५७
३ वही, पृष्ठ २०
४ वही, पृष्ठ ४

अविवेकी के लक्षण

जो अपमाने दुक्ख न मानइ ।
दानखग्ग को मम्म न जानइ ॥
परउअआरे धम्म न जोअइ ।
सो धण्णो निच्चिते सोअइ॥[१]

जो अपमान होने पर दुःख नहीं मानता । जो दानरूपी खड्ग का मर्म नहीं समझता, परोपकार में जो धर्म नहीं देखता वह धन्य है, वह निश्चिन्त होकर सोता है ।

मुसलमान सुल्तान के द्वारा हिन्दुओं पर किये गये अत्याचार का वर्णन 'कीर्तिलता' में यों किया गया है—

धरि आनए बाँभन बटुआ,
मथां चडावए गाइक चुड्आ ।
फोट चाट जनउ तोड,
उमर चढ़ावए चाह घोर ॥[२]

ब्राह्मण के लड़के को पकड़ लाता है और उसके मत्थे पर गाय का बच्चा चढ़ाता है । मस्तक का टीका चाटता है, जनेऊ तोड़ लेता है और उसके ऊपर घोड़ा चढ़ाना चाहता है ।

डाक ने ज्योतिष सम्बन्धी और उपदेशात्मक वचन बहुत कहे हैं । वे कुछ निम्न प्रकार हैं—

ग्राम-वास विचार

सेवक रे सुनु गामक वत्ता,
अख्खर दो गुण चौगुण मत्ता,
गामे नामे एक करिज्जइ,
मुनि अके भाग हरिज्जइ ॥[३]

सुतवृष्ट फलम्

पश्चिम पछबा बहए अबार,
कोदब कुरथी हो बेवहार ।

---

१ डा० बाबूराम सक्सेना : कीर्तिलता, पृष्ठ २०

२ वही, पृष्ठ ४४

३ जीवानन्द ठाकुर : मैथिल डाक, पृष्ठ ४

भंडार कोन बोलए योड़सि,
धोबी धोग्रए कूग्राँ पैसि ।[1]

मैथिली की लोक भाषा में जो उपदेशात्मक भाव और नीति सम्बन्धी निर्देश डाक ने बताये हैं उनका उल्लेख ऊपर किया गया है । डाक ने कुछ साँकेतिक शब्दों में उत्सव और त्योहार का नाम लेकर उपदेश दिया है—

सुतब उठब पाँजर मोड़ा,
ताहि बीचिमें जन्मल छोंडा,
राजा क बेटा राम लाल,
आठ नौ ये 'डाक' नेहाल ।
बतहा क चौदह बतही क आठ,
अन्न त्यागि के जीवन काट ।[2]

ऊपर की पंक्तियों का अर्थ तर्कयुक्त है । 'सुतब' का तात्पर्य यह है हरि-शयन एकादशी और 'उठब' देवोत्थान एकादशी के लिए प्रयुक्त किया गया है । 'पाँजर मोड़ा' का अभिप्राय है पार्श्व परिवर्तिनी एकादशी और 'जन्मल छोंड़ा का अर्थ है'—कृष्णाष्टमी, 'रामलाल' का नाम रामनवमी के लिए आया है और 'आठ-नग्रो' का सम्बन्ध देवीपक्ष में अष्टमी तथा नवमी से है । 'बतहाक चौदह' शिव चतुर्दशी और शिवरात्रि की ओर संकेत करता है और बतहीक आठ' महाष्टमी के लिए प्रयुक्त हुआ है ।

आधुनिक काल में भी मैथिली काव्य में नीति और उपदेश के बहुत से बचन कहे गये हैं । उनका विवरण निम्न प्रकार है—

भिखारी के लक्षण

बिना बजौनहिं भोजघर, जाय करै अछि तंग ।
लाख हँटौनहु नहिं हटै, मांछी ओ भिखमंग ।[3]

नूतन पंडित लक्षण

सीटतथि बूट कमीज छड़ी पगड़ी, पुनि जेब घड़ी, लटकाबथि ।
सार्टिफिकेट क गेंट देखाय, सदा नवका सबकें भटकाबथि ॥

---

१ जीवानन्दठाकुर : मैथिल डाक, पृष्ठ ६

२ कपिलेश्वर झा : डाक वचनामृत, भाग दूसरा, पृष्ठ १६

३ सीताराम झा : सूक्तिसुधा, सन् १६४० ई०, प्रथम बिन्दु पृष्ठ ६

पूजति भेषहि सों सब ठाम, घड़ी पल लाटहुँ के अँटकाबथि ।
नूतन पंडित लक्षण किन्तु, सभा बिच नाँगरि कें सटकाबथि ।।[1]

सामाजिक विषमता पर व्यंग्य

चलथि धनिक बाहर तँ मांथक पाग लगै छन्हि भारी ।
तदपि विचार करथि नहि मन में, बनि अमीर अधिकारी ।।
बोझ गरीबक मांथ लदै छथि, एक तहू पर आँटी ।
क्यौ नहि दीन जन क दुख जानै, धनकै बाजे घाँटी ।।[2]

मैथिली काव्यधारा के प्राचीन युग में विद्यापति ने मैथिली की साधारण जनता के उत्सव त्योहारों और अनेक शुभ अवसरों के निमित्त जो काव्ये लिखे थे वे गोसाउनी, जोग, उचिती, महेशवाणी के नाम से आज भी प्रचलित हैं और वे आज काव्य न हो कर लोकगीत हो गये हैं, क्योंकि एक तरफ तो उनकी वर्णन-शैली बड़ी हृदयस्पर्शी है और दूसरी तरफ तत्कालीन मिथिला की रीति-नीति का परिचय भी मिलता है, साथ ही सरलता और मधुरता के कारण उसकी प्रसिद्ध अत्यधिक हो चली है। तिरहुति, बटगमनी, मान, ग्वालरि आदि उनकी रचनाएँ हैं जो प्रेम से सम्बन्धित हैं। उपासना सम्बन्धी रचनाएँ विशेष कर शक्ति, शिव, विष्णु और गंगा प्रति हैं ।

विद्यापति की कुछ कविताएँ लोकगीत का रूप धारण कर चुकी हैं और जिनका प्रचार बहुत है। उनमें से एक का उद्धरण दिया जाता है—

कुंज भवन सँ निकसलि रे, रोकल गिरिधारी,
एकहि नगर बस माधव हे, जनुकर बटमारी,
छाडू कन्हैया मोर आँचर रे, फाटत नवसारी,
अपजस हो एत नगर भरि हे, [illegible] रअ उप्यारी,
सँगक सखि अगु आइलिरे, हम एकसरि नारी,
दामिनि आए तुलाएलि हे, एक रात अंधारी,
भनहि विद्यापति गाओल रे, सुनु गुनमति नारी,
हरिक सँग किछु डर नहि हे, तोंह परम गमारी ।[3]

---

१ सीताराम झा : सुक्तिसुधा, द्वितीय बिन्दु, पृष्ठ २

२ वही, प्रथम बिन्दु, पृष्ठ २०

३ रामवृक्ष 'बेनीपुरी' : विद्यापति पदावली, पृष्ठ ८६

इसी शैली के आधार पर मध्ययुग के कवि साहिब राम ने भी लिखा है—

जखन आएल रघुनन्दन रे, मारिच मृगमारी,
सून भवन बिनु जानकि रे, बइसल हिय हारी,
कलपि पुछथि रघुनन्दन रे, सुनु लछुमन भाइ।[1]
आजु कहाँ छथि जानकि रे, बन रहलि छपाइ।

एक प्रचलित काव्य है जिसमें विरह - कथा की मर्मिकता पराकाष्ठा तक पहुँच गयी है —

के पतिआ लय जाएत रे, मोरा प्रियतम पास,
हिय नहि सहए असह दुख रे, भेलसाओन मास,
एकसरि भवन पिया बिनु रे, मोरा रहलो ने जाय,
सखि अनकर दुख दारुन रे, जग के पतिआय ?[2]

विद्यापति के समकालीन

अपनी काव्यकला की कमनीयता से विद्यापति अपने युग के प्रतिनिधि कवि अवश्य हैं, लेकिन उनके समय और उनके पश्चात् भी मैथिली में काव्य और लोकगीतों की रचना होती रही। विद्यापति के समाकालीन कवियों में अमियकर, जोवनाथ, भीषम, धीरेश्वर, कंसनारायण, गोविन्ददास तथा श्रीधर कवियां के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इन कवियों ने काव्य-रचना के साथ ही साथ लोकगीतों की भी रचना की हैं। इन कवियों का उल्लेख 'रागतरंगिनी[3] में आया है। वैसे तो इस पुस्तक में ३९ कवियों के नाम आये हैं और उससे विद्यापति के समकालीन और उनके पश्चात् के कवियों की रचनाओं द्वारा मैथिली भाषा के विकास, उसकी समाज-व्यवस्था आदि पर प्रकाश पड़ता है।

विद्यापति ने अवहट्ठ और देशभाषा (मैथिली) दोनों भाषाओं में रचनाएँ की हैं। उनकी कीर्तिलता अवहट्ठ में लिखी गयी है और देशी भाषा के विषय में सोलहवीं शताब्दी के कवि लोचन ने लिखा है—

देशीय भाषा निवद्धाः विद्यापति रचिता गीताः प्रदर्श्यन्ते।[4]

---

१ डा० जयकान्त मिश्र : ए हिस्ट्री आफ मैथिली लिटरेचर, भाग १, पृष्ठ ४४६
२ रामवृक्ष 'बेनीपुरी' : विद्यापति पदावली, पृष्ठ २०३
३ बलदेव मिश्र : मैथिल कवि लोचन कृत राग तरंगिनी, राज प्रेस, दरभंगा पृष्ठ ४
४ वही, पृष्ठ ६

लेकिन विद्यापति ने जो लिखा है —'देसिल बग्रना सबजन मिट्ठा, तें तैसने जम्पग्रो ग्रवहट्ठा, उससे पता चलता है कि देश भाषा और ग्रवहट्ठा दोनों का प्रयोग करते थे।

ग्रमियकर कवि की एक कविता यों है—

वदन मेराए धएलन्हि मुख मंडल,
कमले मिलल जनि चन्दा ।
भमर चकोर दुग्रग्रो ग्रलसाएल,
पीबि ग्रमिय मकरन्दा,
भनइ ग्रमियकर सुनु मथुरापति राधा चरित ग्रपारे ।
राजा सिवसिंह रूपनरायन लखिमा दइ कंठ हारे ॥[1]

भीषम कवि

धैरज धर धनिकन्त ग्राग्रोत कुमर भीषम भान ।
ई रस बिन्दक नरनरायन पति धरमा देइ रमान ॥[2]

और

हरिहर प्रणिमइ भीषम भान,
प्रभावति जग नारायन जान,
प्रभावती देइ पति, मोरंग महीपति,
नृप जग नारायन जान ।

भीषम कवि की तीन कविताएँ रागतरंगिनी में हैं। इनको देखते हुए ऐसा लगता है कि वे भी राजवंशी ही थे। जग नारायण धीरसिंह के पुत्र और भैरवसिंह के भतीजे थे। नरनारायण इन्हीं के भाई थे।

कंस नारायण

सबतरु सुनिग्र ऐसन वेबहारा,
मारिग्र नागर उबर गमारा ।
कंस नरायण कौतुक गाव,
पुन फले पुनमत गुनमति पावै ।[3]

---

१ बलदेव मिश्र : मैथिली कवि लोचनकृत रागतरंगिनी, राजप्रेस, दरभंगा, पृष्ठ ८५
२ वही, पृष्ठ ६९
३ वही पृष्ठ ७७

गोविन्द दास

जपल जनमसन मदन महामत,
विहि सुफलित करु आज,
दास गोविन्द मन कंस नारायण
सोरम देवि समाज ।[1]

गोविन्द दास की दो कविताएँ रागतरंगिनी में दी गयी हैं। उनमें सोरम देइ पति कंस नारायण का नाम है। ऐसा लगता है कि वे भैरवसिंह के पौत्र लक्ष्मीनाथ कंसनारायण के समकालीन थे।

विद्यापति की पतोहू चन्द्रकला भी कवयित्री थी। वह भी रचना करती थी। राजतरंगिनी में उसका नाम इस प्रकार आया है—

वचन मनधर कृष्ण अनुसर, किन्नु कामकला शुभे,
चन्द्रकला हे वचन करसी, मानिनि माधव अनुसरसी ।[2]

विद्यापति के पश्चात् गीतों की परम्परा बनाये रखनेवालों में गोविन्ददास हैं। शब्दों के चयन में वे विद्यापति से भी आगे हैं। शब्दों का सौंदर्य, अनुप्रास की छटा, संगीत की झंकार उनकी रचनाओं में भरपूर हैं। उनमें से एक यों है—

कुन्दन कनक कलित कर कंगन,
कालिन्दी कूल बिहारी ।
कुंचित कचकेसर कुसुमाकुल,
कुल कामिनि करधारी ।[3]

विद्यापति और गोविन्ददास की पदावली के पश्चात् कविवर लोचन कृत 'राग तरंगिनी' का स्थान आता है। प्राचीनकाल से ही मिथिला संस्कृत का गढ़ रहा है। मिथिला के विद्वान संस्कृत या प्राकृत में नाटक लिखते थे और मैथिली में कविता एवं संगीत लिखते थे।

सत्रहवीं शताब्दी में मैथिली के कवि उमापति और रामदास प्रसिद्ध हुए

---

१ बलदेव मिश्र : मैथिल कवि लोचन कृत रागतरंगिनी, राजप्रेस, दरभंगा पृष्ठ १०२

२ वही पृष्ठ ५४

३ नरेन्द्रनाथ दास : कविराज गोविन्ददास झा : मिथिला मिहिर, मिथिलाँक (१९३६) राजप्रेस, दरभंगा, पृष्ठ ४१

और रमापति अठारहवीं शताब्दी में। नन्दीपति, रत्नपाणि, भानुनाथ और हर्षनाथ उन्नीसवीं शताब्दी के कवि हैं।

सत्रहवीं शताब्दी के कवि उमापति ने 'पाराजित हरण' लिखा था और उस समय उनकी प्रसिद्धि अति चमक उठी थी। उनकी कविता मधुर और भावपूर्ण हैं—

कि कहब माधव तनिक विसेसे,
अपनहुँ तन धनि पाब कलेसे,
अपनुक आनन आरसि हेरि,
चानक भरम कोप कत बेरि।

मैथिली प्रबन्ध काव्य[1]

लोकगीतों में भी प्रबन्ध काव्य की भाँति कथा-गीत रचे गये हैं। सर्वप्रथम अठारहवीं शताब्दी के मध्य में मनबोध झा ने कृष्ण-जन्म नामक प्रबन्ध काव्य रचा था। इसमें कृष्ण के चरित्र का अच्छा वर्णन है—

कतो एक दिवस जखन बिति गेल,
हरि पुनि हथगर गोड़गर भेल,
से कोन ठाम जतए नहि जाथि,
कए बेरि अँगनहु सँ बहराथि।

इनके पश्चात् चन्दा झा का नाम विशेष उल्लेखनीय है। उन्होंने मैथिली रामायण की रचना कर मैथिली साहित्य के भंडार को पूरा किया—

बड़ निरदय विधि जानल रे ककरो नहि दोष।
राजन करत भरत एतअ रे केकयि सन्तोष।
बुझि पड़ै राज भवन वन रे, के रहत एहि ठाम।
नृपतिक की गति होएत रे, बिन लक्षमण राम।[2]

चन्दा झा ने सन् १८९८ ई० में रागतरंगिनी के आधार पर कुछ रागों, छन्दों को अपनाया था और सरल मैथिली में रामायण की रचना की थी।

लालदास ने चन्दा झा की रामायण के अनुकरण के आधार पर रामेश्वर रामाण (सन् १९१४ ई०) में लिखी थी। लेकिन चन्दा झा की रामायण की

---

१ डा० जयकान्त मिश्र : ए हिस्ट्री आफ मैथिली लिटरेचर, भाग २ सन् १९५०, पृष्ठ ८२

२ चन्दा झा : मैथिली रामायण, पृष्ठ ११०

राग, लोकोक्ति, मुहावरे और भाषा की प्राँजलता एवं काव्य प्रतिभा इसमें नहीं आ सकी—

लंका जरय अनाथ सन, बढ़ल ज्वाल आकाश,
रवि सन कपि तेहि बीच में, शोभित प्रभा प्रकाश।[1]

रघुनन्ददास ने 'सुभद्रा हरण' नाम का महाकाव्य सन् १९३७-४४ में लिखा था—

शशिक सरस शोभा शोभमानो अकाशे,
अगनित नखताली कें लखू ताहि पासे।

बद्रीनाथ झा कविशेखर ने (सन् १९३७-४२ में) 'एकावली परिणय' की रचना की थी—

नेना दौड़ल कूदिकए, ठेंगा धएने बूढ़।
केओओ रहल ने घर युवा, भए उत्साह विमूढ़।

सन् १९४०-४४ ई० में अच्युतानन्द दत्त ने 'कृष्णचरित्र' प्रबन्ध काव्य लिखा था। तंत्रनाथ झा ने 'कीचक-वध' की रचना की थी—

आन पुरुष प्रति कखनहु स्वप्नहु चित्त,
नहि कीचक कए सकत हमर तन स्पर्श।

गौरीशंकर झा ने माइकेल मधुसूदन के 'मेघनाद-वध' का मैथिली में अनुवाद किया था।

खंड काव्य

मैथिली के खंड-काव्य की रचना प्रगति कर रही है। लालदास ने शंभु-विनोद, गणेश खंड (१९०९-११) और अनेकों व्रत-कथाएँ लिखीं। गुणेश्वरलाल दास ने गज-ग्राहोद्धार (१९१४), सुदर्शनोपाख्यान (१९१४-३१) गंगा लहरी (१९२१), शुक न्यायोपास्ख्यान, गौरीपरिणय (१९२१) और कुछ व्रत कथाओं की रचना कीं। गंगाधर मिश्र के 'नारदमोह' (१९१९) सत्यव्रतोपाख्यान (१९२१) और सुदामा चरित्र (१९३५), अनूप मिश्र का नारद-विवाह और दामोदरलाल दास के शकुंतलोपाख्यान और सावित्री सत्यवानोपाख्यान विशेष उल्लेखनीय हैं। लक्ष्मीपति सिंह ने सत्यव्रतोपाख्यान (१९३४) और पुलकितलाल दास 'मधुर' ने रंभाशुकसंवाद (१९३६) लिखा।

अच्युतानन्द दत्त और वल्लभ झा ने 'ऋतु संहार, परमानन्द झा 'परमार्थी'

---

१ बनखंडी लाल दास : लालदास कृत रामेश्वर रामायण, यूनियन प्रेस, दरभंगा, पृष्ठ ४२

ने मेघदूत (१९३७) भगीरथ झा ने (१९३९) परमेश्वर झा के यक्षसमागम काव्य का और गौरीशंकर झा ने भर्तृहरि निर्वेद का काव्यगत अनुवाद किया।

जनार्दन झा ने जानकी परिणय, देवकृष्ण राय ने भार्गव-विजय, छेदी झा ने कोइली दूती, ऋद्धिनाथ झा ने सती-विभूति, अच्चुत्तानन्द दत्त ने पातिव्रत महिमा. गोविन्द झा ने बनवासिनी, परमानन्द दत्त ने रुक्मिणी परिणय रघुनन्दन दास ने वीरबालक, गनेश्वर झा ने देवीगीता की रचना की। इनके अतिरिक्त बद्रीनाथ ठाकुर की मिथिला ओ मैथिली, आनन्द झा की विरह-वेदना, अच्चुतानन्द दत्त की बताहि, पुलकित लाल दास 'मधुर' की देवी केतकी, काली कुमार दास 'कुमर' की परदेशी, उपेन्द्र झा की सन्यासिनी, मथुरानन्द चौधरी की कास और कृषक पुस्तकें हैं जिनमें कुछ तो प्रकाशित हैं और कुछ अप्रकाशित।

गीत-काव्य

आधुनिक मैथिली में छेदी झा ने गीत गोविन्द का और 'विरहिनीव्रजांगना' का अनुवाद भुवनेश्वर सिंह 'भुबन' ने किया। गोबिन्द झा ने 'व्रजांगना' का अनुवाद किया। गीत-काव्य के जन्म दाता वैसे तो हर्ष नाथ झा हैं, किन्तु चन्दा झा सर्वश्रेष्ठ गीत-काव्यकार है। उनके गीतों का संग्रह गीत शप्तसती और संगीत सुधा नाम से युनियन प्रेस, दरभंगा से प्रकाशित किया गया है। गंगा नाथ ने उनकी अनेकों महेशवाणियों को छपवाया है। सन् १९३७ में बलदेव मिश्र ने 'चन्द्रपद्यावली' का प्रकाशन कराया। उनके गीत-काव्यों में महेशवाणी का प्रमुख स्थान है।

बीसवीं शताब्दी के नवोदित कविगण 'महेशवाणी' से अति प्रभावित हैं। उनमें जीवन झा, विन्ध्यनाथ झा के रघुनन्दन, 'जयमंगल' आनन्द झा के महेश-शतक के नाम लिये जा सकते हैं।

गोसाउनी गीत के रचने में आधुनिक युग में जीवन झा, गणनाथ झा, तुलापतिसिंह, इकरदेश्वरसिंह, दुर्गादत्त सिंह और दीनबन्धु अधिक अग्रसर हैं। ये गीत अनेकों अवसरों पर गाये जाते हैं। यों तो चन्दा झा, जीवन झा, चक्रधर झा, गणनाथ, झा, विन्ध्यानाथ झा, सीताराम झा, मनमोहनदास, बद्रीनाथ झा, काली कुमार दास 'कुमर' ऋद्धिनाथ झा, मुकुन्द झा, छेदी झा ने तिरहुति, समदाउन, चौमासा, लगनी, मलार की रचना भी की हैं जो सरस और भावपूर्ण हैं।

मुक्तक काव्य

संस्कृत और हिन्दी के मुक्तक-काव्यों का अनुवाद मैथिली पद्यों में भी हुआ है। अच्युतानन्द दत्त का भामिनीविलास, जीवनाथ झा का शृंगार तिलक, छेदी झा की आर्यसप्तशती, संस्कृत के भर्तृहरि नीति शतक, चाणक्य शतक, दृष्टान्त शतक का अनुवाद वल्लभ झा ने किया और हिन्दी की 'बिहारी सतसई, का अनुवाद धनुषधारी लाल दास ने किया ।

फारसी, उर्दू और हिन्दी के ढंग पर समस्या-पूर्ति की परम्परा भी मैथिली में चल पड़ी है। आजकल अन्योक्ति और अपह्नुति के आधार पर मैथिली में मुकुरी भी लोकप्रिय होती जा रही है। मुक्तक - काव्य लिखने में सीताराम झा विशेष सिद्धहस्त हैं। उनकी मुक्तक रचनाओं में शिक्षा-सुधा, लोकलक्षण, उपदेशाक्षमाला के नाम प्रमुख हैं और अति लोकप्रिय हैं। मुक्तक के कई प्रकार हैं—अन्योक्ति, लोकोक्ति, अपह्नुति, वक्रोक्ति, व्याजोक्ति, चाटूक्ति एवं काकोक्ति का उल्लेख भी उन्होंने किया है।

मुक्तक-काव्य लिखने में यदुनाथ झा 'यदुवर' (अन्योक्ति शतक) धनुषधारी लाल दास (मैथिली सप्तसती) उपेन्द्र ठाकुर 'मोहन' (अपह्नुति मंजरी जीवनाथ झा (कल्पना) और वेदानंद झा (रत्न बटुआ) प्रसिद्ध हैं।

राष्ट्रीय काव्य

यदुनाथ झा 'यदुवर' द्वारा मैथिली गीतांजलि का संपादन हुआ और मैथिली सन्देश का सम्पादन श्यामानन्द झा ने किया है। राष्ट्रीय काव्य के द्वारा राष्ट्रीय भावनाओं का उदय हुआ—

> जानकि जननि देवि। मिथिले, विजय हो।
> सन्तान विद्वान सभ हो अहाँ केर—
> अतिशय सदाचार भूषित विनय हो।
> सीता क समशुद्धि अति उच्च पति-प्रीति हो।

राष्ट्रीय कविता लिखने में—भानुनाथ झा, चंदा झा, जीवन झा, त्रिलोचन झा, गोनौर झा, पद्मनाभ झा, केदारनाथ झा, मायाप्रसाद मिश्र, ताराचरण झा, पुलकितलाल दास 'मधुर' हीरालाल झा 'हेम' छेदी झा, रामचन्द मिश्र, रघुनंदनदास, कुशेश्वर कुमर, सीताराम झा आदि प्रमुख हैं। राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रवर्तकों में आनन्द झा, कांचिनाथ झा, काशीनाथ मिश्र 'मधुप', बैद्यनाथ मिश्र 'यात्री' (नागार्जुन) और श्यामनंदन झा हैं। इन कवियों की

कविताओं पर लोकगीतों का प्रभाव पड़ा है और इनके द्वारा लोकगीतों की भी रचना होती रहती है।

आधुनिक प्रगीत-काव्य

मैथिली लोकगीतों का प्रभाव आधुनिक प्रगीत-काव्य पर विशिष्ट रूप से पड़ा है। उन पर राजनैतिक और सामाजिक आन्दोलन का प्रभाव भी दृष्टि-गोचर होता है। उनमें नाना प्रकार की राग-रागिनी का उद्भव हुआ है। आज के मैथिली प्रगीत, काव्य अँग्रेजी प्रगीत-काव्य से प्रभावित हैं और छन्द-बंध से मुक्त हैं। प्रगीतकाव्य भी शास्त्रीय काव्य की भाँति ही पढ़े जाते हैं।

भुवनेश्वरसिंह 'भुवन' ने 'गणिका' के विषय में लिखा है। इसमें प्राँजल शैली है, ओज एवं प्रवाह भी कम नहीं है—

चँचल मन अचि चंचल यौवन, चंचल नव नव नव अनुराग कथन,
चंचल विहुँसी, चंचल क्रन्दन, जेना बुदबुद जेना जीवन,
भीतर जरैछ ज्वाला भीषण, पर अहें बाहर सँमलय पवन।

दूध में पानी मिलाने वाली बुढ़िया 'फेकनी' के विषय में यात्री जी की पुस्तक चित्रा में स्वभावोक्ति सजीव हो उठी है—

गै, क्यो नहि औतहु काज, कथीलै छै बेहाल ?
ने खाइ छही ने पिबइ छही, बहिते रहैत छै सदरि काल।
की करबैं तों कैंचा बचाय,
गे, बेटा पीबै छउ ताड़ी।

साधारण जीवन का चित्रण बड़ा ही कलात्मक और सरस जान पड़ता है। कवि ने अपनी प्रतिभा का जो परिचय दिया है वह लोकगीतकार की भाँति ही दृष्टिगोचर हो रही है।

कवि 'मधुप' 'अगहन क रानी' नाम की कविता में प्राकृतिक वर्णन के साथ-साथ विपन्न जीवन का चित्रण करते हैं—

चर-चाँचर चौरिक आँचर मे लुवधल पाकल धान गे,
कातिक मासक सतत उपासक भेटि रहल वरदान गे !
कनइत कनकिरबीक करैछल क्यौ कनियों ने पुछारी,
पैघक पैरौ पकड़ि-पकड़ि भैटै नहिं पैंच उधारी !

मैथिली के लोककवि डा० ब्रजकिशोर वर्मा ने 'कौसर' के वर्णन में सजीव चित्र खींचा है जिसमें मानव जीवन की करुण व्यथा भरी हुई है—

अधजरुआ जारनि सन
झरकल
मुखड़ा सूखल, चोटकल झांझर !
पद्मक दल में
गरसों जल में
मानव झुकल व्यथा सँ जर्जर !

कवि शेखर ने मानव जीवन के सुख-दुःख के विषय में लिखा है—

दुःखक धधरा धधकै सदिखन,
सुख क ने बिजुरी चमकै कहु खन,
जिनगिक कोन छोर पाबअलैं सदिखन नोर बहैए ।
मन ई थिर ने किऐक रहैए ।
हँसि लै छी हमहुँ कहुखन कअ ।
सँग पूरि लै छी कहुखन कअ ।
मुदा सर्दातखन हृदयक धोकड़ी गूड़क मारि सहैए ।
मन ई थिर ने किएक रहैए ।[1]

ईशनाथ झा ने शिव-गौरी के ब्याह के आलम्बन पर मिथिला के जीवन की झाँकी उपस्थित की है । उन्होंने अनमेल विवाह पर प्रकाश डाला है और नचारी शैली को अपनाया है—

गौरा ! कथिलए करब बिआह ।
अपनहि लँगटा, तखन अहाँ केर कोना लाज रखताह !
कतबओ जँ कानब तैओ नहि, घुरि पाछू तकताह !
सुनिअ मनाइनि ! 'ईश' थिकथि ई, एहन ने बर भेटताह !
अनके दुख हरबा लए अपने, छथि ई बनल बताह ।[2]

मिथिला में हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि आरसी ने भी मैथिली लोकगीतों के अनुकरण पर तिरहुति की रचना की है—

कमल नयन चितचोर, सखि हे ! बाँधल प्रेमक डोर !
केओ ने बूझै हमर मन क दुख,

---

१ प्रथम अखिल भारतीय मैथिली साहित्य सम्मेलन, दरभंगा, रचना-संग्रह, कविता भाग, सन् १९५६ ई०, पृष्ठ ११

२ बदरीनाथ झा : मैथिली गीत रत्नावली, पृष्ठ ६५

केओ नहि सखि पतिआय !
जरि जरि मरै शलभ दीपक पर,
प्रीति ने छोड़ल जाय ।
बाट देखैत दिन सांझ भेल सखि, अधरतिया भेल भोर ![1]

और

चख चकोर भख चाहए रे, मुख चान समान,
देखि-देखि कै डर पावए रे, बिजुरी मुसकान ![2]

मैथिली की कवयित्री सीतादेवी ने पूर्वी और पश्चिमी सभ्यता के सम्बन्ध में व्यंग्य-बाण छोड़ा है। नारी और पुरुष के कार्य-कलाप की भिन्नता और उनके दृष्टिकोण पर प्रकाश डाला है—

हमरा हुनका में भेद एतए !
ओ लिखइत रहइत छथि ढड्डर नित अधिक अन्न उपजाबय पर,
हम रोपइ छी निज बाडी में सजमनि, झिमनी, खीरा, कुम्हर,
ओ व्यस्त रहइ छथि विश्व मध्य, होएत बडकाटा नाम कोना ?
हम व्यस्त रहइ छी परिवारिक सम्पन्न करब सब काम कोना ?[3]

प्राचीन काल से ही मैथिली भाषा में काव्य-साहित्य का सृजन होता आ रहा है और उस पर लोकगीतों का प्रभाव पड़ा है। मैथिली संत साहित्य तो लोकगीतों के रूप में ही अभी तक जीवित है। साथ ही हास्य, श्रृंगार और संघर्ष साहित्य भी लोकगीतों की ही देन है।

अर्चना-गीत और स्तुति-साहित्य में लोकगीत ही भरे पड़े हैं। यथा, गोसाउनी, विष्णुपद, एवं महेशवाणी। अतः मैथिली काव्य की परम्परा मैथिली लोकगीतों की परम्परा रही है। विद्यापति जहाँ गा उठते हैं—'अभिनव पल्लव बइसक देल, धवल कमल फुल पुरहर भेल' तो उनके भावों में लोकगीत ही मुखरित जान पड़ते हैं। विद्यापति की सूझ का पता दैनिक जीवन में उनके द्वारा प्रयुक्त लोकोक्तियों में चलता है—'बानर कंठ कि मोतिम माल', बानर मुँहकि सोभए पान,[4] चिंटि गुड़ चपड़लि राड़क पोरि।[5], चन्दा झा ने भी

---

१ लक्ष्मीपतिसिंह : मैथिली कुसुमांजलि, पृष्ठ ७३
२ वही, पृष्ठ ५
३ वही, पृष्ठ ७३
४ रामवृक्ष 'बेनीपुरी' : विद्यापति पदावली, पृष्ठ १३१
५ वही, पृष्ठ १८०

कुछ लोकोक्तियों का प्रयोग अपनी मैथिली रामायण में किया है–'टेंगरा पोठी' चालि दीए तँ रोहुक सीरबिसाय', कानी गाइक भिन्न बथान,' 'बजवहि पड़य गरा पर ढोल।[1]'

मैथिली काव्य परम्परा का पारस्परिक सम्बन्ध छन्द, गति, ताल, संगीत, स्वर-विन्यास आदि की दृष्टि से भी लोकगीतों से जुटा है। यह सम्बन्ध होना स्वाभाविक ही है, क्योंकि मिथिला कृषि प्रधान प्रदेश है और उसकी धरती का सौरभ लोकगीतों में फूट पड़ा है। मिथिला के सभी कवि और लोकगीतकार मैथिली लोकगीतों के रस से, शिक्षा-दीक्षा से अनुप्राणित हैं। प्रत्येक वस्तु का अपना अस्तित्व होता है और उसका सौंदर्य भी विशिष्ट होता है जिसका साहित्यिक मूल्यांकन होना अति आवश्यक है। इसी दृष्टि से इस अध्याय में मैथिली काव्य-परम्परा के साथ मैथिली लोकगीतों के पारस्परिक सम्बन्ध पर यथासंभव प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। इसके बिना मैथिली लोकगीतों का वैज्ञानिक अध्ययन सर्वाङ्गीण एवं न्यायसंगत होना संभव नहीं। इस प्रकार की तुलना की प्रक्रिया कई दृष्टियों से आवश्यक एवं उचित कही जा सकती है।

१ बलदेव मिश्र : कविवर चन्दा झा, पृष्ठ ५५

सातवाँ अध्याय

मैथिली लोकगीतों की काव्यगत विशेषताएँ—कलापक्ष

पद-योजना, अलंकार-योजना, छंद-योजना, रस आदि

७

मैथिली लोकगीतों का कलापक्ष

काव्य में कला का स्थान

इस अध्याय में मैथिली लोकगीतों की काव्यगत विशेषताओं पर विचार करने से पूर्व यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि काव्य में कला का क्या स्थान है और आज तक उसकी क्या मान्यता है। सच तो यह है कि कला के तत्वों में ऐसी विचित्र शक्ति होती है कि वह काव्य के अन्तर्गत छिपे हुए सौंदर्य को निखार देती है और उसे आकर्षक बना देती है। और, काव्य-सौंदर्य से आनन्द की अनुभूति प्राप्त होती है। साधारणतया कला को निम्नलिखित रूपों में विभाजित किया गया है—

१. **सप्रयोजन-कला**—इसमें कला के स्थूल रूप को ही लिया जाता है और इस कला की संख्या असीमित है। सप्रयोजन-कला का रूप मानव के सभी कार्य व्यापारों में दृष्टिगोचर हो सकता है। उदाहरणार्थ—अनेक प्रकार की शिल्प-कला, सम्भाषण-कला, विज्ञापन-कला आदि सप्रयोजन-कला में ही सम्मिलित हैं।

२. **ललित-कला**—इसमें कला के सूक्ष्मतम रूप सन्निहित हैं और इसके अन्तर्गत मानव के कुछ परिमित कार्य-व्यापार ही निरूपित होते हैं। उदाहरणार्थ—काव्य-कला, संगीत-कला, चित्र-कला, मूर्ति-कला और वास्तु-कला,

ललित-कला में गिनी जाती हैं। कला के इन दोनों रूपों के अतिरिक्त कुछ विद्वानों के अनुभूतिमय रूप को भी माना है। कला का यह अनुभूतिमय रूप काव्य में उत्कृष्ट भावों को अभिव्यक्त करने के लिए भी प्रयुक्त होता है।

पाश्चात्य विद्वानों ने कला के जिन रूपों की मान्यता दी है, आजकल हिन्दी में भी उन्हें अनुकरण करने की परिपाटी चल पड़ी है। संस्कृत के आचार्यों ने चौंसठ कलाओं के अन्तर्गत सप्रयोजन-कला और ललित कला को सम्मिलित किया है। उन्होंने काव्य के कौशल प्रधान अंग को कला की मान्यता दी है। काव्य के कौशल प्रधान अंग में प्रहेलिका, समस्या- पूर्ति आदि का स्थान है। कौशल में बुद्धि-तत्त्व की प्रधानता रहती है और कला इससे वंचित नहीं रह सकती। अतः कला का सामान्य अर्थ कौशल ही उद्भूत होता है। आचार्यों ने न तो कला की गणना काव्य में की है और न कला के अनुभूतिमय रूप को ही माना है। कुछ विद्वान् काव्य में कला को अभिव्यंजना की प्रणाली तक ही सीमित रख कर भाषा के कौशल को ही कला मानते हैं और आजकल यह मत अति प्रचलित है। इस दृष्टि से कला के अन्तर्गत अलंकार, शब्द-विधान, वक्रोक्ति के आधार पर कला के दो पक्ष हो जाते हैं—भाव-पक्ष और कला-पक्ष।

कला कार्य का एक साधन है। अभ्यास के बिना कला कुंठित हो जाती है। अतः अभ्यास से ही कला विकसित होती है। किसी कार्य का सुन्दरतम कौशल ही कला की संज्ञा प्राप्त कर सकता है। कला की सार्थकता काव्य को रमणीय बना देने में ही निहित है और काव्य की रमणीयता एवं सुन्दरता उसके भावों की संवेदनशीलता में अभिव्यक्त होती हैं। वस्तुतः काव्य में संवेदन के कौशल को उद्भासित करना ही कला की महत्ता है। काव्य में जिन भावों का निरूपण भाषा के माध्यम से होता है, कला उन भावों और भाषा को चमत्कृत कर देती है। कला के द्वारा ही भाषा का उपयुक्त प्रयोग संभव है और भावों को कल्पना के सहारे कला ही संवेदनशील बनाने की शक्ति रखती है।

काव्य के अन्तर्गत जो भाव संवेदन रूप सन्निहित है उसके प्रकृति स्वरूप को बनाये रखने में कवि-कर्म अपेक्षित और यही कवि-कर्म यथार्थतः कला है और प्रचलित कला को इसी अर्थ में लेना उचित है। इसीसे काव्य के प्रकृत स्वरूप की भली भाँति रक्षा हो सकती है और उसका मान ऊँचा हो सकता है। मैथिली लोकगीतों में कला की अभिव्यक्ति स्वभाविक रूप में हुई है।

मैथिली लोकगीतकारों को अपने लोक गीतों की रचना में किसी शास्त्रीय बंधन की आवश्यकता नहीं पड़ी है। उन्होंने स्वच्छन्द होकर लोकगीतों की रचना की है और 'स्वान्तः सुखाय' का ध्येय ही उनके लिए प्रमुख रहा है। इन लोक गीतों में अनायास ही सरसता और कलाकारिता आ गयी है। मैथिली लोक-गीतकार न तो कवि-कर्म से परिचित है और न मैथिली भाषा के विशेष तत्त्वों से ही। परन्तु उनके लोकगीतों में इतनी सरसता होती है कि उनका आस्वादन कोई भी कर सकता है।

मैथिली लोकगीतों की पद-योजना : भाषा-सौष्ठव, शैली-व्यंग्य और लाक्षणिकता

अनायास ही मैथिली लोकगीतों में भावसौंदर्य एवं माधुर्य की अनुभूति प्राप्त होती है और इसके कारण हैं स्वाभाविक रचना प्रणाली। किसी भी मैथिली लोकगीतकार ने लोकगीतों को लिखने की उत्कण्ठा एवं उत्सुकता से उनका प्रणयन नहीं किया है, बल्कि अनायास ही उनका हृदय किसी विशिष्ट घटना से प्रभावित एवं उद्वेलित हो उठा है और गीतों की रचना की गयी है। इस प्रकार प्रायः सभी मैथिली लोकगीत भावों की प्रवणता लिए हुए सरस एवं सरल हैं और हृदय के मर्म को छूते हैं।

मैथिली लोकगीतों में कहीं कहीं भाव-व्यंजना अत्यन्त ही अनुपम हो उठी है और उनमें व्यंग्य तथा लाक्षणिकता भी आ गयी हैं। इनका स्पष्टीकरण निम्नलिखित मैथिली लोकगीततांशों के उद्धरणों द्वारा किया जारहा है—

आम मजरि मह तूअल,
तैयो ने पहु मोर घूरल।

ऊपर की दोनों पँक्तियों में जो शब्दों का चयन हुआ है वे भाव व्यंजना में बड़े ही सहायक हैं। सभी शब्द अपने आप में परिपूर्ण हैं और वे ठीक स्थान पर सजाये गये हैं। 'मह तूअल' में बड़ी ही सूक्ष्म सूझ है। महुआ गिरता या झड़ता नहीं है। महुए के फूल की गंध बड़ी मादक और तीव्र मिठास लिये होती है। वसन्त के आगमन के समय महुए का फूल प्रातःकाल चूने लगता है। लेकिन लोकगीतकार ने उसे 'तूअल' कहा है। यह कितना युक्तिसंगत है-'तूअब' का अर्थ होता है बिना किसी लस के फूलों का पतन। महुए के फूल में मादकता रहती है। उसमें लस होता है और वह मंद मंद गति से वसन्ती हवा के स्पर्श से धरती पर गिरता रहता है और इसी प्रकार आम की मंजरियाँ भी झड़ती रहती हैं। अतः प्रकृति के कार्य-व्यापार की ओर संकेत कर गीतकार ने शब्दों की शक्ति से विरहिणी की मनोव्यथा की अभिव्यंजना स्वाभाविक रूप में की

है। शब्दों के चयन और उनकी शक्ति तथा अभिव्यंजना प्रणाली के निमित्त और भी कुछ गीतों का उद्धारण यहाँ दिया जाता है—

हे मनाइनि, देखहु जमाय !
शिवक माथ फुटल जटा, आगे माइ ताहि ऊपर नाग घटा[1]।

यहाँ पर 'फुटल जटा' में भी शब्द-शक्ति व्यंजित है। किसी वस्तु का फूट कर भीतर से बाहर आने में फुटल का प्रयोग होता है। मानो, ऊपर से कोई आवरण ढँका हो और भीतर में कोई वस्तु छिपी हुई हो और उस आवरण के हटते ही भीतर की चीज दृष्टि-पथ में आ गयी हो। जटा के साथ 'फुटल' का प्रयोग यहाँ ठीक बैठता है, क्योंकि शिव के जटा से गंगा फूट निकली है।

एक 'मलार' में शब्दों के साथ भावों का सामंजस्य यों किया गया है—

बरिसन चाह बदरबा, हे ऊधो !
खन बरिसय, खन दामिनि दमसय,
खन खन बहै बयरबा ![2]

यहाँ दामिनि के साथ 'दमसय' शब्द का प्रयोग किया गया है। कहीं-कहीं इन्हीं पँक्तियों में 'दमकय' का भी उल्लेख आया है, किन्तु 'दमसय' का प्रयोग एक मैथिली लोकगीतकार ही कर सकता है। मैथिली में 'दमसय' शब्द का प्रयोग उस समय होता है, जब कोई किसी को डाँटकर धमकाता है और डर दिखलाता है। जब विरहिणी को प्रियतम के बिना सभी चीजें डरा धमका रही हैं, सता रही हैं, तो उसे कोई भी बचाने वाला नहीं है और प्रियतम ही परदेश से आकर उसे बचा सकता है। इस दृष्टि से 'दमसय' का प्रयोग उचित जान पड़ता है। 'दमसय' का अर्थ मेघ के गर्जन में भी प्रयुक्त होता है। ठनका ठनकते समय स्वभावतः ही सब भयभीत हो जाते हैं। इन पँक्तियों में 'बदरबा' और 'बयरबा' का भी चुनाव सारगर्भित है। ये भावों को मूर्तिमत्ता प्रदान करते हैं।

नीचे की इस 'उचिती' में ध्वनि और लक्षणा का आभास इस प्रकार है—

हम अबला निरजनि रे !
शशि कें सेवल गुण जानि रे ![3]

---

१ भोला झा : मिथिला गीत संग्रह, : प्रथम भाग, : पृष्ठ ३१

२ बाबू रघुवरसिंह बुकसेलर : नवीन तिरहुत गीत संग्रह, भाग चतुर्थ, पृष्ठ १४

३ भोला झा : मिथिला गीत संग्रह, (प्रथम भाग) पृष्ठ ३६

'शशि' शब्द 'मुख' के लिए प्रयुक्त हुआ है। 'शशि' के सेवल' में एक ध्वनि है। वह यह कि शशि का कार्य है शीतलता प्रदान करना। विरहिणी का प्रियतम शशि की भाँति शीतल और सुन्दर है। उसकी सेवा करने में उसे आनन्द है और वह यह भी स्वीकार करती है कि उससे भले ही कुव्यवहार हो जाय, किन्तु जो सज्जन हैं वे प्रीति करते ही रहते हैं, उसे छोड़ते नहीं। प्रेम में विश्वास करना ही उसे सच्चा प्रेमी बना सकता है।

निम्नलिखित 'चैतावर' में 'लक्षणा' यों है—

चइत मास जोबना फुलायल, हो रामा !
कि सइयाँ नहिं आएल ![1]

अर्थात् जिस प्रकार फूल खिलता है और विकास की ओर बढ़ता है, उसी प्रकार सुन्दरी का यौवन भी विकसित हो उठा है। इस प्रकार 'जोबना' के साथ 'फुलायल' शब्द का प्रयुक्त होना उचित जँचता है।

ध्वनि और व्यंग्य की दृष्टि से एक 'चैतावर' की पँक्तियाँ ऐसी हैं—

बैंगन तोड़े गेलौं, ओहि बैंगन बरिया,
गड़ि गेल छतिया में काँट, हो रामा ![2]

इन पँक्तियों में 'काँट' शब्द लक्ष्यार्थ है। छाती में काँटा गड़ जाने का तात्पर्य विरह-व्यथा की तीव्रता के भावों से सम्बन्धित है। इन पँक्तियों में ध्वनि और व्यंग्य दृष्टव्य हैं।

एक 'समदाउन' गीत से लक्ष्यार्थ का पुष्टीकरण किया जा सकता है—

कथिले रुदन पसारइ नागरि,
कमल-नयन मुरझाय,
के की कहलक सुन्दरि कहु कहु,
सोचहि हंस सुखाय ?[3]

यहाँ पर 'हंस' का प्रयोग बड़े ही मार्मिक ढंग से प्राण के अर्थ में किया गया है।

मैथिली लोकगीतों में लक्षणा और व्यंजना का प्रयोग शब्द और अर्थ में चमत्कार उत्पन्न करने के लिए नहीं होता है, वल्कि अधिक से अधिक

---

१ रामइकबाल सिंह 'राकेश' : मैथिली लोकगीत, पृष्ठ ३०७
२ वही, पृष्ठ ३०६
३ वही, पृष्ठ १८

भावगम्य बनाने के लिए किया जाता है। लोकगीतकार की अनुभूति स्वाभाविक होती है और उसी के आधार पर लोकगीतों की रचना होती है। उनमें मानव जीवन की समस्त रागात्मक भावनाओं की अभिव्यंजना होती है और सुखदुख की भावनाएँ तीव्र रूप में मिलती हैं जिनसे लोकमानस पर उनका गहरा प्रभाव पड़ता है। व्यंग्य मन की चेतन भावनाओं को छूता है और उसके सहारे मनुष्य अपनी पीड़ाओं को भूल जाता है।

मैथिली लोकगीतों में व्यंग्य का प्रयोग भी हुआ है विशेषतया अनमेल विवाह, ननद-भौजाई और भाभी-देवर के संलाप को लेकर बहुत से गीत लिखे गये हैं। मैथिली की नचारी में शिव पार्वती के अनमेल विवाह के बहाने समाज की कुव्यवस्था की और मार्मिक व्यंग्य छोड़ा गया है। इस 'नचारी' में एक कन्या ने अपने बूढ़े पति के प्रति हृदय स्पर्शी व्यंग्य किया है। उस की सखी उसे उत्तर देते हुए कहती है, हे सखो, हजाम ने बूढ़े दूल्हे की खोज की। ब्राह्मण ने बूढ़े को ढूँढ़ कर पसन्द किया। अगुवे की आज्ञा से यह बूढ़ा दूल्हा ब्याह की वेदी पर बैठा और सुन्दरी गोरी से इसका ब्याह होने वाला है। सब कुछ को सजा देने की बात तय होने के बाद वह पूछती है। इसमें कितना व्यंग्य है—

कओन कओन धन छओ आहे बूढ़ वर,
कथि लागि करइछ बिआह, गे माई !

इस पर बूढ़ा वर (शिव) उत्तर देता है—

धन में धन अछि गोला बरदवा,
खेत मधे उपजय भाँग, गे माई !

और बूढ़े वर की यह बात सुनकर वह कन्या आग बबूला हो उठती है और आवेश में झल्ला कर कहती है—

मरथु हजमा, हे मरथु बाभन,
मरथु निर्दय बाबा, गे माई !
डगरे डगरे पिलुआ अगुआ के परउन,
जिनि वर खोजलनि भिखारि, गे माई ![1]

अर्थात् वह हजाम मर जाय, वह ब्राह्मण मर जाय। मेरा कठोर हृदय वाला बाबा भी मर जाय और अगुवे के सारे अंग में पिल्लू पड़ जाय, जिनने ऐसा खूसट और भिखमंगा दूल्हा मेरे लिए तलाश किया।

---

१ रामइकबाल सिंह 'राकेश' : मैथिली लोकगीत, पृष्ठ १७३

इस नचारी में व्यंग्य व्यंजना कैसी ठीक जँचती है। पार्वती की माँ शिव को देखकर यह व्यंग्य छोड़ती है—

दुर दुर छीआ, छीआ, छीआ,
पाँच मुख शोभै छैन, तीन अँखियाँ,
दिगम्बर के भेस देखि फाटे मोरा हिया!

एक तरफ तो बूढ़े वर के साथ कन्या का व्याह कर दिया जाता है और दूसरी ओर कभी कभी कन्या को छोटे वर के साथ व्याह कर दिया जाता है। निम्नलिखित 'झूमर' में इसका व्यंग्य यों है—

बेचबइ में गोल बरदा, किनबइ धेतु गइया,
त दुधवा पिलाय न,
पिया के करवौं जबनमा,
त दुधवा पिलाय न,
पोसिय पाल पिया कें कयलों जबनमा,
त भोग क दिनमा न,
पिया भागल जाय परदेसवा
त भोग क दिनमा न![1]

वह कहती है कि नैहर में सुनती हूँ कि मेरे प्रियतम नादान हैं, उनकी उम्र बहुत कच्ची है। उन्हें दूध पिलाने के लिए गोला बैल बेचकर एक गाय खरीदूँगी और दूध पिला कर उन्हें जवान बनाऊँगी। इस प्रकार छोटी आयु के पति के सम्बन्ध में मिथिला में अनेकों व्यंग्यात्मक लोकगीत रचे गये हैं।

ननद और भाभी के आपस का व्यंग्य प्रायः सर्वत्र चलता है। दोनों की चखचख के मूल कारण गहने हुआ करते हैं। इस सोहर गीत की पँक्तियों में ननद के लालच भाभी की छुद्रता का चित्रण व्यंगात्मकरूप में किया गया है। भाभी कंगन के कारण अपनी तीन ननद को धतूरा पीसकर पिलाती है और उन्हें उन्मत्त बना देना चाहती है। लेकिन ननद कंगन लेने से बाज नहीं आती है और यह व्यंग्यवाण वह छोड़ती है—

इ मति जानुं भउजो बउरलनि, कगनमा मोरा बाँचल हे!
भउजो दलबो करेजवा पर मूंग, कगनमा हम बधइया लेवों हे![1]

एक बार भाई ने अपनी पत्नी को गोरखपुर का कंगन खरीद कर दिया और बहिन को शंख की चूड़ी। लेकिन बहिन गोरखपुर का कंगन चाहती हैजसे

---

१ राम इकबाल सिंह 'राकेश': मैथिली लोकगीत, पृष्ठ २२२

उसकी भाभी से न मिलने पर वह भाई से अन्त में शिकायत करती है। इस पर भाई कहता है—हे, बहिन तुम धीरज धरो। मैं शीघ्र दूसरा विवाह करूँगा और तुम्हें कंगन उपहार में दूँगा। अपने पति को क्रोधित देख कर भाभी ननद के प्रति व्यंग्य छोड़ती है और कंगन निकाल कर फेंक देती है। वह गुस्से में कहती है—हा! ननद तो हाथ धोकर मेरे पीछे पड़ गई है—

ललना, जखन सुनलि मोर भाउज सुनलो ने पावह रे,
ललना! हाथ सँ फेंकल कँगन सउतिनि जर लागल रे![1]

मिथिला में देवर और भाभी के आपस का व्यंग्य भी बड़ा ही हृदयग्राही और सरस होता है। इस 'सोहर' में पुत्र न होने पर भाभी को देवर सलाह देता है और व्यंग्य में कहता है कि अक्षत, और बेलपत्र से तुम नित्य प्रातः काल सूर्य की पूजा करो। तुम्हारी मनोकामना पूरी होगी। इस पर उसकी भाभी अपनी सफल कामना के सम्बन्ध में कहती है—

सुरुज मनाबहुँ ने पयलि, सुरुज मोरा पूत देल हे,
देओर जनमल हमरा होरिलवा, बहिनि के ओंठगन हे!

लक्ष्मण और सीता का आलम्बन लेकर निम्नलिखित 'सोहर' में एक व्यंग्य इस प्रकार दिया गया है—

सुनु सुनु सीता भउजो हे, सुनु भउजो बचन हमार,
हमें तोहि अयोध्या देखाएब, गोतिनि राखत तोहर मान!
अम्मा के कोरा पइसि सुतवह, हे बिसरि जयता श्रीराम![2]

अर्थात् हे भाभी सीते, सुनो! मैं तुम्हें अयोध्या ले चलूँगा। तुम्हारी गोतिनी (उर्मिला आदि) तुम्हारी देखभाल करेंगी। मन बहलाने, दुःख दूर करने के लिए तुम माँ की गोद में सो जाया करो और प्रवासी राम का स्मरण क्षण भर के लिए भूल जाओ।

मैथिली लोकगीतों में चित्रोपमता, सजीवता एवं सरलता का अभाव नहीं है। पार्वती अपनी सखी से कहती है कि गणेश ने आज मेरे पति बूढ़े दिगम्बर की कुंडी में रखी हुई भंग को भूमि पर गिरा दिया है। वे आएँगे तो मैं क्या उत्तर दूँगी? और जब बूढ़े दिगम्बर को इसकी सूचना मिल गयी तब उन्होंने गणेश को कैसे फटकारा इसकी चित्रोपमता इस प्रकार है—

---

१ राम इकबाल सिंह 'राकेश' : मैथिली लोकगीत, पृष्ठ, ५६

२ वही, पृष्ठ, ७२

आँखि तरेरि बुढ़ा देल दमसाई,
गणपति गेल पराई !
चहुँ दिशि खोजथिन बुढ़ा दिगम्बर,
कोइ नै देत बताई,
आइ बुढ़ा रुसता, गे माई ![1]

कहीं कहीं 'लोकोक्तियाँ' गीतों की पँक्तियों को प्रभावशाली बना देती हैं। उनमें लोकोक्तियों के द्वारा भावाभिव्यंजना की शक्ति आ जाती है

आब डाँरी जाएत ससुर देस राज,
दूध क माँछि होयवौं हे ![2]

और भी

जकरा दुआरि पर **गंगा बहय,**
से कोना कुँइयाँ पर जाय,[3]
'समय पावि तरुवर फल रे कत सीचहुँ नीर ![4]

अलंकार-योजना

मैथिली काव्य में जिस प्रकार अलंकारों की कमी नहीं है उसी प्रकार मैथिली लोकगीतों में भी। लोकगीतों में जितने भी अलंकारों का प्रयोग किया गया है। वे स्वाभाविक रूप में अपने आप आ गये हैं। मैथिली लोकगीतों में मुख्यतः उपमा, रूपक अतिशयोक्ति, अन्योक्ति, प्रतीप, निदर्शना आदि अलंकारों का व्यवहार किया गया है। अर्थालंकारों के अतिरिक्त शब्दालंकार आ गये हैं। उपमा अलंकार की अधिकता है, क्योंकि सर्वसाधारण को समझने में इससे सुविधा होती है। यहाँ पर कुछ अर्थालंकारों और शब्दालंकार का उल्लेख किया जा रहा है जो मैथिली लोकगीतों में स्वाभाविक रूप से चले आये हैं—

अर्थालंकार

उपमा

निम्नलिखित 'लोरिक' कथागीत में उपमा का प्रयोग लोकगीतकार की कल्पना और प्रतिभा का परिचय देता है। लोरिक का सौंदर्य वर्णन यों है—

---

१ **राम इकबाल सिंह 'राकेश' : मैथिली लोकगीत, पृष्ठ १७५**
२ **वही, पृष्ठ १८५**
३ **वही, पृष्ठः २११**
४ **बाबू रघुवरसिंह बुकसेलर : तिरहुति गीत संग्रह, (भाग दो) पृष्ठ ७**

सूप सन सन कान छलइ, छिट्टा सनक कपार ।
डोंका सन सन आँखि छलइ, दाँत जेना फार ।।

यहाँ लोरिक के कान की उपमा सूप से दी गयी है और उसके कपाल की उपमा टोकरे से दी गयी है । उसकी आँखों की उपमा घोंघे से दी गयी है और दाँत की उपमा हल की फाल से दी गयी है । इसमें कलाकार की साधारण सूझ और प्रखर कल्पना का अनुमान लगाया जा सकता है ।

नीचे की समदाउन में बेटी पति के घर जाते समय अपनी मनोव्यथा व्यक्त करती है और इसमें साधारण जीवन में व्यवहृत वस्तुओं की उपमा दी गयी है—

बाँस कोंपर सन भाय हम तेजल,
कमल फुलसन बाप,
पुरइन दह सन माय हम तेजल
छुटि गेल बाबा केर राज ![1]

अर्थात् मैंने बाँस की कोंपल के समान भाई को छोड़ दिया और कमल के फूल की भाँति पिता को छोड़ दिया । पुरइन से हरे भरे सरोवर के समान माता को त्याग दिया और बाबा के सुखमय राज्य से भी मेरा विछोह हो गया । यहाँ पर 'बाँस कोंपर' से जो भाई को त्यागने की उपमा दी गयी है वह बहुत ही उपयुक्त है और इसमें बहुत बड़ी सूझ भरी हुई है । साधारण जीवन में जिन वस्तुओं का व्यवहार ग्रामीण अधिक करते है, उन्हीं की उपमा देकर गीत के भावों को उद्भासित किया गया है ।

नीचे की 'तिरहुति' में उपमा का प्रयोग बड़ा ही मार्मिक हुआ है :—

वन ज्यों डोलै बतसन हो, जल बिच डोलै सेमार,
हम धनि डोलौं मोहन बिनु हो, जेहन पुरइन पात ![2]

यहां पर हवा के झोंके से वन के कंपित होने, जल के बीच सेवार के कंपन से और कमल के पत्ते के डोलने से जो अनूठी उपमाएं दी गयी हैं वे द्रष्टव्य हैं और वे वियोग-व्यथा को व्यक्त करने में सफल सिद्ध हुई हैं ।

इस 'समदाउन' की दो पंक्तियाँ अनूठी उपमा से भरी हैं :—

डाँरि उघारि जब देखलन्हिं धिया,
काँकरि जकाँ हिया फाट !

मैथिली में काँकरि ककड़ी को कहते हैं । हृदय फटने की उपमा ककड़ी से दी गयी है । इसमें बहुत बड़ी सूझ दीख पड़ती है ।

गाँव के आस-पास जो चीजें होती हैं उन्हीं की उपमाओं द्वारा इस 'श्यामाचकेवा' के गीत में बहिन अपने भाई के रूप का वर्णन करती है :—

जइसन धोबिया क पाट, तइसन भइया क पीठ,
जइसन रेशम क रेश, तइसन भइया क केश,
जइसन आमक फाँक, तइसन भइया क आँखि।[1]

ऊपर की पंक्तियों में भाई की पीठ की उपमा धोबी के पाट से, उसके केश की उपमा रेशम के रेशे से और उसकी आँखों की उपमा आम की फाँक से दी गयी है। इन पंक्तियों में लोकगीतकार की प्रतिभा निखर उठी है। इस तरह की उपमाएँ बड़े से बड़े प्रसिद्ध कवियों की सूझ के बाहर की बात है। ऐसी व्यावहारिक उपमाओं के द्वारा ही लोकगीतकार महाकवियों से आगे बढ़ जाते हैं और जन-मानस को आनन्द विह्वल कर देते हैं। उनकी रचनाओं का प्रभाव सीधे हृदय पर पड़ता है।

रूपक

मैथिली लोकगीतों में कहीं कहीं रूपक अलंकार भी अनायास ही आ गया है। एक 'श्यामा-चकेवा' के गीत में इसका संकेत इस प्रकार है :—

माटी केर दियरा, पटम्बर सुत बाती,
नेहवा के तेलवा, जरए सारी राती[2]।

अर्थात् मिट्टी का दीप है जो शरीर के रूप में चित्रित है और उसमें रेशम की बत्ती मन के भावों के रूप में है और प्रेम रूपी उसमें तेल है। इन दोनों पंक्तियों में उपमेय को उपमान के रूप में दिखाया गया है और दोनों एक से ही जान पड़ते हैं। इसी प्रकार एक 'बटगमनी' में भी रूपक का उल्लेख है :—

आस क लता लगाओल सजनी, गे!
नैनक नीर पटाय[3]!

यहाँ पर आशा रूपी लता को नैनों के अश्रु रूपी जल से सींचा गया है। नीचे की 'तिरहुति' में रूपक का स्पष्ट रूप निखर पड़ा है :—

---

१ राम इकबालसिंह 'राकेश': मैथिली लोकगीत, पृष्ठ ३७२

२ वही, पृष्ठ ३८२

३ रघुवरसिंह बुकसेलर : नवीन तिरहुत गीत संग्रह, प्रथम भाग, पृष्ठ ६

नयन सरोवर, काजर नीर,
ढ़रकि खसल सखि, धनिक शरीर ![1]

यहाँ आँख रूपी तालाब है, और उसका पानी काजल के रूप में है जो सुन्दरी के शरीर पर वियोग-व्यथा के कारण ढल-ढल कर गिर रहा है।

नीचे के 'लग्न-गीत' में 'साँग रूपक' का प्रयोग भावों को व्यक्त करने में बड़ा ही ठीक जँचता है। एक पारिवारिक जीवन का वर्णन विभिन्न प्रकार के आभूषणों के द्वारा किया गया है और पवित्र प्रेम की उद्‌भावना व्यक्त की गयी है। एक पत्नी अपने पति से कहती है—

माँग के टीका प्रभु तोहे छहु,
चन्द्रहार सासु दुलरइतिन,
बाजुबंद देवरानी हे !
पुत मोरा नयना के इजोरवा,
ननद नवरंग चोलि है !
भइंसुर माँग के टिकुलिया,
एहो सब अभरन हे ![2]

ऊपर की पंक्तियों में पारिवारिक जनों और नाना आभूषणों में समानता द्वारा बड़ा ही रोचक वर्णन किया गया है। सुन्दरी अपने पति को मांग का टीका समझती है, देवर को शंख की चूड़ी के रूप में देखती है, सास को गले का चन्द्रहार मानती है, देवरानी को बाजूबन्द जानती है और पुत्र को अपनी आँखों की ज्योति के रूप में देखती है, अपनी ननद को नवरंगी चोली मानती है और भैंसुर को मांग की टिकुली कहती है। इस प्रकार लोकगीतकार ने एक अपूर्व सांग रूपक बाँध कर अच्छा उदाहरण प्रस्तुत किया है। ऐसी सूझ कविताओं में नहीं देखी जाती और यही कारण है कि कविताएँ लोक मानस को स्पर्श करने से वंचित रह जाती हैं।

अतिशयोक्ति

नीचे की 'समदाउन' में भावाधिक्य को व्यक्त करने के लिए यह अतिशयोक्ति द्रष्टव्य है—

---

१ राम इकबालसिंह 'राकेश' : मैथली लोकगीत, पृष्ठ २३४
२ वही, पृष्ठ १४६

बेअवा के कनइत में गंगा बहि गेल,
दमदा के हँसइत में चादरि उड़ि गेल।[1]

यहाँ पर बेटी के रोने में गंगा का बह जाना और दामाद के हँसने में चादर का उड़ जाना अतिशयोक्ति की ओर संकेत करता है।

इस मलार में एक विरहिणी अपनी सखी से कहती है कि मैं अपने प्रियतम के विरह में इस प्रकार सूख गयी हूँ कि जो अँगूठी मेरी अँगुली में कसी हुई थी वह आज मेरी कलाई का कंगन बन गयी है। इस गीत की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

जेहो मुनरी छल आँगुरि कसि कसि,
सेहो भेल हाथ क कंगन।
हम सँ प्रीति तेजल मनमोहन,
कुब्जा जीव कैं बैरन।[2]

नीचे के सोहर में अतिशयोक्ति का प्रयोग युक्तिसंगत जान पड़ता है—

ललना, लहकि लपट धुँधकार, जलय तन छिन छिन हे,
ललना, उठत करेजवा सँ आह, गगन जिनि धधकय हे![3]

विरहिणी कहती है कि विरह की ज्वाला धू-धू कर धधक रही है और मेरा शरीर उसमें प्रति क्षण जल रहा है। कलेजे से विरह की आग निकल रही है। हाय, कहीं यह आसमान न जल जाय। ऐसी सूझ लोकगीतकारों की ही हुआ करती है।

अन्योक्ति

निम्नलिखित बटगमनी में वियोगिनी अपने प्रियतम के सम्बन्ध में प्रस्तुत 'भंवरा' का नाम लेकर इस प्रकार उसे कोस रही है। इसमें अन्योक्ति का अनूठा प्रयोग हुआ है—

एते दिन भँवरा हमर छल, सजनी गे!
आब गेल मोरंग देश।
मधुपु पिअहु लोभायल सजनी गे।
मोरा किछु कहियोने गेल।[4]

---

१ राम इकबाल सिंह 'राकेश' : मैथिली लोकगीत, पृष्ठ १८०
२ वही, पृष्ठ ६०
३ वही, पृष्ठ ३१३
४ वही, पृष्ठ २८५

इस 'योग' में अन्योक्ति इस प्रकार है—

एहन सुग्गा नहिं पोसिय, नेह लगाविय,
सुगवा हैत उड़ियाँत, अपन गृह जाएत !

यहाँ पर सुग्गा प्राण के रूप में है और जब शरीर अन्तिम अवस्था को पहुँचगः, तो प्राण जहाँ से आये हैं वहाँ चले जाएँगे। प्राण का संकेत प्रियतम के रूप में भी है। इस प्रकार की अन्योक्ति कहीं-कहीं दार्शनिक भावों के रूप में लोकगीतों में भी पायी जाती है।

प्रतीप

लोरिक कथा-गीत में 'चनैन' के सौंदर्य का वर्णन 'प्रतीप' के रूप में इस प्रकार किया गया है—

तरबा के नइ धोअइन हेतइ, तोहर रानी सात,
कमलक फूल भमान करइ छइ, जानैथ बैजनाथ !

हे माचन राजा ! चनैन की सुन्दरता के सामने तुम्हारी सातों रानियाँ तो उसके पैरों का धोवन भी नहीं हैं। उसकी सुन्दरता को देख कर कमल का फूल भी मुरझा जाता है। इस प्रकार कमल का फूल जो कि उपमान है उसको नीचा दिखाकर उसके सौंदर्य का वर्णन किया गया है।

निदर्शना

लोरिक में 'चनैन' के सौंदर्य वर्णन करते समय गीतकार ने इन पँक्तियों में उपमेय के गुण का उपमान में आरोपित कर 'निदर्शना' का अज्ञात रूप में प्रयोग किमा है—

हँसइ जखन दामिन छिटकइ,
हँसक ठुमकी चालि !
जकरा दिस उठा कै ताकइ,
दइ करेजा सालि !

इस 'तिरहुति' में भ्रमालंकार का निरूपण बड़ा ही रोचक हुआ है। एक सुन्दरी दर्पण में अपना मुँह देखकर उसे चन्द्रमा समझती है और भ्रम से अपने वक्षस्थल को कमल समझ लेती है और केशपाश को बादल समझ लेती है—

अपनुक आनन आरसि हेरी,
चान क भरम कोप कत बेरी,
भरमहु निजकर उर पर आनी,

परसे तरस सरोरुह जानी,
चिकुर निकर निज नयन निहारी,
जलधर जाल जानि हिय हारी ।

शब्दालंकार

मैथिलीगीतों में कहीं-कहीं शब्दालंकार भी आ गये हैं । उनमें अनुप्रास और पुरुक्ति प्रकाश की अधिकता है ।

अनुप्रास

चमकत चपल चहुँ दिशि रे[1] ।
सिर सँ ससरत साँप, दहो दिशि जाएत हे[2] ।
झींगुर झझकत चहुँ दिशि, सजनी गे,
कोयल कुहुकत मोर [3] ।
भसम **अंग**, शिर **गंग** तिलक शशि[4] ।
आँगी में ज **झाँगी** सोभइ । (लोरिक)

ऊपर की पंक्तियों में अनुप्रास की छटा देखी जा सकती है ।

पुनुरुक्ति प्रकाश

सुन्दरअ सुन्दरअ वन, **सुन्दर सुन्दर** घन,
सुन्दरअ सुन्दरअ सभ, गाछ रे कहरिया ।
नदिया क **तीरे तीरे** तुलसी क गाछ[5] ।
जुगुति जुगुति ब्रजनारी, आहो राम[6] ।

उपर्युक्त काले अक्षरों में पुनुरुक्ति प्रकाश अनायास ही आ गया है ।

छन्द-योजना

मैथिली लोकगीतों में स्वर संगीत की झंकार के कारण मात्राओं और वर्णों की गणना पर ध्यान नहीं दिया गया है । उनकी रागात्मिका वृत्ति की अभिव्यक्ति मधुर एवं मर्मस्पर्शी भावना वलित संगीत में होती है और उनमें रस

---

१ राम इकबालसिंह 'राकेश' : मैथिली लोकगीत, पृष्ठ २५१
२ वही, पृष्ठ १५४
३ वही, पृष्ठ २६४
४ वही, पृष्ठ १५६
५ वही, पृष्ठ ३४६
६ वही, पृष्ठ ३४८

ही प्राण है। भावों में रस का सामंजस्य होने पर गीतों की धारा उमड़ पड़ती है। न तो उनमें अलंकार का चमत्कार रहता है और न शब्दाडम्बर ही। हाँ लोकगीतों की शैली अपनी निराली होती है और कुछ भिन्न रूप लिये हुए होती है। उसकी भाषा, रस एवं भाव के अनुरूप ही ढलती रहती है।

लोकगीतकार पिंगल के पचड़े में नहीं पड़ते। उनके गीत लय-ताल-गति में बँधे अवश्य रहते हैं, किन्तु छन्दोबद्ध नहीं होते हैं और इसी से इन गीतों की परम्परा संगीतात्मक छन्दों से जोड़ी जा सकती है। प्रायः गानेवाले कुछ स्वरों को उदात्त और अनुदात्त लय को खींच कर यति-भंग दोष नहीं होने देते। मैथिली में यों तो तुकान्त लोकगीतों की कमी नहीं है, लेकिन कुछ अतुकान्त भी हैं। उदाहरणार्थ—दीन-भद्री, सलहेस आदि कथा-गीत लिये जा सकते हैं।

साधारणतया मैथिली लोकगीतों के छन्द वर्णावृत की अपेक्षा मात्रिक हैं। मात्रिक छन्दों में मात्राएँ गिनी जाती हैं। जिस प्रकार काव्य में कुछ मात्रिक छन्द होते हैं और कुछ वर्णावृत होते हैं, उसी तरह लोकगीतों में भी। जितने भी लोक गीत हैं वे सभी गेय हैं। इसीलिए छन्द पर ध्यान कम दिये जाते हैं। लेकिन स्वर-साधना, ताल-लय-गति और तदनुरूप भाव-व्यंजना पर विशेष ध्यान दिया जाता है। बहुत-से लोकगीत की रचना पूर्व गीतों की छन्द योजना के लक्षण के आधार पर होती है जिनमें सोहर, झूमर, बटगमनी, मलार आदि प्रमुख हैं और कुछ गीतों के छन्द परिवर्तित होते रहते हैं—जैसे, तिरहुति, समदाउन, नचारी, मधु-श्रावणी आदि।

कुछ मैथिली लोकगीतों के छंदों के लक्षण

सोहर

गोखुला में नन्द के लाल मधुरबँसी बजाय हे !
तलना, नाचि-नाचि बजावय, गोपिके रिझावय हे !

इन पंक्तियों में २६ मात्राएँ और । ऽ । तथा ।ऽ।। पर यति है। सोहर गाते समय 'ललना' से टेक प्रारम्भ होती है। सोहर छन्द का प्रयोग रामलला लहछू की रचना में तुलसीदास ने भी किया है और मैथिली सोहर प्रायः मिथिलाकी ललनाओं द्वारा ही रचे गये हैं। जितने भी सोहर हैं पिंगल के अनुसार उनमें का ठीक से मिलान होना संभव नहीं है और उनकी तुक नहीं मिलती। लेकिन गाते समय वे सोहर गीत मधुर और लययुक्त मालूम पड़ते हैं।

झूमर

यह झूमर छन्द भी पुराना है और अधिकांश झूमर अनमेल, लम्बे लम्बे चरणों

में लिखे गये हैं । झूमर का अर्थ है—झुमाना या मस्ती में नचाना । झूमर भी प्रायः महिलाओं द्वारा लिखी गयी हैं । झूमर हिंडोले पर बैठकर विशेषतया गाया जाता है —

सोने क झारी गंगाजल पानी,
पिउ पिया पानी पिलाउ जल्दी सँ,
दिल अति व्याकुल भेल गरमी सँ ।

इस झूमर में १६ मात्राओं पर यति है । उसके बाद अठारह मात्राएँ हैं और नीचे की पँक्तियों में भी अठारह मात्राएँ हैं ।

कोन फूल फूले आधी आधी रतिया,
कोन फूल फले भिनसार, मधुवन में !

ऊपर की दो पँक्तियों में २२ और २१ मात्राएँ हैं ।

बटगमनी

बटगमनी का तात्पर्य है—पथ पर गमन करने वाली । इसमें काफी प्रवाह रहता है और 'सजनी' की टेक से ताल - गति प्रारम्भ होती है—

।।। ।।। ।। ।।।।
जखन गगन धन बरसल सजनी गे !
। । ।।।। ।। ऽ।
सुनि हहरल जिव मोर ।
।।। ऽ। ।। ऽ। ऽ।
प्रान नाथ दुर देश गेल सजनी गे !
।। ऽ। । ऽ। ऽ।
चित भेल चन्द्र चकोर !

इस बटगमनी के गीतांश में 'मोर' और 'चकोर' की यति ठीक बैठी है और भावों तथा भाषा की भी इसमें प्राञ्जलता है । इसके ऊपर की दोनों पँक्तियों के प्रत्येक चरण में १२ और ११ पर यति है और कुल २४ मात्राएँ हैं ।

मलार

प्राचीन लोकगीतों में 'मलार' का भी स्थान है । इसमें छंद लय के साथ ही साथ संगीत का पुट बेजोड़ है । इस पावस की ऋतु में नारी और पुरुष दोनों गाते हैं—

। । ऽ ऽ।। ऽ। ।ऽऽ
सखि रे तेजल कुँज बिहारी,

S I I   I S I   I I I   I I S II
आएल अषाढ़   विरह   मदमातल
I I   S I I   I I S S
नहि   देखिय   गिरिधारी ।

इसके ऊपर के चरण में १६ मात्राएँ हैं और दूसरी पंक्ति में १८ और १२ मात्राएँ हैं । इस प्रकार १६ के बाद ३० मात्राओं पर इसकी तुक बैठती है । मलार के भी कई रूप हैं ।

तिरहुति

मिथिला का विशेष गीत 'तिरहुत' है । यह भी काफी प्राचीनतम गीत है और परम्परा से प्रचलित है । इसके छंद और स्वर माधुर्य से भरे हैं—

प्रथम एकादस दय पहुँ गेल,
से हो रे बितल कतेक दिन भेल !

इसमें दो दो पँक्तियों का एक चरण है और दोनों पंक्तियों की अन्तिम तुक एक-सी है । पहले दो दो पंक्तियों का एक एक चरण होता था, लेकिन धीरे धीरे चार चार पंक्तियों का एक एक चरण गतिबद्ध हो गया और प्रत्येक चरण की पहली तथा दूसरी पँक्तियों की तुक मिलाई जाने के अतिरिक्त दूसरी और चौथी पंक्तियों की तुक भी मिलाई जाने लग गयी है :

I I I   S I I   S I   S I I
पहिनि   चुंदरि   चारु   चंदन,
I I I   I I I I   I I I   S I I
चकित   चहुँदिसि   नयन   खंजन,
S I I   S I   I S I   S I I
देखल   द्वार   कपाट   लागल,
I I   S   S I I   S
हरि   ने   जागल,   रे ![1]

निम्नलिखित 'तिरहुति' में छन्द का पालन और भी ठीक ढंग से हुआ है—

सुन्दरि चललिह पहुँ घर ना,
हँसि हँसि सखि सब कर धर ना,

---

१ राम इकबाल सिंह 'राकेश' : मैथिली लोकगीत, पृष्ठ २३६

जाइतहु लागु परम डर ना,
जेना शशि काँप राहु डर ना।[1]

समदाउन

'समदाउन' में स्वाभाविकता है और है करुण रस की धारा। यह बेटी की बिदाई के समय खास कर महिलाओं द्वारा गायी जाती है और प्रायः उन्हीं की ही रचना है। यह भी प्राचीनतम छन्द है—

। । ऽ   । । । ऽ । ।   । ऽ ऽ ऽऽ   । ऽ
बड़ रे   यतन सँ   हम   सिया जी के   पौसलौं
ऽ ऽ । । ऽ ऽ   ऽ ऽ   ऽ ।   ऽ ऽ । । ऽ
सेहो रघुवंसी   नेने   जाय, आहे सखिया।

ऊपर की पँक्तियों में २५ और २५ मात्राओं पर यति है और कुल ५० मात्राएँ हैं। समदाउन में सखिया, आहे, हे, की टेक से गाने की परम्परा है और यह बड़ा ही मार्मिक गीत है।

नचारी

नचारी के छन्द रोचक और प्रभावोत्पादक हैं। उनकी मात्राएँ भी ठीक हैं—

वर देखि सबके लागल टकाटक,
विधि ककरो ने सक,
पाँच मुख, तीन नेत्र; आगि भकाभक,
चन्द्रमा ललाट शोभइन, गंगा झकाझक !

मधुश्रावणी

प्रारंभिक मधुश्रावणी के चरणों की मात्रा निश्चित रूप से नहीं थी, गीत की प्रत्येक पंक्ति भिन्न-भिन्न मात्रा की होती थी। तुक, यति और लय के बन्धन से पुरानी मधुश्रावणी (मधु साँवनी) मुक्त थी। उसमें भिन्न-भिन्न मात्राएँ होती थीं। गीत छह या सात खंड की पंक्तियों में बँधे थे—

सावन बिसहर लेला अवतार,
भादव बिसहर भेला जुआन,,
आसिन बिंसहर खेले झिझरी,
कातिक बिसहर गेला अलसाय !

---

१ राम इकबाल सिंह राकेश : मैथिली लोकगीत, पृष्ठ २४४

किन्तु मधुश्रावणी में वह पुरानी शैली अब बदल गई है और उसका प्रत्येक चरण पिंगल की दृष्टि से कुछ ठीक उतरता है—

लहु लहु धरु सखि बाती,
धड़कए कोमल छाती !
लहु लहु पान पसारह,
लहु लहु दृग दुहुँ झाँपह !

इन पंक्तियों के पहले चरण में बार बारह मात्राओं की यति से अंत में दो गुरु (ऽ ऽ) और कहीं कहीं दो लघु (। ।) का आरंभ हुआ है। इसमें स्वरों की गति प्रवाहित होती है और संगीत की लहरी थिरकती है।

ऊपर के उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि मैथिली लोकगीतों में स्वाभाविक ढंग से किसी न किसी रूप में छंद की मर्यादा अवश्य रखी गयी है और उनमें रागात्मिका वृत्तियों का अभाव नहीं है।

रस

लोकगीतों की आत्मा रस है। इसके बिना इनका कोई महत्त्व एवं अस्तित्व नहीं। इनका रसोद्रेक भी श्रोताओं के हृदय में सरलता से होता है और इनका आस्वादन भी मधुर होता है, क्योंकि भाव और भाषा दोनों का चित्रण सहज एवं सरल होता है।

मैथिली लोकगीतों में विशेषतया श्रृंगार, करुण, हास्य और अद्भुत रसों का निरूपण हुआ है और लोरिक, सलहेस आदि कथा-गीतों में वीर रस की प्रधानता है।

श्रृंगार-रस के लोकगीतों में प्रेम के अनिवर्चनीय रूपों का निरूपण किया गया है। करुण - रस के गीतों में मृत्यु के गीत, समदाउन तथा विरहिणियों के विरह वर्णन के गीत प्रमुख हैं। लग्न-गीत, नचारी, जट्ट -जटिन, श्यामा-चकेवा के गीतों में हास्य और अद्भुत रस के पुट पर्याप्त हैं। उक्त रसों की परख के निमित्त कुछ मैथिली लोकगीतांशों के उद्धहरण दिये जा रहे हैं—

श्रृंगार-रस

संयोग श्रृंगार

निम्नलिखित फाग में श्रृंगार-रस सहज रूप में व्यक्त है—

सगर राति पिया बँहिया मरोरलन्हि,
बढ़निया छुअल नहि जाय !

सइयाँ बेदरदा मरमो ने जानै,
बढ़निया छुअल नहि जाय ![1]

शृंगार-रस का स्थायी भाव रति है। स्त्री-पुरुष के मिलने और बिछुड़ने के कारण उनके मानसिक विकारों में परिवर्तन के अनुसार शृंगार-रस के दो पक्ष हैं—संयोग और वियोग। संयोग-शृंगार में मिलन, संभाषण दर्शन, स्पर्शन आदि का वर्णन होता है और वियोग-शृंगार में दोनों के अलग होने की करुण-दशा का मार्मिक निरूपण।

वियोग-शृंगार

वियोग-शृंगार के तीन प्रकार हैं- पूर्वराग, मान और प्रवास। नायिका का प्रियतम प्रवासी हो गया है। वह अपने ही शरीर को देख कर विरह के कारण भयभीत हो गयी है। दर्पण में अपने ही मुख को देख कर वह चन्द्र समझती है। अपने वक्षस्थल पर भ्रम से अपने ही हाथ रख कर उसे वह कमल समझती है :

कि कहु सखि हम विरह विशेषे,
अपनहु तनु धनि पाव कलेशे,
अपनुक आनन आरसि हेरी,
चान क भरम कोप कत बेरी !

करुण-रस

करुण-रस का स्थायी भाव शोक है। मिथिला में समदाउन और मृत्यु-गीत करुण-रस से ओतप्रोत हैं—

समदाउन

इस गीतांश में बेटी की बिदाई के समय उसके करुण विलाप का मार्मिक चित्र उपस्थित किया गया है—

नहिरा के मुँह हम देखवइ कोना आब,
नहिरा के सपना करयले, रे कहरिया !
बाबू जी के मुँह हम देखब कोना आब,
चाची कोना बिसरब हाय, रे कहरिया !

---

१ राम इकबाल सिंह 'राकेश' : मैथिली लोकगीत, पृष्ठ २९५

मृत्यु-गीत

सुन्दर देखि देखि जनु भुलू, हे सखिया !
इहो प्राण गिध वन खाय !
इहो प्राण छीअइ रामा कागत पुड़िया,
पनियाँ पड़ैत गलि जाय !

कबीर ने भी ऐसा ही कहा है—

रहना नहिं देस बिराना है ।
यह संसार कागद की पुड़िया बूँद पड़े घुल जाना है ।।

हास्य-रस

लग्न-गीत

हास्य-रस का पुट इस 'लग्न-गीतांश' में इस प्रकार है—

दुलहा देखन मे छथि छोट, विद्या गुगन मे छथि मोट,
दुलहा अहाँ लिय खाउ बरफी, कोबर में मिलत असरफी ![1]

दाम्पत्यजीवन में हास्य-विनोद का समावेश प्रायः होता ही रहता है । एक लग्न-गीत में दूल्हा अपनी दुलहिन से हट कर सोने के लिए कहता है, हट कर बैठने को कहता है, क्योंकि सुन्दरी के पसीने से उसकी चादर मैली हो जायगी। इसमें दूल्हा जरा अपने को शिष्ट और सभ्य समझता है और मान करता है । इस पर दुलहिन रूठ कर नैहर को चलती है। इस लग्न-गीत की कुछ पंक्तियाँ यों हैं—

आशुर सुतु आशुरबइसु कन्या सुहवे,
घाम सँ चादर होयत मइल हे !
अतना बचनिया जब सुनलन्हि कन्या सुहवे,
रूसलि नइहरवा के जाथि हे !

बूढ़े शिव के रूप को लेकर खूब हँसी उड़ायी गयी है । इस नचारी में हास्य-रस भरा हुआ है—

गाल छइन बोकटल,
मुँह छइन चोकटल,
मुँह मधे एको गो ने दाँत गे माई !

---

१ राम इकबाल सिंह 'राकेश' : मैथिली लोकगीत, पृष्ठ १४०

सउसे देह बुढ़बा के थर-थर कँपइन,
पुरुष बड़ भोगिग्रार गे माई ![1]

अद्भुत-रस

नचारी

यह 'नचारी' हृदय में एक कुतूहल उत्पन्न कर देती है। आश्चर्य के भावो का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

अमिय चुबिय भूमि खँसत, बंघम्बर जागत हे !
होयत बघम्बर बाघ, बसहा के खायत हे !
सिर सँ ससरत साँप दहो दिसि जाएत हे !
कार्तिक पोसल मयूर सेहो रे धरि खायत हे ![2]

उपर्युक्त पंक्तियों का यह सन्दर्भ है कि गौरी ने शिव से नृत्य करने के लिए कहा। इस पर शिव ने उत्तर दिया कि नृत्य के वेग के कारण अमृत की बूंदें टपक-टपक कर धरती पर गिरेंगी और निर्जीव व्याघ-चर्म सजीव हो उठेगा और बेल को खा जायगा। जटा में लिपटे हुए सर्प ससर कर दशों दिशाओं में फैल जाएँगे और कार्तिक का मयूर उन्हें पकड़ कर निगल जाएगा। इस प्रकार की अनुपम उक्ति आश्चर्य में डाल सकती है।

वीर-रस

लोरिक

कटरा घोड़ा का वर्णन 'लोरिक' में वीर-रस से ओतप्रोत है :—

तर छोड़इ धरती घोड़ा, ऊपर आसमान,
बीच बीच चिल्होड़ि मंडरान,
बीच बीच मंडराइ, गोगरा के धार,
तजवीज तजवीज दुसाध,
तजवीज बोलइ, दइयै ललकार !

सलहेस

वीर रस का प्राचुर्य 'सलहेस के कथागीत में भी है :—

एतइ बात चुहरमल सुनैयै,
तरवाक लहरि मगजि गे चढ़ैयै,

---

१ राम इकबाल सिंह 'राकेश' : मैथिली लोकगीत, पृष्ठ १७२
२ वही, पृष्ठ १५४

उड़गी कुढ़री चाप मुरैठा,
गाफिर फिरै, छुरी कटार बगलतर राखे !
पित्तै चूहर सब चीज डाहैयै,
सब चीज चुहरा तब डाहि देल !

मैथिली लोकजीवन में कलापक्ष की स्वाभाविकता

मिथिला में लोकजीवन जिस वातावरण में पला है उसी के अनुकूल लोकगीत रचे गये हैं और इन गीतों में तत्कालीन सामाजिक अवस्थाओं का चित्रण किया गया है। यों तो प्रत्येक लोकगीत में कोई न कोई रस अवश्य होता है जो हृदय पर प्रभाव डालता है। मानव-जीवन में जो सुख दुःख, करुणा, वेदना उदारता, सहानुभूति, संवेदना, प्रेम आदि के भाव है उनको जीवित रखने का श्रेय लोकगीतों को ही दिया जा सकता है। मिथिला के लोक-जीवन में करुण-रस की अभिवृद्धि अपेक्षाकृत अधिक हुई है और इन लोकगीतों ने मिथिला की प्राचीन संस्कृति को आज भी सुरक्षित रखा है। आज नयी सभ्यता के युग में मानव हृदय के रस की धाराएँ सूखी जारही हैं। उसे लोकगीतों के द्वारा ही पुनः प्रवाहित किया जा सकता है। लोकगीत मानव के हृदय और मस्तिष्क दोनों पर प्रभाव डालते हैं। उनके रस से मिथिला रसान्वित है और यही कारण है कि उसके लोक जीवन को सरस बनाने में मैथिली लोकगीत सहायक सिद्ध हुए हैं और शिक्षित बनाने में भी अग्रसर हैं।

मैथिली लोकगीतों में कला द्वारा प्राकृतिक सौन्दर्य निखर उठा है। उनमें ध्वनि और व्यंग्य की कमी नहीं है। शास्त्रीय नियमों से उन्मुक्त उनकी व्यंजना में स्वाभाविक सरसता आ गयी है। संस्कृति के द्वारा मानव में ध्वन्यात्मक व्यंजना की शक्ति उद्भूत हुई है। जो व्यक्ति जितना ही सुसंस्कृत होता है; उसकी व्यंजना की प्रणाली भी उतनी ही अधिक ध्वन्यात्मक होती है। इससे यह निश्चित होता है कि मिथिला का लोक जीवन सुसंस्कृत है और है शिष्ट।

आठवाँ अध्याय

उपसंहार

८

उपसंहार

मैथिली लोकगीतों के अध्ययन का दृष्टिकोण

भारतीय संस्कृति की विशिष्टता और प्राचीनता को सुरक्षित रखने में मिथिला का महत्त्वपूर्ण स्थान है। मिथिला की अपनी सामाजिक, सांस्कृतिक धार्मिक, साहित्यिक एवं ऐतिहासिक परम्पराएँ हैं और हैं उनकी विशेषताएँ। इन परम्पराओं को बनाये रखने में मैथिली लोकगीतों को ही अधिक श्रेय दिया जा सकता है। उनमें मिथिला के लोक जीवन के सुख-दुःख के भाव भरे हुए हैं और ये भाव जीवन के नाना रूपों में अभिव्यक्त हुए हैं। इनमें केवल अतीत काल की गौरव-गरिमा के ही गुण-गान नहीं हैं, बल्कि इनमें नवनिर्माण करने की प्रेरणा और शक्ति भी कम नहीं हैं। अतः सामाजिक विकास की दृष्टि से मैथिली लोकगीतों के मौलिक संदेश को समझना अति आवश्यक है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के पिछले अध्यायों में कुछ विविध मैथिली लोकगीतों के उदाहरणों द्वारा मिथिला को संस्कृत की मूल प्रेरणाओं का स्पष्टीकरण किया गया है और विभिन्न प्रकार के मैथिली लोकगीतों का वैज्ञानिक ढंग से वर्गीकरण किया गया है। इससे उनकी उपयोगिता का महत्त्व और भी बढ़ गया है और उनके संकलन की प्रणाली में भी नयी सूझ और प्रेरणा मिलने की

सम्भावना है। मैथिली लोकगीतों के पूर्वकालिक संकलन तथा मेरे नूतन संकलन के आधार पर ही यह शोध-कार्य सम्पादित किया गया है।

उच्च और मध्य वर्गों में जो लोकगीत प्रचलित हैं उनका संकलन तो प्रायः हो चुका है और मुद्रण भी यथासम्भव हो गया है, किन्तु निम्न वर्ग में जो लोकगीत प्रचलित हैं, उनका संकलन अभी तक नहीं किया गया है। मैंने ऐसे संकलन की विशिष्टता पर ध्यान दिया है और उनकी मार्मिकता को जानने का प्रयास किया है। सच तो यह है कि ऐसे मैथिली लोकगीत ही अपनी प्राकृतिक अवस्था में आज भी अक्षुण्ण बने हूए हैं और पाश्चात्य शिक्षा तथा संस्कृति के प्रभाव से दूर रह कर अपनी परम्पराओं के साथ सम्बन्ध जोड़े हुए हैं और ये ही मिथिला की संस्कृति की धरोहर हैं जो निम्न वर्ग के पास परम्परा से चली आ रही है। जैसी अनुभूति किसी घटना विशेष के कारण इस वर्ग को मिलती है और वह उसे स्वाभाविक रूप से व्यक्त करता है, वैसी अभिव्यंजना अभिजात वर्ग के लोगों के द्वारा नहीं हो सकती। वे तो धीरे-धीरे लोकगीतों को खोते जा रहे हैं और उनके रसानन्द से वे बंचित होते जारहे हैं।

मैथिली लोकगीतों के गुण-दोष-विवेचन

उच्च और मध्य वर्गों के मैथिली लोकगीतों में संगीत का माधुर्य अधिक है और वे समयानुकूल ही गाये जाते हैं। उनको गाने में किन्हीं ताल या वाद्य यन्त्रों की आवश्यकता कम पड़ती है और उनमें करुण-रस की मात्रा अधिक पायी जाती है। इन दोनों वर्गों में विशेषतया सोहर, सम्मरि, झूमर, बटगमनी, तिरहुति, समदाउन, नचारी, महेशवाणी, विष्णु-पद, गोसाउनि, छठ, मलार, फाग, बारहमासा आदि के गीत गाये जाते हैं और निम्न वर्ग में - चाँचर, नदी के गीत, साँप के गीत, देवास, गैंयाँ, सलहेस, दीना-भद्री, रन्नू सरदार आदि के गीत अधिक प्रचलित हैं। उनमें स्वाभाविकता और मौलिकता अपेक्षाकृत अधिक देखी जाती हैं।

निम्न वर्ग के लोकगीतों की विशिष्टिता यह है कि उनमें संगीत और नृत्य दोनों का समन्वय हो जाता है और दोनों साथ साथ चलते हैं। परन्तु उच्च और मध्य वर्गों के लोकगीतों में संगीत और नृत्य अलग हो जाते हैं। कुछ मैथिली लोकगीतों में प्रकृति से नैसर्गिक सम्बन्ध स्थापित करने की भावनाएँ और कल्पनाएँ दृष्टिगोचर होती हैं। किसी चित्र को अतिरंजित करने में मैथिली लोकगीतकार बड़े ही सिद्धहस्त हैं। वे अपने लोकगीतों में जरा-सी कोई चीज लेकर बड़ा ही चमत्कार पैदा कर देते हैं और उनके कहने का ढंग निराला होता है। उनकी भाषा सरल होती है और वह भावभंगिमा को व्यक्त

करने में समर्थ होती है जिससे लोकगीतों की स्वाभाविकता निरन्तर बनी रहती है और उनमें से रस छलकता है। यद्यपि इन लोकगीतों में वाल्मीकि, कालिदास की भाँति ओजस्वी स्वर और चमत्कार नहीं होते हैं, तथापि प्रसाद, ओज, गुण, माधुर्य एवं उदात्त भावनाओं की उनमें कमी नहीं होती है। उनके उपमान सजीव होते हैं। उनकी ध्वनि-व्यंग्म-लाक्षणिकता का कोई भी कवि सामना नहीं कर सकता। उनमें लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रयोग उपयुक्त होता है जिनसे शब्द-शक्ति बढ़ जाती है और शिक्षित तथा अशिक्षित दोनों वर्गों के लोग इन लोकगीतों का रसास्वादन करते हैं। अतः मैथिली लोकगीतों को कलाहीन एवं कल्पनाशून्य कहना उचित नहीं। इनसे तो जीवन में नाना प्रकार की प्रेरणाएँ और भावनाएँ मिलती हैं। इनसे बहुत कुछ (जीवन-विकास शिक्षा-शिक्षाएँ नीति-नियम के लिए) लिये जा सकते हैं और सीखे जा सकते हैं। इन लोकगीतों में जीवन की शक्तियों को बढ़ाने की अपार क्षमता है।

मिथिला कृषि प्रधान प्रदेश है। यहाँ के किसान सामन्तवाद से बुरी तरह पिसे गये हैं और वे उससे संघर्ष करने में असमर्थ रहे हैं। इसलिए उनके हृदय की आकुलता, विवशता की कुण्ठाएँ लोकगीतों में भी अभिव्यक्त हुई हैं और यही कारण है कि उनके गीतों में प्रायः करुण-रस की प्रचुरता है। लेकिन श्रम करने वाले मिथिला के नारी और पुरुष के लोकगीतों में करुण-रस के भाव कम पाये जाते हैं और उनमें उल्लास एवं उमंग के भाव ही अधिक मुखरित हो उठे हैं।

ये तो हुईं गुण की बातें। अब मैथिली लोकगीतों के दोष के सम्बन्ध में भी ध्यान आकर्षित करना आवश्यक प्रतीत होता है। मैथिली लोकगीतों की पहले तो दो तीन पंक्तियाँ बड़ी मार्मिक और कलात्मक होती हैं, किन्तु उनके अन्त में शिथिलता आ जाती है और कभी-कभी अन्त में भावों की उद्भावना अच्छी रहती है और पहले प्रारम्भ की शैली मँजी हुई नहीं रहती। पूरे गीतों की आत्माभिव्यंजना सुन्दरतम ढंग से नहीं हो पाती है। उनमें कला की कमी खटकती है। सस्ती भावुकता और प्रचारात्मक भावना की अधिकता के कारण उनमें गंभीरता नहीं रह पाती। कहीं-कहीं घोर शृंगार के गीत पाये जाते हैं जिनमें अश्लीलता भरी रहती है। उनसे श्रोताओं के मन पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता। स्त्रियाँ गीतों में हँसी, मज़ाक, चुटकी और गालियाँ भी देने लगती हैं जिनसे अशिष्टता आ जाती है और विशेषतया बालकों के स्वस्थ जीवन-विकास के निमित्त वे बाधक सिद्ध होती हैं।

गीतों की भाषा कभी-कभी बहुत ही बिगड़ी हुई होती है। छन्द की सीमा का ख्याल नहीं रखा जाता। आजकल जो लोकगीत रचे जाते हैं और उनका जो प्रचार होता है वे किसी विशिष्ट भाव से प्रेरित होकर नहीं लिखे जाते हैं। उनकी भाषा पर विदेशी भाषाओं का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है—

जैबा के त गेल अंगरेज, चीनी ओ किरासन के कंट्रोल करा क गेल।

ऊपर के रेखांकित शब्द अंगरेजी के हैं। लेकिन ये शब्द काफी प्रचलित हो गये हैं और मैथिली में घुल-मिल गये हैं फिर भी उनका प्रयोग प्रचारात्मक भावना से प्रेरित होकर ही किया गया है। नीचे के रेखांकित शब्दों में फारसी के शब्द घुस गए हैं—

सोने क झारी, गंगाजल पानी,
पिया पानी, पिलाउ जल्दी सँ
दिल अति व्याकुल भेल गरमी सँ

आजकल मिथिला में फिल्मी गीतों का प्रचार बढ़ गया है जिनका प्रभाव लोकगीतों पर भी पड़ा है और व्यापारिक दृष्टि से ऐसे लोकगीत मादक द्रव्यों के ऊपर भी रचे जा रहे हैं। उदाहरणार्थ बीड़ी पीने वालों का एक गीत दिया जा रहा है जिस पर नागिन फिल्म के गीत का स्पष्ट प्रभाव है—

बीड़ी पीबई बहुत दिन जीबई, जीबई वर्ष हजार रे !
अपने बनबई कम्पनियाँ !
मनहर गौहर कमल सुन्दरी पी कहियो अजमेल हुँ,
पिलऊँ सतहत्तरि मजा ने आयल,
तौं खाँटी मँगओलहँ,
पौकिट भरि के दिल खुश करिके, घुमब शहर बजार रे !
अपने बनबई कम्पनियाँ !

ऊपर की पँक्तियों का मिलान नागिन फिल्म के इस गीत से किया जा सकता है—

मेरा मन बोले, मेरा तन डोले मेरे दिल का गया करार रे,
कौन बजाए बाँसुरिया !

यदि इसी प्रकार मादक द्रव्य के प्रचारार्थ लोकगीत रचे जाने लगेंगे तो निश्चय ही वास्तविक मैथिली लोकगीतों का विनाश हो जाएगा और मिथिला की सांस्कृतिक विशिष्टता भी धीरे धीरे विलुप्त हो जाएगी। अतः ऐसे गीतों से उसके समाज को बचाना अति आवश्यक है। प्रायः प्रत्येक लोकगीत लोक-

संस्कृति को व्यक्त करने की क्षमता रख सकता है और वह परम्परा बन कर जम पाता है। सिनेमा के गीतों में ऐसी शक्ति कम होती है।

कुछ लोकगीतकार अपने गीतों की लोकप्रियता प्राप्त करने के लिए किसी विख्यात कवि का नाम अपनी रचना में जोड़ देते हैं जिससे उनकी मौलिक कृति का पता नहीं लग पाता है। यह तो अवश्य है कि अपना नाम कमाना नहीं चाहते हैं और गीतों की रचना द्वारा जनताजनार्दन की सेवा करना चाहते हैं। लेकिन दूसरे कवियों का नाम देकर और अपना नाम छिपा लेना अपने तथा औरों को भ्रम में डालना और सचाई से मुख मोड़ना है। कुछ लोकगीतकार ऐसे भी हैं जो स्त्रियों के नाम देकर प्रचारात्मक दृष्टि से गीतों की रचना करते हैं और भक्ति-भावना से प्रेरित होकर कीर्त्तन लिखते हैं और गाते हैं। इससे भी उनकी मनोवृत्तियों का पता चलता है और उनके जीवन का परिचय पाना कठिन हो जाता है। गीतों के प्रचार में कुछ गीत गाने वाले लोकगीतकार अपने शब्द भी जोड़ देते हैं और उनकी विशिष्टताओं को कम कर देते हैं। इस प्रक्रिया से गीतों की मौलिकता नष्ट हो जाती है और उनके वास्तविकत स्वरूप का पता लगाना कठिन हो जाता है। गीतों में करुण-रस की अधिकता के कारण जीवन में सक्रियता की अपेक्षा निष्क्रियता आ गई है। आत्म समर्पण और भाग्यवाद की भावनाएँ बढ़ गयी हैं। अँध-विश्वास, जादू टोना सम्बन्धी गीत मिथिला के जीवन को संकुचित कर देते हैं और प्रगति को अवरुद्ध कर देते हैं, इनसे भी बचना आवश्यक है।

नारी और पुरुष के लोकगीतों में भेदीकरण

मैथली लोकगीतों में जहाँ पारिवारिक जीवन की कड़ुवी और मीठी अनुभूतियाँ अभिव्यंजित हुई हैं, वहाँ स्त्रियों की रचनाएँ आभासित होती हैं। उनकी रचनाओं में शृँगार-रस तथा करुण-रस की प्रचुरता दीख पड़ती है। स्त्रियों का जीवन पारिवारिक परिवेश तक ही सीमित रहता है और उसके सुख-दुःख में ही वे निरन्तर डूबती-उतरती रहती है। उनके प्रेम का लक्ष्य एक ही केन्द्र बिन्दु पर टिका रहता है। लेकिन इसके विपरीत जिन मैथिली लोकगीतों में नीति, सेवा उत्साह के भावों की अभिव्यंजना की गयी है, उन्हें मनोवैज्ञानिक दृष्टि से परखने पर ऐसा विदित होता है कि वे पुरुषों के मनोरागों के प्रतीक है। कारण यह है कि परदा प्रथा ने स्त्रियों के कार्य को मिथिला में पुरुषों के कार्य क्षेत्र से बहुत अलग कर दिया है। स्त्रियाँ घर के कार्य को सँभालती हैं और पुरुष बाहर के कार्य-कलाप को सम्पन्न करने में संलग्न रहता है। इस

दृष्टि से स्त्रियों का कार्य क्षेत्र सीमित हो जाता है और पुरुषों का कार्य क्षेत्र विस्तृत बन जाता है। पुरुषों की चित्तवृत्तियाँ नाना रसों के पान करने में निमग्न रहती हैं। अतः स्त्रियों और पुरुषों के मनोभावों की अभिव्यंजना-प्रणाली में भिन्नता आ जाती है। नीचे की एक महेशवाणी से यह बात प्रमाणित होती है कि शिव और पार्वती के दाम्पत्य जीवन को लेकर एक पत्नी ने कितनी सूझ भरी बातें बताई हैं। यद्यपि लोकप्रियता की दृष्टि से इस गीत में विद्यापति का नाम जोड़ दिया गया है, तथापि यह गीत किसी स्त्री के द्वारा ही रचा गया है। इसमें पारिवारिक जीवन का चित्र बड़ा ही मार्मिक है। इसका प्रसंग यह है कि शिव की विपन्नता से पार्वती खींझ उठती है और वह शिव को छोड़कर अपने हाथों से कार्तिक को थामती है और गणेश को गोद में बिठाकर नैहर का मार्ग पकड़ती है। इस पर शिव पार्वती से कहते हैं कि हे पार्वती ! तुम नैहर मत जाओ। मेरे पास त्रिशूल और बाघंबर है, उन्हें मैं बेच दूँगा और तुम यहाँ ही रहो और खाओ-पियो। लेकिन पार्वती नैहर में रहकर दुःख काटना पसन्द करती है, शिव जैसे फक्कर के पास रहना नहीं चाहती। इस पर शिव उत्तर देते हैं कि हे पार्वती ! मैंने तुम्हारे नैहर को देखा है। वहाँ क्या रखा है, सब कोई बल्कल पहनते हैं। वे भी कोई धनिक नहीं हैं। यह सुन कर पार्वती इसे सहन नहीं करती और क्रोधित होकर वह कहती है कि आप मेरे नैहर की निन्दा मत कीजिए। आपकी तरह नंगे रहने की अपेक्षा वल्कल पहनना बेहतर है। इस गीत से एक विपन्न परिवार की मनोवृत्तियों का पता लगता है। भले ही, इसमें शिव का नाम रखा गया है और उनकी ओर से पार्वती को समझाया गया है। लेकिन इसमें पति-पत्नी की विवशता की झलक मिलती है। एक भारतीय पति विपन्नता के कारण शिव की भाँति अपनी पत्नी को नैहर जाने से रोक सकता है और जीते जी इस बात को वह सहन नहीं कर सकता कि उसकी पत्नी नैहर में उसके रहते हुए जीवन-निर्वाह करे। इसमें पति की मर्यादा और उसके कर्त्तव्य पर भली भाँति प्रकाश डाला गया है। और दाम्पत्य जीवन में पत्नी किस तरह की सूझ-बूझ से काम लेती है और अपने पति को किस तरह उपयुक्त उत्तर देकर उसे परास्त कर सकती है, इसका भी सजीव चित्र खींचा गया है। इस गीत में मिथिला का पारिवारिक जीवन विशिष्ट रूप से दीख पड़ता है—

रुसि चललि भवानी तेजि महेश,
कर धै कार्तिक गोद गणेश,

तोहों गौरी जनु नैहर जाह,
त्रिशूल बघम्बर बेचब, वरु खाह,
त्रिशूल बघम्बर रहै वर पाय,
हम दुख काटब नैहर जाय,
देखि अयलहुँ गौरी नैहर तोर,
सबके परिहन बलकल डोर,
जनु उबटी शिव नैहर मोर,
नाँगट सँ भल बलकल डोर,
भनहिं विद्यापति सुनिय महेश,
नीलकँठ भै हरथु कलेश ![1]

मिथिला के निम्न वर्ग में स्त्रियों के द्वारा बहुत कम लोकगीत रचे जाते हैं और उनमें मध्य वर्ग के लोकगीत ही विशेषत: प्रचलित हैं। इसका कारण यह है कि निम्न वर्ग की स्त्रियाँ विपन्नता के भार में बहुत दबी हुई हैं। उन्हें विश्रांति अपने जीवन में बहुत कम मिल पाती है। अपने परिवार को सँभालने में ही उनका सारा समय चला जाता है। गीत रचने का उन्हें अवसर कम मिलता है और उन्हें कंठों में उतारने के लिए अवकाश ही कहाँ ? वे शिक्षा-दीक्षा से भी आज कोसों दूर हैं। काम-धन्धों में वे अधिक व्यस्त रहती हैं। अत: एसी दशा में उनके हृदय से लोकगीतों का उद्‌भूत होना सम्भव नहीं। प्राय: लोकगीत तो अवकाश के क्षणों में रचे जाते हैं।

मिथिला में जो मध्य वर्ग है वह उच्च और निम्न वर्ग के बीच की एक कड़ी की भाँति है और दोनों के प्रतिनिधि रूप में विद्यमान है। इस वर्ग में जो लोकगीत हैं वे उच्च और निम्न दोनों वर्गों में प्रचलित हैं और भाषा, भाव तथा विषय की दृष्टि से मैथिली लोकगीतों की भाव-धाराएँ इस वर्ग में कहीं तो गंभीर, कहीं उथली और कहीं छिछली हो गई हैं। इतना तो मानना ही पड़ता है कि उच्च और मध्य वर्ग के लोकगीतों की भाषा में प्रौढ़ता और कलाकारिता है, साथ ही भावों की गहराई भी कम नहीं है। परन्तु निम्न वर्ग के लोकगीतों में प्रकृति की सुषमा और प्रेम की मधुरिमा के भावों के वर्णन अनुपम हैं। उनमें सद्य: स्निग्धता एवं प्रांजलता निहित हैं।

मैथिली लोकगीतकारों की श्रेणियाँ

मिथिला में जितने लोकगीतकार हैं, उनकी दो श्रेणियाँ हैं—एक तो लोकगीतों के रचनेवाले हैं और दूसरे हैं उनका प्रचार करने वाले।

---

१ बाबू रघुवरसिह बुकसेलर : नवीन तिरहुति संग्रह, दूसरा भाग, पृष्ठ ७

इन दोनों प्रकार के लोकगीतकारों का जीवन - परिचय प्राप्त करना और उन के रहन-सहन का पता लगाना कठिन है। यदि यह गुरुतर कार्य सम्पन्न हो सके तो मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण को समझने में सुविधा हो सकती है और लोकगीतों के अध्ययन की कठिन समस्याएँ भी हल हो सकती हैं। गाँव-गाँव में घूम घूम कर लोकगीतों के संकलन के साथ साथ उनके रचयिताओं और प्रचारकों के सम्बन्ध में भी पता लगाया जा सकता है और उनके जीवन चरित्र से भी लाभ उठाया जा सकता है। यह कार्य मिथिला में अभीतक नहीं हो सका है। इसे यत्किंचित पूर्ण करने का थोड़ा - सा प्रयास मैंने किया है और लोकगीतों के सामान्य परिचय के साथ कहीं-कहीं लोकगीत-कारों के नामों का उल्लेख भी कर दिया है। प्रायः स्त्रियाँ गीतों में अपना नाम नहीं जोड़ती हैं, लेकिन पुरुष लोकगीतकार बहुत ही कम ऐसे हैं जो गीतों में अपना नाम नहीं जोड़ते हों।

जो लोकगीतों के प्रचारक हैं और उन्हें गा-गाकर लोगों को सुनाते हैं या उन्हें छपवाते हैं और पैसे कमाते हैं, ऐसे भी लोकगीतकारों का परिचय प्राप्त हो सकता है। और, सच तो यह है कि लोकगीतों का वैज्ञानिक अध्ययन तभी सर्वांगीन माना जा सकता है जबकि ऐसे लोकगीतकारों के सम्बन्ध में भी अनुभव प्राप्त हो और इस प्रयास के द्वारा ही शोधार्थियों की दृष्टि निश्चित दिशा में जा सकती है और मैथिली लोकगीतों की न्यायसंगत विवेचना भी की जा सकती है।

मैथिली साहित्य पर मैथिली लोकगीतों का प्रभाव

मैथिली साहित्य पर संस्कृत साहित्य के प्रभाव के कारण जो क्लिष्टता आ गयी थी, वह लोकगीतों के प्रभाव से धीरे धीरे दूर होती जा रही है और गीत काव्य तथा लोकगीत में बड़ी समानता दीख पड़ती है। आधुनिक मैथिली साहित्य, भाषा-सौष्ठव, शैली, ध्वनि-व्यंग्य और लाक्षणिकता के साथ साथ संगीत की दृष्टि से मैथिली लोकगीतों का ऋणी है। मैथिली साहित्य के साहित्यकार जहाँ काव्य की रचना करते हैं, वहाँ लोकगीतों की भी रचना परम्परा से करते चले आ रहे हैं। मैथिली गीत-काव्य और मैथिली लोकगीत में कभी कभी इतना साम्य दीख पड़ता है कि उनका भेद करना भी कठिन हो जाता है। उच्च वर्ग में जो लोकगीत हैं उनमें प्रायः काव्य-कला की सौंदर्य छटा झलकती है और उनमें सूझ भी सूक्ष्म होती है। मैथिली लोकगीतों से मैथिली काव्य अनुप्राणित हैं और हैं प्रभावित।

मैथिली लोकगीतों का भाषा-विज्ञान की दृष्टि से महत्त्व

मैथिली लोकगीतों की अभिवृद्धि के कारण मैथिली भाषा का विकास दिनानुदिन बढ़ता जा रहा है और उसमें अच्छा साहित्य निर्मित हो रहा है। मैथिली लोकगीतों के अध्ययन द्वारा मैथिली भाषा का भाषा-विज्ञान की दृष्टि से महत्त्व बढ़ जाता है और उसका विकास एवं परिवर्तन अच्छी तरह परखा जा सकता है। उसके शब्दों की व्युत्पत्ति की खोज की जा सकती है। उसमें (मैथिली भाषा) मुहावरा, लोकोक्ति कम नहीं हैं। उनसे उक्ति की मार्मिकता, ज्ञान तथा अनुभव की बातें भलीभाँति स्पष्ट होती हैं। उदाहरणार्थ—

मुहावरा

'गड़ि गेल छतिया में काँट'
'भउजो दलबौ करेजवा पर मूंग,
'कगनमा हम बधइया लेवौं हे !'

लोकोक्ति

'समय पावि तरुवर फल रे, कतबो सिंचु नीर !'

इनके अतिरिक्त मैथिली के कुछ विशिष्ट शब्द हैं जिनमें से कुछ का उल्लेख किया जा रहा है—

अ

अओरा = आँवला
अक्ट्टी = वाचाल
अकान = वेरपरवाह
अक्खा = बोरा
अगड़ाही = दावानल
अगत्ती = उपद्रवी
अगोर = रक्षा
अँचरी = छोटा आँचल
अङ्गा = कुर्त्ता
अछार = बूंदाबूंदी
अछाह = छाया
अछिया = चिता का चूल्हा
अजवारि = वस्तुयुक्त और वस्तुशून्य बर्त्तन
अजूरा = वेतन, भाड़ा
अठोंगर = विवाह में एक प्रथा विशेष
अड़खीस = क्रोध, शत्रुता
अड़ारा = नदी का तट
अफार = बिना जोता हुआ खेत
अफरब = अधिकभोजनोपरान्त की दशा।
अबेर = देर
अमोट = अमावट
अरगनी = वस्त्र टाँगने का डंडा

अरिकंचन = अरूई का पत्ता
अरिपन = ऐपन, चौक पुरना
अल्हुआ = शकरकन्द
अलबल = असम्बद्ध
अहगर = पर्याप्त
अहदी = आलसी

आ

आँकड़ = कंकड़
आँठी = बीज
आमील = अमचूर, कच्चे आम का सूखा टुकड़ा,
आहर = खेत के पास का जलाशय

इ

इआर = मित्र
इजोत = प्रकाश
इनहोर = गरम जल
इनार = बड़ा कुआँ
इरोत = व्यवधान
इसखी = फैशन करने वाला।

उ

उकरू = बेढंग
उभकुन = बर्त्तन आदि का ठेकन
उड़ीस = खटमल
उढ़री = पर पुरुष के साथ भाग जाने वाली।
उपराग = उलहना
उसट्ठ = नीरस
उसार = समेट

ओ

ओगरबाह = रक्षक
ओड़िका = दूध औंटने का बर्त्तन
ओल = सूरण
ओलती = ओसारे से बढ़ी हुई छत की निचली भूमि।
ओहार = पर्दा, आवरण

क

कचबचिया = पक्षी विशेष
कठिआरी = श्मशान
करिटरबा = छोटा बच्चा
कदीमा = काशीफल, कद्दू
कनकन = शीतल
कनखी = इशारा, चावल आदि अन्न का टूटा हुआ अग्र भाग।
कनसार = भूजा भूनने का स्थान।
कनौसी = कर्णांकुश
कन्तोड़ = मञ्जूषा
कबाछु = लता विशेष जिसके पत्ते लगने से खुजलाहट होती है।
कबुला = पूर्व प्रतिज्ञा
कलौ = मध्याह्न का भोजन
कल्लर = भिखारी
कुच्चा = भुरता, आम की चटनी विशेष
कुतरुम = पदुआ
कुपफर = कलह
केसौर = कन्द विशेष !
कोकटी = खाकी रंग
कोंचा = साड़ी या धोती में तह लगा आगे का भाग।
कोताही = कंजूसी
कोनटा = घर के बाहर के कोने की भूमि।
कोसिया = कुल्हड़

ख

खाधुर = अधिक खाने वाला।
खिखिर = लोमड़ी

खिनहरि = चटाई
(खिड़रि)
खुरचन = सीप
खेड़ही = मूँग
खैंक = तिनके की नोंक
खैंठी = जमी हुई मैल
खोंखी = खाँसी
खोंता = घोंसला
(खोता)
खोभाढ़ = सूअर का घर

ग

गंजन = दुर्गति
गद्दह = झगड़ा, शोरगुल
गमगम = महँमहँ, सुगन्धि
गब्बर = ढीठ
गाछी = बगीचा
गाँती = वस्त्र विशेष।
गुज्जी = कान के भीतर की मैल
गेन्हारी = शाक विशेष।
गोहारि = पुकार
गोहि = ग्राह

घ

घघरी = फ्रॉक
घमौरी = घमची
घुघुनी = आलू-चने का तला पदार्थ।
घेघ = गलगण्ड
घोघ = अवगुंठन
घोदमोद = गुच्छा
घोरजाउर = दही के साथ पका हुआ भात।
घौर = केले का गुच्छा

च

चप्फर = चालाक
चिनुआर = चूल्हे के पास या देवी का चबूतरा।
चीकस = आँटा, चूर्ण
चुरकी = केस
चौरचन = चतुर्थी का चन्द्र (त्योहार)

छ

छँओड़ा = छोटा बालक
(स्त्री = छँओड़ी)
छनकट = छली
छाउर = राख
छागर = बकरा
छाल्हीं = मलाई
छितनार = बीच में ऊँचा
छिनार = लम्पट
छिपली = छोटी थाली
छिमडि, छिम्मी = फल्ली
छुतहर = अपवित्र घड़ा
छुलाह = लोभी
छोहक्का = शीघ्र विक्री

ज

जक-थक = अस्त-व्यस्त
जथगर = धनवान
जब्बर = बलिष्ठ
जलखइ = जलपान
जाफरी = सछिद्र टट्टी
जिनिस = अन्न
जुट्टी = वेणी, जूटी
जुन्ना = रस्सा
जौड़ = साबे की डोरी

झ

झनकाह = क्रोधी
झभही = दूध नापने का बड़ा पात्र
झमटगर = अधिक शाखावाला पेड़
झोर = तरकारी का रस

ट

टहल = सेवा, परिचर्या
टूअर = अनाथ
टुट्टी = हानि
टोनाह = कोमल
टोह = खोज

ठ

ठकुआ = पकवान
ठोप = बिन्दु
ठोराह = झगड़ालू, वाचाल

ड

डीह = वासभूमि
डेगार = तेज चलने वाला।
डोकहर = पक्षी विशेष।

ढ

ढकढोल = ढीला
ढेका = पीछे की ओर धोती खोंसने का वस्त्र-भाग।
ढोलिया = ढोल बजाने वाला।
ढौर = पिठार लेपन

त

तसमइ = खीर
ताग = धागा
तामस = क्रोध
तेहल्ला = तटस्थ
तौला = मिट्टी का बड़ा बर्तन

थ

थकुचा = कुचला हुआ
थुथुन = पशु का मुखाग्र
थेथर = ढीठ
थौआ = चूर्ण-चूर्ण

द

दगदग = हृत्कंपन
दरक = फाट
दसाही = दस दिनोत्तर श्राद्ध-क्रिया
दाहर = बाढ़
दोग = दो वस्तुओं का मध्य भाग

ध

धिआ = कन्या
धुमस = बालकों का कलह-क्रीड़ा
धोधिगर = तुंदिल

न

नढ़ेआ = गीदड़
निहुरब = नम्र होना।
नीमन = उत्तम
नुकाएब = छिपना
नेनपन = बचपन
नेना = शिशु
नोर = अश्रु

प

पकठोस = बोलने में प्रौढ़
पगहा = हल आदि की डोरी
पथिआ = टोकरी
पनही = जूता
पनिपिआइ = जलपान
पनुगी = अंकुर
पलार = ऊँचे से नीचे का प्रवाह,
पिताह = क्रोधी
पेंच = उधार

पोआर = पुआल
प्यूसा = फूफा

फ

फफति = दुर्गति, अपमान
फनिगा = शलभ
फराठी = मोटा ठेंगा
फुच्च = अपने आप में मग्न
फुच्ची = दूध नापने का बहुत छोटा पात्र।
फूही = बून्द
फोंका = फफोला
फोड़न = छौंकने का मसाला
फोफी = छिद्र

ब

बकलेल = मूर्ख
बकुच्ची = पीठ पर लादने का संबल
बटुक = पाँच वर्ष से अधिक उम्र का बालक।
बतहा, बताह = पागल
बतिआ = लताफल
बतिआएब = बात करना।
बलेल = मूढ़
बुनछेक = वर्षा बन्द होने पर
बेगार = भारवाहक
बोनि = मजदूरी (अन्न आदि की)
बेसाह = अन्न खरीदकर जीवन-निर्वाह
बौआ = बालक
बौक = मूक
बौंसब = प्यार से मनाना।
ब्योना = अगाऊ

भ

भकुआ = उसना चावल, भोला
भगवा = कोपीन
भङ्ठी = मरम्मत
भाभट = दुराग्रह माया
भिनसर = प्रात:काल
भुटकुनमा = मोटा और कम लम्बा
भोजैत = भोज करने वाला
भोथ = कुंठित

म

मचकी = दोला
मकरखा = बच्चों का रोग बिशेष।
ममहर = मामा का घर
ममिऔत = ममेरा भाई
मरतरिआ = मारने में चतुर
मरहन्ना = सूखी फसल
मसुरामनी = मधुश्रावणी
महफा = पालकी
मिरहन्नी = अपुष्ट अन्न
मीस = मेला
मुह छुट्टू = बेरोक टोक बोलने वाला।
मेही = सूक्ष्म
मैआ = माँ
मैंजा = बड़ी माँ, दादी
मोटरी = गठरी
मौगी = स्त्री
मौनी = छोटी चँगेली

र

रान्हब = पकाना
रौद = धूप
रौदी = अनावृष्टि

ल

लटबौरा = दुलारा, आग्रही
लतरब = लता का प्रसरण

लति = स्वभाव
लहठी = लाख की बनी हुई चूड़ी
लुक्खी = गिलहरी
ललुहार = हराभरा
लूरि = कलाकारिता
लेरू = बछिया
लोहछब = पिपासित होना

स

सकनाचूर = चूर्णित
सपकरौड़ी = बुन्दी डालकर बना हुआ दूध
सकलुच्ची = चंचल बालक
सक्कत = कठोर, सख्त
सगही = सगाई वाली स्त्री
सजमनि = लौकी
सदबद = रसदार तरकारी
सधोरि = गर्भवती के लिए उपहार
सपनौर = नेवला
सीरक = रजाई
सुतारी = जूता सीने का टकुआ
सुबुक = कोमल
सेहन्ता = मनोरथ
सोन्हि = भूविवर

ह

हकार = निमन्त्रण
हराहरी = औसतन
हुकहुक = उर्द्ध श्वाँस
हूर = लाठी का अंतिम भाग
हेंक = दलदल
हेहर = हठी
हौंकब = हवा करना ।
हौहटि = खुजली

मैथिली में घट को घैल कहते हैं। जूता शब्द के अर्थ में पनही का प्रयोग अवश्य होता है, परन्तु लठिआएब (लाठी से मारना) के अनुकरण पर जुतिआएब (जूते से मारना) भी चलता है। मैथिली में एक शब्द है—बुड़िबक जिसका अर्थ है मूर्ख[1]। इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार हो सकती है : कौए तो जरा सी आहट पाते ही उड़ जाते हैं, लेकिन बगुला (बक) सीधा होता है, आपत्ति के समय में भी बैठा ही रह जाता है। तुरन्त उड़ता नहीं। व्याध को उसे पकड़ने में सुविधा होती है। बकलेल उसे कहते हैं जिसे ठीक से कपड़े पहनने का ढंग न मालूम हो और न बोलने का ही। मैथिली की कुछ क्रियाएँ बहुत ही सार्थक हैं। जैसे—

थकुचब = साँप के मुँह और दाँतों को लाठी या मूसल आदि से कुचल-कुचल कर मारना।

हूरब = खंभे की जड़ को मिट्टी और ईंट के टुकड़ों से कूट-कूट कर दृढ़ बनाना।

थूरब = टुकड़े टुकड़े कर पीसना।

---

१ दीनबन्धु झा: मिथिला भाषा कोष, पृष्ठ १६ और ५१

तामब = फावड़े से खेत खोदना ।

ललोन के आधार पर मेघोन, मेघओन, मेघाओन और मेघौन बनाया गया है । इसी प्रकार जड़ोन, जड़ाओन और जड़ौन भी । अमताइनि, अमतानि अमतैंनि रूप एक ही अमतानि के हैं । मैथिली में कमल का अर्थ फूल के लिए है, पौधे से उसका सम्बन्ध पुरैंन से है । अतः कमल पत्र न कह कर पुरैंन क पात कहा जाता है । ताड़पत्र को तड़िपत्त कहा जाता है ।

मैथिली में लिखने और बोलने में थोड़ा भेद हो जाता है । जैसे—नहि, नै को नइ, या ने, (नहीं) अनहेंर को अन्हेर और कियेक को किये बोलते हैं ।

संस्कृत ल कार का मैथिली र होता है । जैसे हल—हर, गल – गर, पिप्पली = पीपरि, श्याल—सार, श्रृंगाल—सिआर । ट का ड, जैसे—त्रोटन-तोड़न, घोटक = घोड़ा, पर्पट = पापड़, पटोल - पडोर, कीट - कीडा ।

त का थ, जैसे —हस्त - हाथ, मस्तक-माथ, पुस्तक - पोथी, मुस्त-मोथा, प्रस्तर - पाथर ।

क्ष का ख अथवा च्छ, जैसे—अक्षि—आँखि, कुक्षि - कोख, रूक्षा—रुख, बुभुक्षा - भूख, अक्षर - आखर, अच्छर, पक्ष - पख, पच्छ ।

द का ड, जैसे—दर-डर, दशन-डँसब दण्ड-डाँड ।

ऋ का इ, जैसे—पृष्ठ-पीठ, वृश्चिक-बीछ ।

देशी शब्द—मैथिली में छाती, पहुँचा, आदि देशी शब्द प्रयुक्त होते हैं । देशी शब्दों का कहीं कहीं द्वित्व हो जाता है, जैसे—चटपट—चट्ट पट्ट, अमत—अम्मत, अतर—अत्तर, गप—गप्प, दुबर—दुब्बर, मूका—मुक्का, जूता—जुत्ता, चूंटी—चुट्टी ।

विदेशी शब्द—जैसे—हजूर, हाजिर, दरखास्त, दस्तगर्दा, दस्तखत, मिनट, पावर आदि । विदेशी शब्द भी दो प्रकार के हैं—अनुरूप और तद्भव, जैसे हजूर शब्द तो अनुरूप है और नजरि शब्द नजर का तद्भव बना है—मैथिली में । यह उसकी अपनी विशिष्टता है ।

मैथिली भाषा में बड़े ही सारगर्भित शब्द विद्यमान हैं । उनमें से कुछ शब्दों को ऊपर लिखा गया है जो राष्ट्र-भाषा हिन्दी के कोश की शोभा बढ़ा सकते हैं और ऐसे अनेकों मैथिली के व्यापक अर्थ रखनेवाले शब्द अपनाये जा सकते हैं ।

मैथिली लोकगीतों के संकलन की प्रणाली

मिथिला के लोकजीवन पर पाश्चात्य सभ्यता का भी थोड़ा प्रभाव पड़ा

है, जिससे मैथिली लोकगीत वंचित नहीं है। अतः उनकी मौलिकता की रक्षा करने के लिए यथाशीघ्र संकलन का कार्य होना आवश्यक है। संग्रहकर्त्ताओं के मन में लोकगीतों के प्रति पहले श्रद्धा और निष्ठा उत्पन्न होना आवश्यक है और यह तभी हो सकती है जबकि उनका ज्ञान-स्तर ऊँचा हो और उन्होंने लोकगीतों के वैज्ञानिक अध्ययन की ओर ध्यान दिया हो। अपने इष्ट मित्रों, संगी साथियों, सगे सम्बन्धियों और गाँव के प्रमुख लोगों से इस कार्य में पर्याप्त सहायता मिल सकती हैं। इसके अतिरिक्त ऋतु-परिवर्तन के अनुसार गीतों को संकलित करने में सुविधा होती है। यदि कोई गीत गाता रहे, तो उसी समय उन गीतों को लिख लेना उचित है। सच्चरित्रता, सादगी और व्यावहारिकता के द्वारा ही संग्रहकर्त्ताओं को इस कठिन कार्य में सफलता मिल सकती है। लोकगीतकारों के पास अज्ञात रूप में पहुँचना ठीक होता है। मेले, त्योहार, पर्व और उत्सव के अवसर पर मिथिला में गीत गाये जाते हैं, ऐसे समय गीत लिखने का उद्योग करना आवश्यक है। जो लोकगीतकार हैं उनसे अपने मधुर स्वभाव के द्वारा उनके भावों की रक्षा करते हुए गीत लिखाने का प्रयत्न करना चाहिए। मिथिला के सभी वर्गों के लोकगीतकारों के साथ उदारता और समानता का व्यवहार वरतने से ही इस कार्य को सफल बनाया जा सकता है। स्थानीय पारिभाषिक शब्दों का ही उपयोग करना चाहिए—जैसे बरसाइत (वटसावित्री) बरहम (ब्रह्म) मधुसाँवनी [मधुश्रावणी] आदि लिखना ही उचित है। इससे लोकगीतों की स्वाभिविकता बनी रहती है। जाँच पड़ताल के पश्चात् ही किसी तथ्य को अंगीकार करना चाहिए। किसी परम्परा, प्रथा, विश्वास को पक्ष एवं विपक्ष में प्रमाण के साथ ग्रहण करना आवश्यक है। जिस गीत को जैसा सुने, वैसा ही संग्रहकर्त्ता को लिख लेना चाहिए। लोकगीत कार का नाम, पूरा पता, अवस्था स्त्री या पुरुष, व्यवसाय, उसकी स्थिति लिख लेने से संग्रह की प्रामाणिकता सिद्ध करने में सुविधा होती है।

एक गीत के जितने भी विभिन्न पाठ-भेद हों, उनका भी संकलन करना अपेक्षित है। अपने पास नोटबुक, कलम, पेंसिल रखनी चाहिए और प्रत्येक गीत, रीतिरिवाज, प्रथा, विधि-विधान परम्परा, विश्वास, को अलग अलग पृष्ठों में लिखते जाना चाहिए। कैमरा भी अपने साथ रखना चाहिए। इसके द्वारा लोकजीवन के विभिन्न रूपों का चित्र ले सकते हैं। घर, मंदिर, देवी-देवता, टोना- टोटका की वस्तुएँ, गहवर, भगत, गवैये आदि के फोटो लिये जा सकते हैं और वेशभूषा अलंकार आदि के भी। इनसे अनुसंधान कार्य वैज्ञानिक होता है।

टेपरेकार्ड के द्वारा लोकगीतों की संगीत लहरी को भी यंत्रस्थ किया जा सकता है। यह यन्त्र खर्चीला है, लेकिन संकलन का एक बड़ा साधन है।

हमें पहले अपने संकलन के उद्देश्य को स्पष्ट करलेना चाहिए और उसकी प्रणाली या पद्धति पर विचार करना आवश्यक है। उद्देश्य और पद्धति के साथ सामंजस्य स्थापित होने पर मूल्यांकन करने में सरलता होती है और उसकी उपयोगिता भी प्रकाश में आती है। अतः संकलनकर्त्ता को इन बातों को अपने ध्यान में रखना जरूरी है।

लोक-मानस

''लोक मानस लोक-साहित्य के निर्धारण में सबसे प्रमुख तत्त्व है। अभी कुछ समय पूर्व तक मनोविज्ञान केवल चेतन मानस को ही स्वीकार करके चलता था। फ्राइड ने अपने—अनुसंधान से अचेतन मानस का अनुसंधान अथवा उद्घाटन किया।

यद्यपि फ्रायड के मत में अनेकों संशोधन हुए हैं, फिर भी अवचेतन मानस की सत्ता में अब संदेह नहीं रह गया। फ्रायड ने अवचेतन मानस के निर्माण के कारण स्वरूप कुण्ठा को स्वीकार किया था। किन्तु प्राणिशास्त्र उत्तराधिकरण को असिद्ध नहीं कर सका है। हमारे पूर्वजों का दाय हमारे जन्म के साथ मिला है। हमारी प्रवृत्तियाँ इसी दाय का परिणाम हैं जो हमारे निर्माण के मूल स्वरूप के आधार हैं। इन प्रवृत्तियों का स्थान भी तो मानस में ही होगा। चेतन मानस में तो ये विद्यमान मिलती नहीं, ये अवचेतन मानस की भाँति मनुष्य के समस्त व्यक्तित्व को ही प्रेरित और निर्मित करने वाली हैं। फलतः दाय में प्राप्त मानस स्थान अवचेतन मानस में ही हो सकता है। इस प्रकार अवचेतन मानस के दो भेद स्वीकार करने होंगे : एक सहज अवचेतन, दूसरा उपार्जितावचेतन। यह सहज अवचेतन ही लोक मानस है। हम नहीं कह सकते कि इस मानस के सम्बन्ध में अवचेतन वादियों ने कितना विचार किया है, किन्तु इस मानस की सत्ता में सन्देह नहीं किया जा सकता। आज के मानव को आदिम मानवीय बातों से क्यों रुचि है? क्यों आज का महान् वैज्ञानिक और घोर बुद्धिवादी भी असंभव तथा अद्भुत लोक कहानियों में आकर्षण अनुभव करता है। क्यों आज भी हम किसी न किसी रूप में, किसी न किसी प्रकार के ऐसे विश्वासों को प्रचलित पाते हैं जिनकी वैज्ञानिक व्याख्या नहीं हो सकती, जो बौद्धिकता के लिए सहज

हो अमान्य हैं। आज बीसवीं सदी के उत्कृष्टतम मनुष्य में भी हम जब वह रंगत देख पाते हैं जो स्पष्ट ही आदिम मानव की वृत्ति का अवशेष ही कहा जा सकता है तो लोक-मानस की उपस्थिति स्वीकार ही करनी पड़ती है।"[1] इन तथ्यों से हमें लोकमानस और लोकगीतों के महत्त्व का पता चल सकता है। मिथिला के सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन विकास में उसके लोकगीतों को बहुत बड़ा श्रेय दिया जा सकता है। उनसे मिथिला के जनजीवन को गति एवं शक्ति मिलती है।

शेष कार्य की ओर

मिथिला में मैथिली लोकगीतों में जो कथा-गीत हैं उनका संकलन भी किया गया है। मैथिली लोकगीतों का भाषावैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन करना अति आवश्यक है। निम्न वर्ग के गीतों का संकलन कम हुआ है और शिशु-गीतों का संग्रह भी। इस शोध-प्रबन्ध में वैज्ञानिक वर्गीकरण के आधार पर लोकगीतों के संकलन की दिशा प्रशस्त एवं स्पष्ट कर दी गयी है और उनके महत्त्व पर प्रकाश डाला गया है।

---

१ डा० सत्येन्द्र : लोकवार्ता के तत्त्व तथा लोकमानस (भारतीय साहित्य) आगरा विश्वविद्यालय : क० मु० हिन्दी तथा भाषा विज्ञान विद्यापीठ, आगरा, अक्तूबर १९५६, पृष्ठ ४

परिशिष्ट-२

मैथिली लोकगीतों का संकलन

परिशिष्ट—१

मैथिली लोकगीतों का संकलन

(अ) जीवन के विभिन्न संस्कारों के आधार पर

१

सोहर

सिरकी लागल बहुरिया, ठुनुकि कानू रे!
ललना, मोरे पँजरबाँ में तीर कि केकरा जगाएब रे!
सासु सुतलि भानस घर ननदि कोबर घर रे!
ललना रे, हुनि पिया सुतला मन्दिर घर, केकरा जगाएब रे!
छोटकी ननदिया तोहीं हितबन, तोहीं हितबन रे!
जाहु मन्दिर घर, भैया जगाबहु रे!
चार्टहि मारि उठावल, सुनु भैया वीरन रे!
तोरो धनि वेदनि बेअाकुल, दगरिन चाहिय रे!
एक पैर देलनि देहरिया, दोसर देहरिया रे!
तेसरे मे होरीला जनम लेल, जय जय मनायल रे!

जुअबा खेलइते राजा दसरथ, चानन के गाछतर हे!
राजा तोर रानी दरद बेआकुल, दगरिन मँगाय दीऔ हो!
जुअबा जे फेंकि राजा दसरथ, चानन के गाछतर हो!

ललना, पहुँचल राजा के महाल, कहू रानी कुसल हो !
अंग मोरा फरकइ, केसिया मोरा भुइयाँ लोटइ हो !
राजा, धरती लागल असमान, कहब कोना कुसल हो।
कोसिल्या के जनम लेल राम, केकइ के भरत भेल हो !
ललना, लछुमन सत्रुहन सुमित्रा के लाल,
घरे घरे सोहर गावल हो !
रामजनम एहो सोहर गावल, गावि के सुनावल हो !
ललना, धनि दसरथ के भाग, चारु पुत्र जनम लेल हो !

२

सम्मरि

सीता क सकल देखि झखथि जनक रिखि,
सीता भेली बिग्राहन जोग हे !
एहन सुन्नर सीता प्रान लागल छैनि,
देस देस न्योता पठाएब हे !
सरगहि इन्द, पातालहि बासुकि ,
मर्तभुवन कैलास हे !
हरियर गोबर चौक पुरावल,
धनुखा धैल उँठगाहि हे !
देस देस के भूप सभ आएल,
क्यौ नइ धनुखा उठावे हे !
नग्र अजोध्या बसू बसिठमुनि सभ,
हुनकहि न्योता पठाएब हे !
सीता क नाम सुनि औता बसिठ मुनि,
राम लछमन दुनु भाइ हे !

३

लगन-गीत

आँग उगारल झिल्लियो झारल,
हृदय मध्ये लागल कसाय !
माय मनाइन बाप हेमंत रिखि,
के तोरा कुटल कसाय ?

पिसिय घसिय बाबू बट्टा भरि देलहुँ,
दीअ बाबू दाहिन हाथ !
हिंगुरल डरिया चलू रे दुलरुआ,
बास दहिन दस भाइ !
एक कोस गेला बाबू, दुइ कोस गेला,
तेसरहिं मन पछताहिं !
घुरि घर जइतौं, अमा गोर लगितऊँ,
अमा सँ लइतौं, असिररबाद !
घुरि घर जइतौं, बबा घर जइतौं,
बबा सँ लइतौं, असिरबाद !
मन भरि देलहुँ, बाबू चितभरि लेलहुँ,
जइतहिं हैत बिआह !
दान-दहेज बाबू हाथी पीठ लादल,
धनि सुबुध सिआनि !
दिअ हे, अम्मा आसिख दियउ,
जइतहिं होएत बिआह !
भेल बिआह राम चलु कोबर,
सीता लिअ आँगुरि धराय !

४

आम-महुए का ब्याह

सुनिये आम गाछ,
देखिअन्हि महु गाछ,
फड़ लुबधल डारि,
आनि पिठार सिन्दुर लगायल,
नड़ी देलनि घुमाय !
एहन सुदिन दिन,
फलाँ बाबू कें भेलन्हि,
आम-महु बिआहि कै घर जाइ !

५

योग

जोग जुगति हम जानल, कीनि आनल !
नागर कैल अधीन, सभक मन मानल !

सत वो अँग जौं रुसताह, फेरि बौंसताह !
माय बहिन तेजि, हमर धय रहताह !
चान सरुज जकाँ उगताह, उगि झपताह !
जेहन मकरा क डोरी, जकाँ घुमि औताह !
भान नाथ कवि गा ओल, जोग लागल !
गौरी उचित वर पाओल, सभक मन मानल !

६

उचिती

सजन अरज कत द्वन्द रे, तँई अवसर ने करिय मंद रे !
इहोथिक सजनक रीति रे, हिनहुने तेजिय पिरीत रे !
नारिक जौं थिक दोख रे, नागर कें हँस लोक रे !
छमिय हमर अपराध रे, बचन कहत नइ आध रे !
सत खंडित कुसिआर रे, निकसल रस लैं पिआर रे !
से जलधर कवि गाव रे, जलधर जलनिधि पाव रे !

७

समदाउन

जखन जोगिया आँगन सँ बहार भेल, सासु मन पड़ल उदास !
तोहर बोल कोना बिसरब हे जोगिया, तोरो बिनु रहलौ ने जाय !
नन्दन बन जनि जाहु हे जोगिया, ओहि बन पंछियो ने बोल !
जखन जोगिया कोबर सँ बहार भेल, सरहोजि मन पड़त उदास !
तोहर बोल कोना बिसरब हे जोगिया, तोरो विनु रहलौ ने जाय !
जखन जोगिया पलंग सँ बहार भेल, सारि मन पड़ल उदास !
तोहर बोल कोना बिसरब हे जोगिया, तोरोबिनु रहलो ने जाय !
जखन जोगिया दरबजा सँ बहार भेल, ससुर मन पड़ल उदास !
तोहर बोल कोना बिसरब हे जोगिया, तोरा बिनु रहलो ने जाय !
जखन जोगिया नगर सँ बहार भेल, सार क मन पड़ल उदास !
तोहर बोल कोना बिसरब हे जोगिया, तोरा बिनु रहलो ने जाय !
नन्दन बन जनि जाहु हे जोगिया ! ओहि बन पंछियो ने बोल !

जबे रघुबंसी चलल बन रटना, लछुमन घेलकनि पछेर !
घुरिजैयौ फिरिजैयौ देवरो बाबू हे लछुमन !

मोरे सँग विपति बहुत ।
हमें नहि घुरबो भौजो, सीता हे भउजिया !
तोरे संग विपति गमाएब,
एतना बचनियाँ जबे सीता मोर हे सुनलउ,
दमसि दमसि घर जाय !
एक मुठि सरसों सीता खोइँछा बान्हि हे लेलखिन रामा !
बुनि ते बुनेते वन जाय !
गोर लागू पैयाँ पारू धरती धरमुआँ,
भूजल सरिसों दिओ जनमाय !
एहि बाटे एथिन देवरो बाबू लछुमन,
कलंगी टँगैते घर जाय !

८

तिरहुति

पहु परदेस गेल, पोखरी खनाय गेल !
रोपि गेल, नेमुआँ क गाछ !
फड़िय फुलाय गेल, अधरस चुबि गेल !
कतेक दिन रखबइ जोगाय !
अन्न-पानि पँच लेल, सिन्नुर सपन भेल !
पिया भेल डुमरी क फूल !
निसिदिन मदन बढ़त तन दोगुन,
हृदय बेधत आब मोर !
किछु दिन धैरज धरु तोहे कामिनि !
'देवनन्दन' पिया अओत तोर !

चकोर भेल मोर दुनु अँखिया, तोर मुख चन्दा समान गे !
कारी बदरिया चमकइ बिजुरिया, तइ में बढ़ौले सान गे !
धै अँचरा मुखि किये छिपौलैं, भौंरा के जाइ छइ परान गे !
दिन दिन तोरा अहिबात जे बाढ़ौ, कंचन-कलस करु दान गे !

९

बटगमनी

पटना सहर के साँकर गलिया, लागि गेल हे राम, दोहरी बजरिया !
अपना महल सँ निकले समलिया, कहि दिअ कहिदिअ हे राम झुलनी के मोलबा,

जबे हम हो राम, रहली लड़िकबा, काहे कैला हे राम, लड़िका से बिग्रहबा,
बाबा मोरा रहलइ बड़ निरमोहिया, भुलि गेलइ, हे राम, लड़िका के सुरतिया,
जब तोरा आहे धनी निपट लड़िकबा, कथिलैं कैलग्र लड़िका सें बिग्रहबा ?
बाबा मोरा रहलइ बड़ निरमोहिया, भुलि गेलइ लड़िका के सुरतिया !

१०

मृत्यु-गीत (मटौती)

प्रान परम मोरा हृदय कठोर भेल, अंखिया भाँझर मोरा भेल।
अँखिया भांझर मोरा भेल हे गोसइयाँ, जबैं जम आयत दुआर।
अँचरा झाँपथि गोदी सुताबथि, तइयो जम झपटि लेल।
आरे मति आरे बाँझे के जनम दिग्र, कोखि मिरतू नीको नइभेल।
स्वामी जी सँ दूर मोरा केलउँ गोसइयाँ, नहिरातं दूर मोरा भेल।
जब रे जनम भेल, दुनिया हरस मेल, सेहो मोरा जम लूटि लेल।
कल जोरि गोचर करइछी हे बिधाता ! सब सुफल भोगि लेल।
पसरल हटिया उसरि घर जाइ छइ, सौदा किछु कीनिग्रो ने भेल !
माय-बाप देने छल धन सम्पतिया, चलइ के बेर छीनि लेल !
काँचहि बाँस के डोलिया फनाएल, रतन मढ़लि चारुकात !
चारि जना मिलि डोलिया उठाओल, लय मरघट पहुँचाएल !
सात बन्धन के उकबा बनौलकइ, घुमि फिरि मुँह में लगाएल !
पसरल हटिया उसरि जाइ छइ, सौदा किछु कीनिग्रो ने भेल !
एक कोस गेल हंस, गेला हंस दुइ कोस, गेल तेसरहिं मंदिर निघारि !
जाहि रे मंदिरबा अतेक सुख केलिग्रइ, ताहि रे मन्दिर उठे धाह !
कहथि कबीर सुनू भाइ साधो, ई तन छीग्रइ माटी के बरतनमा !
तिनका लगइते फुटि जाय !

(आ) धार्मिक संस्कारों के आधार पर

११

छठ के गीत

आन दिन उगे दीनानाथ ! भोरे-भिनुसरवा, आजु किग्रए आइ हे दीनानाथ !
लगेलिग्रइ एतेक देरिया ?
वाट भेटिए गेल अन्हरा-अन्हरनियाँ, नैना दिग्रइते सेवक !
लागल एतेक देरिया !
आन दिन उगे दीनानाथ ! भोरे-भिनुसरबा, आजु किग्रए आइ हे दीनानाथ !

लगेलिअइ एतेक देरिया ?
बाट भेंटिए गेल-बाँझ-बँझिनियाँ, पुत्र दिअइते सेवक !
लागल एतेक देरिया !
आजु दिन उगे दीनानाथ ! भोरे-भिनुसरबा, आजु किअए आइ हे दीनाथ !
लगेलिअइ एतेक देरिया ?
लागल एतेक देरिया !

१२

भगवती के गीत

आनन्द आनन्द माँ के आनन्द मनैबनि हे !
कहमा आसन, कहमा बासन,
कहमा निज चौपारी हे !
गंगा आसन, गंगा बासन,
तिरहुत निज चौपारी हे !
आनन्द आनन्द माँ के आनन्द मनैबनि हे !
अँचरा फारि, अँचरी दियैबनि,
कलजोरि मिनती सुनैबनि हे !
आनन्द आनन्द माँ के आनन्द मनैबनि हे !
भरि कटोरा लेहू देबनि,
पूत लअ लेबनि ठारी हे !
आनन्द आनन्द माँ के आनन्द मनैबनि हे !

१३

महेशवाणी

टुटली ओ फाटली मरैया देखैत सोहावन हे !
ताहि तर जोगी एक आएल, गौरा दाइ ठार भेली हे !
माँगि-चाँगि लैला महादेव, तामा दुभि धान हे !
वाघ-छाल दैलनि सुखाय, बसहा खुजि खायल हे !
अदहन देलनि चढ़ाय, पेंचा ताकिय गेली हे !
केहन नगर केर लोक, पैंचों नहिं देलक हे !
अदहन देलनि उतारि, ठाढ़ि पंथ हेरथि हे !
औताह हेमंत रिखि-नाथ, कहबनि बुझाय हे !

माता-पिता धन लोभिता, धनहिं लोभायल हे !
के देल तपसि भिखारि, कि जनमक भिछुक हे !

१४

शीतला माता के गीत

कोने बन में आगे कोइली जे कुहुकि गेल,
कोने बन में बाजय मजूर ! मैया शीतला, कोने बन में बाजय मजूर !
आमक बन में आगे मइया, कोइली ने कुहुकि गेल, ब्रिज बन में बाजय मजूर!
हरिनी ने मारले मइया, बटेरहूबो ने मार ले,
बिछि बिछि मार ले मजूर ! मैया शीतला,
बिछि बिछि मार ले मजूर !
हक्कन कनइ छइ मइया ! बन के मजूरनी,
बारि बयस हरल सिन्नूर !
जौं तोरा आगे मजूरनी ! मजुरा हम जिया देब,
हमरा के की देबँ दान ?
चारि पहर हम नाच देखा देब,
भोरे होइते सबद सुनाएब, मैया शीतला !
भोरे होइते सबद सुनाएब,
गाबथि भगतगन सुनु हे शीतला मैया !
बालक क रछा करिहँ जुगेजुग !

१५

विष्णु-पद

दुखइ रे बालकबा बन में के देलक गे माई !
किनका बिनु सुन्न अजोध्या, किनका बिन्दु चौपाई !
किनका बिनु रसोइया सुन भेल, आब के भोजन बनाई !
दुइ रे बालकबा बन में के देलक गे माई !
राम क बिनु सुन्न अजोध्या, लछुमन बिनु चौपाई !
सीता बिनु रसोइया सुन्न भेल, आब के भोजन बनाई !
आगे आगे राम चलतु हैं, पीछे लछुमन भाई !
ताके पीछे सीता सुन्नरि सुन्न भवन कैने जाई !
दुइ रे बालकबा बन में के देलक गे माई !

१६

नदी के गीत

गंगा नदी

कल जोरि बिनती करइ छी गंगा माइ ! एक बेर दरसन देब ।
दरसन दय मन परसन कैलहुँ, अपना सरन राखि लेब ।
गौरी जे सुतलन्हिं शिव-धरहर पर, शिवजी सुतल कैलास ।
सुतल शिव उठता चिहाक, चारु दिसि नजरि खेराय ।
कहाँ गेली किये भेली, गौरी सुहागिन, सपना सुनलहुँ मन लागि ।
सपन एक हम देखल गौरी, सपना कहल नइ जाय ।
एतय दिन सुरसरि जटा में समयली, आब भागिरथ नेने जाय ।
जाहि सुरसरि लय एतेक तप कैलहुँ, सेहो सुरसरि भागिरथ नेने जाय ।
भनहिं विद्यापति सुनु शिवशंकर, मन जनि करिय उदास ।
जगत उधारनि नाम जग जननी, जागि जाएत जग में नाम ।

कमला नदी

फूल के डलिया कमला ! गहबर राखू,
कमला हमरे तोहरे लागल पिरीतिया,
कि नग्र के रछा करू हे !
पान के डलिया कमला ! गहबर राखू,
कमला, गहबर राखू !
कमला, हमरे तोहरे लागल पिरीतिया,
कि नग्र के रछा करू हे !
खस्सी पाठी कमला ! गहबर राखू, कमला गहबर राखू,
कमला, हमरे तोहरे लागल पिरीतिया,
कि नग्र के रछा करू हे !
परबा पाठुर कमला ! गहबर राखू, कमला गहबर राखू,
कमला ! हमरे तोहरे लागल पिरीतिया,
कि नग्र के रछा करू हे !

कोशी नदी

कानि हे कानि कोसिका बहिनो, लामी लामी केसिया,
देलकन्हिं लौटाय !
चिठिया लिखाबै हे ! दहून गे !

कोन बिपतिया तोरा परलउ हेकोसिका बहिनो !
धर्मजनीन देलहिन गे जगाय ?
बराबरि विपतिया हमरा परलइ बरइला भैया !
हो पानी बिनु, भैया हौ जरइ छइ संसार !
पानी बिनु ना !
ऐसन घोड़बा दौराविहौं बरइला भैया,
टूटि हे जेतइ इसानुमुख धार !

१७

साँप के गीत बिसहरि

लोहरा भइया सँ हे, लोहरा भइया सँ लोह मँगेलिग्रइ,
गहबर बनोलिग्रइ हे !
आहे, कुम्हरा भइया सँ हे, कुम्हरा भइया सँ दीप मँगेलिग्रइ,
साँझो ने देलिग्रइ हे !
आहे, तेलिया भइया सँ हे, तेल अनौलिग्रइ,
साँझो ने देलिग्रइ हे !
पटवा भाइया सँ बाती आनलिग्रइ,
साँझो ने देलिग्रइ हे !
साँझो ने देलिग्रइ हे !
फूल पतंग पर गोदी बलकबा, डँसिए ने लेलकइ हे !
आहे डँसिए ने लेलकइ हे !
आहे, केकरा कहबइ हे, केकरा कहबइ,
के पतिएतइ, के झट झारतइ हे !
आहे, अऊँठा बिन्हलकइ, मगज ठेकेलकइ,
स्वामी के कहबइ हे !
सारिल धान के लाबा भुजलिग्रइ, कारी गाय के दूध,
ओहै लाबा, ओहै दूध लय, बिसहरि चढेबइ हे !
आबे बिस झरतइ हे !

१८

जगरनथुआ

माता के जे गोर लगइ छी, पिता के परनाम,
तिरिया के जे झारू झटै छी, खेडल जाइबाबा धाम !

बोलियौ बम् बम् !
जगरनथिये हो भाइ, दानी वर सुरैंत लगाबिहौं,
खेलइ खन में, रोपइ खन में, रोपइ खन में धान ।
मने मन में, विचारइ छलिअइ, जेबइ जगरनाथ !
बोलियौ बम् बम् !

१९

कमरथुआ

भैरो लाल जोगिया, कान में कुन्डल शोभइ, गले मोतिहार !
कोने माँगे अनधन सोना, कोने माँगे पूत ।
कोने माँगे निरमल काया, कोने माँगे रूप ।
भैरो लाल जोगिया !
कान में कुन्डल शोभइ, गले मोतिहार,
निरधन माँगे अनधन सोना, राजा माँगे रूप ।
कोढ़िया माँगे निरमल काया,
बाँझ माँगे पूत ।
भैरो लाल जोगिया, कान में कुन्डल शोभइ गले मोतिहार !

२०

बरहम

तोरा भरोसे त हे ब्रह्म ! भगती अराधली,
रखि ह सरनमा के लाज !
पूरब मनइ हे ननुआँ सूरुजबा !
उत्तर मनइ हे पाँचों पट्टी नाथ !
दखिन त मनइ हे ब्रह्म ! गंगा हनुमान,
पछिम मनइह मीर सुलतान ।
तोहरो जे देव हे ब्रह्म ! पाटउ सूत जनेउआ,
डिह चढ़ि मनइह हे ब्रह्म ! डिह डिबार,
नग्र पैसि ब्रह्म-स्थान ।
एक में मनइह अलखा निरंजन,
पतली मनइह बासुकि नाग !
जिन कर तेल जरे परह्लाद;
तोहरा त नगरिया हे ब्रह्म ! बसै बारहो बरन लोक ।

बरजि के राखिह् अपन डाइनि जोगिनियाँ,
बरजि के राखिह् नगरिया के लोक !
हमरो त सँग हो ब्रह्म ! वीर छत्री हनुमान !
हुनको त सँगमा में अगिनियाँ के बान।
डाइनि त जोगिनियाँ के हो ब्रह्म ! हनुमत लेत झोटिआय।
लेसि देतउ अगिनयाँ के बान,
डाइनि त जोगिनियाँ हे हनुमत ! जरि क होउतनि खाक।

२१

देवास

पूरबे पछिम से हो बाबू निरंजन एक एलइ,
बैसल बबुआ हुरहुलबा फूल गाछ हो !
फड़ो ने खाइछइ निरंजत, फूलो नहि खाइछइ,
डारि पात करइ छइ नोकसान।
उतरे दछिन सँ निरंजन एक एलइ,
बैसल बबुआ हुरहुलबा फूल गाछ,
फड़ो ने जे खाइछइ निरंजन, फुलों नहि खाइछइ।
डारिपाल करइ छइ निगरो चाल।
मचिया बैसल सत्ती सोटइला नामी नामी केसिया,
पड़ि गेलइ निलंजन मुख दिठबा हो !
सती मने में बिचारइया, मने मन करइया जबाब।
सुनहि में सुनहि बहिनिया, काली सुकमरिया गे !
सुन बहिनि मधुरिया, गे साधू भाव गे !
तोहूँ मोरा बैसही बहिनियाँ देवघर गहबरबा गे !
हम जाइछी बिजोवा केर बन हो।
एतना बयनियाँ जे बोलइय बनि सुकुमार हो।
बटिया घटिअइ, बिजुअबा केर बन हो।
घड़िये चलल, पहर बितलइ बटिया,
सत्ती पहुँचल भैरव के दुआर हो।
हाँक लगाबइ हो बाबू, बनि सुकुमार हो।
बोलि गेलइ सीस महल के पास हो।
एतना बचनिया सुनइये, भैरव सुकुमार हो।

बटिया धरइय बबुआ, सिंह दरबार हो।
देखइअ सुरतिया हो बाबू, बनि सुकुमार।
के साजे लगलइ; मधुरि जबाब हो।
कियैं तोरा घटलउ बहिनियाँ, अनधन सोनमा ?
कियैं घटलउ पाकल बीड़ा पान !
कथि लागे एलें बहिनियाँ, निसि गे सगरोरतिया ?
तों करहिलियैं देहि बतलाय।
नइ हमरा घटलइ हो भइया अनधन सोनमा,
नइ घटलइ पाकल बीड़ा पान।
पूरब पछिम सँ हो भइया निरँजन ! एक ऐलई,
बैंसल बबुआ हुरहुलबा फूलगाछ।
फड़ो ने जे खाइयै निरंजन, फूलो नइ खाइयैं,
डाढ़ि पाते करअयै नोकसान।
ओहि लागि अइली हो भैया। तोहरा दुआर,
एहि त जे सुगबा गे मइया देही ने बझाय।
एतना बचनिया सुनइयै भैरब छोट भाइ,
सजे लगलइ मधुरी जबाब !

२२

झिझिया

केकरा कोठिया में दालि चाउर हे, केकरहि कोल्हुआ में तेल ?
बाबा के कोठिया में दालि चाउर हे, तेलिअबा के कोल्हुआ में तेल।
कथिकेर दिअरा, कथिकेर बाती, कथिकेर तेल ?
सोनेकेर दिअरा, पटम्बर सूत के बाती,
जरे लागल दिअरा, झके लागल बाती,
झिझरी पर रहिहें खबरदार, मइया गे, झिझरी पर रहिहें खबरदार !
अबोधबा बालक किछुयो ने जानिअ हे !

२३

जालपा

तोहें दूर देस जलपा, हमें परदेस।
केकरा पठैब, जलपा तोहर उदेस ?

धोतिया जनेउआ, जलपा तोहर संदेस ।
पांडे पठइहें सेवक, हमरो उदेस ।
कोने रंग घोड़ा जलपा, कथि के लगाम ।
कथिय चढ़ले जलपा, हँसति आय ।
नीलरंग घोड़ा जलपा, पाट के लगाम,
ताहि चढ़ल जलपा, तीनू भाइ ,
हँसइति पांड़े रहला लजाइ ।
क्यौ नइ कहइ माय ! पांडे घर आय ।
भनहिं विद्यापति भैरव भाइ,
सदय गोहारि लागू दहिन भै ।

२४

गैयाँ

केहन लिखल भगवान, हमर दिन केहन लिखल सीताराम !
आँखिक ज्योति सँ मुँहमा मलिन भेल, डेग दैत असमान !
हमर दिन केहन लिखल भगवान !
धर्म-कर्म सगरो हम त्यागल, त्यागल नित्य असनान,
तीर्थ-वर्थ सगरो हम त्यागल, त्यागल नित्य अन्न-दान,
हमर दिन केहन लिखल भगवान !
तुलसिदास प्रभु तुम्हरे दरस को, लिखल मेंटल नहिं जाइ !
हमर दिन केहन लिखल भगवान !

२५

जादूटोना

सकरी कुइयाँ पताल बसे पनियाँ, घुमि घुमि हे जोगनियाँ भरे पनियाँ !
घोड़बा चढ़ल आबे कारिख नंदलाल, कुइयाँ घाटे बबुआ घोड़बा बिलमाबे !
जेठ बैसखबा हे बबुआ, धुपबा उगे मतौना,
पियें लेहू हे जोगिनियाँ के, भरल पनियां ?
हमें नहि पीवै गे जोगिन, तोहर भरल पनियाँ !
पाने-फूले जोगिन हरबइ हम पिअसबा,
जबे न तों पिअब हो बाबू हमर भरल पनियाँ,
हमरा सँगे बबुआ तोरा चान धऽ मारब,
त हम नहि रहब, हे जोगिन ! तोरा सँगे, धमरबा हमरबा हवे जोगिन हे !

सुहब अमिरता नारि !
जबे न हो रचबा हमरा गौरे धमरबा,
हमहूँ मारब हो बबुआ, बनमा चढ़ाय ।
जबहूँ तो मारबै गे जोगिन, बनमा चढ़ाय,
हमहूँ मारबौ अगिनमा के बान ।
तहूँ त छहिन गे जोगिन, कमरू के सिखबा,
हमरो हबे जोगिन, दीनानाथ के असीस,
जहाँ जहाँ जेबै गे जोगिन, तहाँ तहाँ जेबौ,
नाक झोंट जोगिनियाँ के काटि लेबौ ।
तौहूँ त धरबे गे जोगिन परबा के रूपबा,
हम धरब गे जोगिन बझवाँ सरूपे !

२६

काली बन्नी

कोने दिन आहे काली ! तोहरो जनम भेल,
कोने दिन भेल छठियार ?
रबि दिन आहे सेवक, हमरो जनम भेल,
सुक्कर दिन भेल छठियार ।
नान्हीं-नान्हीं कौरिया गोसाइनि, खोंइछा बान्हि लयलनि,
चलि भेल कलबरबा दूकान ।
कहाँ गेलइ किये भेलइ, भैया कलबरबा,
किछु मधु दिहअ ने पिआय ।
पहिने जे आबि त काली बन्नी ! सब मधु पिबितअ,
आब मधु गेलइ बिकाय ।
एतबे बचनियाँ जब सुनल गोसाउनि !
पैंसल कलबरबा दोकान ।
किछु मधु पिअल गोसाउनि, किछु ढरकउलनि,
किछु लेल भार लदाय ।
मधु जे पीलनि गोसाउनि, भेलनि मतबलबा,
चलि भेलि बिजुबन शिकार !
हरिनो ने मारइ गोसाउनि, तितरो ने मारइ,
बिछि-बिछि मारल मजूर !

हकन कानइ छइ गोसाउनि, बनके मजूरनी,
बारि वयस रहल सिन्नूर।
जबे तोरा आगे मजूरनी बकसब सिन्नूरबा
हमरा के किए देबइ दान ?
भरि राइत आहे गोसाउनि ! नाच देखाएब,
भोर होइते सबद सुनाएब।

२७

डाइन-चक्र

माछ नचनियाँ बेंग बजनियाँ, चुट्टी साजल बरिआत यो।
आएल बरिआत बबुरतर बैसल, परिछन चलू सब लोक यो।
फार धिपाओल, बर के चुमाओल, दुलहिन के दागल मांग यो।
जब दुलहिनियाँ महफा चढ़ल, छुछुन्दरि चौक पुराय यो।
माछी सब गीत हारिनि आओल, माटिक दिअरा जराय यो।
दुलहिन चलि भेल अपन ससुरबा, मइया देल सराप यो।
जहिया धरि मोरा मइया मरती, पिता के हैतँन्हि सराध यो।
भैया-भौजी सबके सरधिया, समाज धुआओल मांग यो।
कबीरदास प्रभु गाओल, डाइन-चक्र घुमायल यो।

२८

झरनी के गीत

हम दुरजरू गे बेटी, जे अपन सासुर,
बाबा जे बिआहल गंगा पारे जी !
सब के बिआहल, बाबा देस तिरहुत में,
हमारा बिआहल गंगा पारे जी !
कोना हम जेबइ बाबा, कोना हम एबइ ?
कोना हैबइ गंगा पारे जी !
डोली चढ़ि जेबइ बेटी, डोली चढ़ि एबइ,
नैया चढ़ि हैबइ गंगा पारे जी !
सावन भादों के उमरल नदिया,
डूबि मरब मजधारे जी !
सिक्को जे चिरि चिरि बेड़ा बनौलिअइ,
ओहि चढ़ि हैबइ गंगा पारे जी !

टूटि गेलइ सिक्की, जे बुड़ि गेलइ बेड़ा,
डूबलइ बेटी, मजधारे जी !
नहिरा क लोक सभ करुना करइये,
ससुरा में बाजइ बधाई जी !

(इ) पेशों के आधार पर

२९

चाँचर

कहमें सँ एतइ बरदिया, कहमें सँ एतइ जेठ भाइ !
ससुरे सँ एतइ बरदिया, नहिरे सँ एतइ जेठ भाइ,
कथि पर बैठेबइ बरदिया, कथि पर बैठेबइ जेठ भाइ?
खरतर बैठेबइ बरदिया, अँचरे बैठेबइ जेठ भाइ,
कथि लोटा पानी देबइ बरदिया, कथि लोटा पानी जेठ भाइ ?
आहे बूचा काटि के पानी देबइ बरदिया,
झारी लोटा पानी जेठ भाइ ।
कथि खियेबइ बरदिया, कथिए खियेबइ जेठ भाइ?
खुद्दी चुनि देबह रे बरदिया, खुअबे खियेबइ जेठ भाइ ।
राइत बंसी मारबइ मछरिया, गगरी पर बोलइ जोड़ी मोरबा,
कथि ले समादबइ बरदिया, कथि ले समादबइ जेठ भाइ ?
टका ले समादबइ रे बरदिया, छोटकी ननदिया जेठ भाइ ।

३०

जाँत के गीत

गामक पछिम एक ठुठी पकरिया रामा, ताहितर बहे बसात ।
ताहि तर पातर पिया पलंगा ओछौलनि,
सुख केर निनियाँ रामा, आबि गेलनि, ना !
हटि सुतू, फरक सुतू, पातर बलमुआँ, रामा !
तोरे घामे ना, चुनरिया मइल होएत, तोरे घाम, ना !
एतना बचनियाँ जौं सुनलनि बलमुआँ, रामा !
चलि भेला हाजीपुर हटिया रामा, चलि भेला, ना !
बाटे रे बटोहिया से तोहरो भैया, रामा !
येही बाटे, ना देखल, बलमुआँ रामा, येही बाटे, ना !
देखलौं में देखलौं रामा, हाजीपुर हटिया, रामा !

बेसाहइ छलइ ना, गारा गजमोतिया, बेसाहइ छलइ, ना !

सासु कहलखिन हे दिलवर ! एके सेर मरुआ उलबिह हे !
हम दिलवर ! भूलि गेलिअइ, चारि सेर मरुआ उलेलिअइ हे !
सासु कहलखिन हे दिलवर ! एके गो रोटी पकबिअ हे !
हम दिलवर ! भूलि गेलिअइ, चारिगो रोटी पकौलिअइ हे !
सासु कह गेलखिन घिआ-पुता के टुकड़ी-बखड़ा दीहक हे !
हम दिलवर भूलि गेलिअइ, साँसे रोटी बँटलिअइ हे !
सासुजनी कहि गेलखिन हे दिलवर ! बकरी क सेवा करिह हे !
हम दिलवर ! भूलि गेलिअइ, बकरी क टाँग तोरि देलिअइ हे !
सासु कहलखिन हे दिलवर ! बुढ़बाक सेवा करिहँक हे !
हम दिलवर भूलि गेलिअइ, बुढ़बा के टाँग तोरि देलिअइ हे !

३१

खोदपाडनी के गीत

कहाँ गेली किये भेली, छोटकी ननदिया, जान !
पुछू गे छोटका भैया गोदनाक कौड़िया, जान !
हम नहिं जानियौ भौजी, गोदना क कौड़िया, जान !
अपनहिं पुछि लेहु, अपन भरतबा, जान !

(ई) ऋतुओं से सम्बन्धित गीत

३२

फाग

माघ मास सिरपंचमी, रंग होरी, ब्रज-होरी हो !
क्यौ नइ घर सँ बहार होये, रंग होरी हो !
जौं क्यौ घर सँ बहार होएत, रंग होरी, ब्रज-होरी हो !
कृष्ण चीर छिटकाबैं, लाल रंग होरी हो !
बालक रहितथि बुझाय, दितहुँ रंग होरी, ब्रज-होरी हो !
छैला बुझल नइ मानय, लाल रंग होरी हो !
कुइआँ रहितथि भथि देतहुँ, रंग होरी हो, ब्रज-होरी हो !
समुद्र मथलनइ जाय, लाल रंग होरी हो !
तागा रहितथि तोरि देतहुँ, ब्रज-होरी हो !
सिनेह तोरल नहिं जाय, लाल रंग होरी हो !

३३

चैतावर

गहिरी नदिया गर्गारियो ने डूबइ,
कौने ठाढ़ पछिताउ हो रामा ! श्याम रे बिनु !
गोखुला नगर नइ भावइ हो रा ! श्याम रे बिनु !
आपुहि जाइ दोआरिका में बैसू,
वोहि कुबजी होइती रानी हो रामा ! श्याम रे बिनु !
गोखुला नगर नइ भावइ हो रामा ! श्याम रे बिनु !
तरुअरि पात सभै झरि झरि गेलइ,
अमुआँ फरलइ टिकोरबा हो रामा ! श्याम रे बिनु !
गोखुला नगर नइ भावइ हो रामा ! श्याम रे बिनु !

३४

बसन्त

कुसुमक कानन कुंज बसी,
नैन क काजर घोर मसी,
आरे, केकरा सँग खेलब रितु बसंत !
घर नइ ऐला अमरुख कंत,
नख सँ लिखब लला जी क पास !
लीखि पठाएब आखर सात,
लीखि नइ सकइ छी आनक बसन्त,
पहिलुक पंथ छी जीव क अन्त !
उड़ि उड़ि भमरा जाउ बिदेस,
हमरो लला जी क कहब उदेस,
तोहरो लला जी के चिन्हियो ने जानियनि,
कोना संमाद गोरी लै जाएब बिदेस !
हमरो लला जी के मुठिएब डाँर छैन, अलप बयस !
चोलिया एक प्रभु देलनि पठाय,
चारू कात हीरा, मोती, लाल लगाय,
पहिरिय ओढ़िय धनी ठाढ़ भेली आँगन,
बिनु पिया सिनुरो सोभइ नइ माँग !
आरे, केकरा सँग खेलब रितु बसंत !

३५

मधुसामनी

साबन बिसहरि लेल परबेस,
भादव बिसहरि खेलू झिलहेर।
आसिन बिसहरि गुआ माँगु पान,
नित उठि सँग खेलथि हनुमान।
कातिक बिसहरि नैना ढरु नोर,
अगहन बिसहरि होइती अमोल।
फल मधे तुलसी, नबैद मधे पान,
देवी मधे बिसहरि, दोसर नइ आन।

३६

बरसाइत

जेठ मास अमावस सजनि गे, सब धनि मंगल गाउ!
भूखन बसन जतन कय सजनि गे, रचिरचि अंग लगाउ!
काजर-रेख सिनुर भल सजनि गे, पहिरथु सुबुधि सयानि,
हरसित चललि अछयबट सजनि गे, गबइत मंगल खानि!
घर घरनारि हँकारल सजनि गे, आदर से संग गेलि,
आइ थिक बरसाइत सजनि गे, तैं आकुल सब भेलि!
घुमड़ि-घुमड़ि जल ढारल सजनि गे, बाँटत अछत सुपारि,
'फतुरलाल' देता आसिस सजनि गे, जीबथु दुलहा-दुलारि!

३७

पावस

लखि पावस के आओना। वृन्दावन तरु फूलन लागे,
फूलत कुंज सोहावन ना रे!
झनन नन नन झिंगुर झँकारे, दादुर टरर डरावना रे!
पिहुआ पिउ पिउ पिया पिया करइ, कोइल कुहु कुहु कावना रे!
गोपी गोप सँग लै रास रचल मन भावना रे!
तन तनन नन नन नन नन मुरली टेरि सुनि मेघबा झरि लावना रे!

३८

मलार

परबस पड़ल कन्हैया, रे दैआ, परवस पड़ल कन्हैया !
आएल जेठ हेठ भेल बरखा, मदन दुगुन सरसइया, रे दैया !
अखाढ़ हे सखि, पिया परदेस गेल, ओतहि रहल निरमोहिया, रे दैया !
सावन हे सखि जल चकमक करै, दादुर जीव तरसइया, रे दैया !
भादब हे सखि, रैनि भेयाओन 'नन्दीपति' गुन गइया, रे दैया !
परबस पड़ल कन्हैया !

३९

साँझ

कौने घर साँझ सझा गेल, कौने घर दीप जरु हे !
कौने घर उचित सुदिन भेल, कोने दाइ अइहब हे !
बाबा घर साँझ सझाय गेल ! अम्मा घर दीप जरु हे !
अइहब दाइ घर लछमी बसेर लेल, उचित सुदिन भेल हे !

४०

प्रभाती

कमल नयन परदेस हे भामिनि !
राम लखन सिया बन क सिधारल,
धैलनि तपसी के भेस, हे भामिनि !
बन-पत्र आसन, बन-फल भोजन,
बन बन फिरथि नरेस, हे भामिनि !
कमल नयन परदेस, हे भामिनि !
एके रघुपति बिनु अबध अनाथ भेल,
जेहन बन लागल कुभेस, हे भामिनि !
तुलसिदास प्रभु तुम्हरे दरस को,
छपि कय उगइ दिनेस, हे भामिनि !

४१

बरहमासा

प्रथम मास निज कातिक आएल,
मोहि तेजि कंत चलल परदेस,

कि में ना जिओं आलि रे हुनि श्याम सुन्नर बिनु !
दोसर मास जब अगहन आएल,
चलहुँ सखी नैंहर जाएब,
फूल-पान रस काजर कीन्ह,
बिछुरल कंत दैब दुख दीन्ह,
कि मैं ना जिओं, आलि रे हुनि श्याम सुन्नर बिनु !
पूस क पाला खसैं दिन चारि,
झाँझरि केचुआ बदन फहराइ,
कापर गेरुली, कापर सेज,
बिना पिआ काँपइ धनिक करेज,
माघ मास गोरी बर्त तोहार,
टेक डहक आहै गोरी पाँचो इतवार,
गंगा नहाय, गंगा दहुने आसीख !
जुग जुग जीबू कंत लाख बरीख,
फागुन फगुआ बहै बिकरार,
तरुअनि पात सभैं झरि जाय।
रहिगेल पतुहा, रहि गेल रोल।
अमरुख कंत गेला चितचोर।
चैंत मास फुलैंल बन-टेस,
गौरीनइ पठावल पियाक संदेस।
कि में ना जिओं आलि रे हुनि श्याम सुन्नर बिनु !
बैंसाख मास लगन दिन चारि,
सोचथि लगन बिआहक राति,
छारब मँड़बा गाएब गीत,
बिनु पिया गीतो लागइ अनरीत,
जेठ मास वरिसाइत दीन
लैंक गोरी सब बड़तर गेल,
सिन्नुर चकमक काजर क रेख,
हमरहुँ कंत रहल परदेस,
ओही रे सनेसिया कहबनि बुझाय,
अगिन बिरह, दुख सहलो ने जाय,

कि में ना जिग्रौं ग्रालि रे हुनि श्याम सुन्नर बिनु !
ग्रसाढ़ मास बस बरखा क दीन,
बँसबा कटाएब, बंगला छरायब,
चिरइँ चुनमुनियाँ खोंतबा लगायत,
हमरहुँ कंत रहल परदेस,
साग्रोन नदिया जलामय भेल,
पहिरन कुसुम उतारन चीर,
बट्टा भरि चानन ग्रंग लगाय,
हमरहुँ कंत रहल परदेस !
भादब रैनि भिग्रावनि राति,
ग्रसकर रधिका दोसर नइ कोइ,
जातिक तिरिया बुद्धिक छोट,
कोना खेपब भादब निसि राति !
ग्रासिनमास पुरल बारहो मास !
कि में न जिग्रौं ग्रलि रे, हुनि श्याम सुन्नर बिनु !

(उ) नाच के तीत

४२

झूमर

सोनरा नहिं गढ़ि देलकइ गहना, हमर गे !
करइ छइ रगड़ गे ना !
एकर कनि देखहिन चतुराइ,
पहिने ल लेलकइ गढ़ाइ,
ऊ त पड़ा क गेलइ दड़िभंगा सहर गे !
करइ छह रगड़ गे ना !
कहलिग्रइ गढ़ि दे जइसन, कारा,
ग्रारो बुल्की, नथिया, छाड़ा,
हड़बड़ में के देलकइ कंगना नम्हर गे !
करइ छइ रगड़ गे ना ।
जौं बढ़ेतइ बेसी बात,
खेतइ थप्पड़, मुक्का, लात,
ऊ त हुरकि क मरतइ जा क ग्रपना घर गे !

करइ छइ रगड़ गे ना !
बाबा भइया के बजाय,
देबइ फभ्फ़ति कराय,
गदहा पर चढ़ा कै बुलेबइ भरि नगर गे !
करइ छइ रगड़ गे ना !

४३

जूट-जट्टिन

जेबइ रे बंका, जेबइ रे बंका, करब रे बिग्राहे !
ग्रानू ग ए सोनमा क साज,
कहाँ पेबइ कहाँ रे पेबइ, सोनमा क साज ?
मोर जट्टा रहतइ कुमार !
जेबइ रे जट्टा, जेबइ रे जट्टिन, करबौ रे बिग्राहे !
ग्रानू ग ए मौरिया क साज,
कहाँ पेबइ कहाँ रे पेबइ, मौरिया क साज ?
मोर जट्टिन रहतइ रे कुमारि !
जेबइ रे जट्टा, जेबइ रे जट्टा, करब बिग्राहे !
ग्रानू ग ए हँसुली क साज,
कहाँ रे पेबइ हँसुली क साज,
मोर जट्टा रहतइ रे कुमार !
जेबइ रे जट्टिन, जेबइ रे जट्टिन, करब बिग्राहे !
ग्रानू ग ए बलिया क साज,
कहाँ रे पेबइ, कहाँ रे पेबइ, बलिया क साज ?
मोर जट्टिन रहतइ कुमारि !

४४

श्यामा-चकेबा

पनमा जे खाएल हे फलाँ भैया,
पिकिया नेरौले ग्रोहि ठाम ।
पिकिया जे बहि गेल रे भैया,
गंगा जमुना केर धार ।
ग्रोहि पार फलाँ भइया, खेलथि शिकार,

एहि पार फलाँ बहिन रोदन पसार ।
जनि कानू जनि खींजू बहिनो हमार ।
बाबा के सम्पतिया बहिनो आधा देबउ बाँटि,
बाबा के सम्पतिया रे भैया, भतिजबा के आस ।
हम दूर देसनी रे भैया, सिन्नूरबा के आस ।
हम दूर देसनी रे भैया, मोटरिया के आस ।

४५

रास

मुरली में किछु कैलनि श्याम मोर गेआन हरे हो !
श्री बृन्दाबन के कुंज गलिन में श्याम चराबथि गाय,
मुरली टेरथि, फिरथि जमुना-तट मोहि गृह रहलोने जाय,
बिरह उठल मुरली धुनि सुनि, चितमोर चंचल डोल,
कंठ सुखाय दरद होय छतियहिं, मुख नहिं आबै बोल,
काहि कहब किछु भावय ने सखि हे ! टोना कैल गोपाल !
घर दारुन ननदि गड़ि आबधि, प्रीति लागल नंद-लाल ।
'साहेब दास' रास वृन्दाबन तुअ छाँड़ि भजब ने आन ।
जहाँ बसय त्रिभुवनपति ठाकुर, तहाँ लगे हमरो ध्यान ।

४६

नटुआ और विपटा के नाच

अरे चूड़ा बन्दौं, भूजा बन्दौं, रोटी बन्दौं मरुआ ।
अरे गुलर बन्दौं, डूमरबन्दौं, आओर बन्दौं अल्हुआ ।
हल बन्दौं, बैल बन्दौं, आओर बन्दौं गैया,
चटाक पट पट पड़त सिर पर, भागत बाप के भुतबा !
सब सँ बढ़ि के तोहरे बन्दौं, मालिक बाबु क जुतबा !

(ब) सामाजिक आर्थिक आधार पर

४७

नचारी

आजु शिव रुसथिन गे, माई !
ऐहन रूप दिगम्बर भोला मोरा रुसथिन गे माई !
भाँग घोंटि कुंडली में राखल, गणपति देलनि हेराई !

जौं सुनि पौता बूढ़ा दिगम्बर, तुरन्त जेता पड़ाइ, गे माई !
आजु शिव रुसथिन, गे माई !
कार्तिक गणपति दुइजन बालक, दुनू गेला छिरिआइ,
कियै लय बोधब इहो दुनू बालक, मिलैय ने पैंच उधार, गे माई ।
आजु शिव रुसथिन, गे माई !
आँखि तरसि शिव देल दमसाइ, गौरी चलती पड़ाइ,
जहिया सँ जोगिया घर हम ऐलहुँ, सँगहि में बिपति गमाइ, गे माई !
आजु शिव रुसथिन, गे माई !
आहे माई, पअर-पड़ोसिन गौरी के दिओनि बुझाइ,
भाँग झोड़ी सँगहि भेंटल, नाहक दोख लगाइ, गे माई !
आजु शिव रुसथिन, गे माई !

४८

कोशीकी बाढ़

कथि लैं रोपलिअइ कोसी माय, आमुन जामुन गछिया हे !
कथि लै रोपलिअइ बीट बाँस ?
कथि लैं वढ़ेलिअइ कोसी माय, नामी नामी केसिया हे !
कथि लै केलिअइ सिंगार ?
खाइ लै रोपलिअइ आमुन जामुन गछिया हे !
जूड़ा लै बढ़लिअइ नामी नामी केस !
छैला लैं केलिअइ सिंगार !
खाइयो ने भेलइ आमुन जामुन फलबा हे !
बान्हियो ने भेलइ नामी नामी केस के जुड़बा,
भोगल भेलइ जीव काल हे कोसी माय !

४९

अकाल

अघहन सारिल काटि खाएब, पूस करसी डाहि यो ।
माघ खेसारी क साग खाएब, फागुन ओकर छिमि यो ।
चैत ओकर दालि खाएब, बैसाख टिंकुला सोहि यो ।
जेठि खेढ़ी के दालि खाएब, असाढ़ गाड़ा गाड़ि यो ।
सावन कटहर कोआ खाएब, भादब ओकर आँठि यो ।
आसिन मरुआ पीसि खाएब, कातिक ठक्क उपास यो ।

५०

प्रगतिवाद

एहन अन्याय नइ देखलहुँ गे माय !
किछु लोक बैसल बैसल खीरपुरी खाय !
ककेरो तीन तीन साँझ फक्का मजुरबा जाय !
जे बिनइ कपड़ा लत्ता मिल के चलाय,
तेकरा देह पर नँगोटियो ने जाय !
एहन अन्याय नइ देखलहु गे माय !
जे बइसे गद्दी पर से रहइ अलसाय,
तेकरा देह पर मलमल सोहाय,
जे बनाबै महल अटारी, दिनराति कमाय,
तेकरा झोपड़िया के होइ ने उपाय !
एहन अन्याय नइ देखलहुँ गे माय !

५१

सत्याग्रह

गरजब हम मेघ जकाँ, बरिसब हम पानि जकाँ,
उड़ाय देव लन्दन के हुँकार में !
बिजली जकाँ कड़कि कड़कि,
आन्ही जकाँ तड़कि तड़कि,
भगा देव गोरा के टँकार में !
कुहुकब हम कोइल जकाँ,
नाचव हम मोर जकाँ,
मनालेब माता के बीना के झँकार में !

५२

पंचायत राज

जाग जाग भारत के प्यारे नवजवान रे !
उठ आब सीना तान रे !
अँगुली पर छथि गनल गुत्थल दुनियाँ के बइमान रे !
पूँजीशाही, साम्राज्यशाही कतेक कहू नाम रे !
उठ आब सीना तान रे !

कान मुनि मुनि क भागल परदेसी बइमान रे !
जाग जाग भारत के प्यारे नवजवान रे !

५३

रामराज

किसनमा के दुख सब दिग्रौ ने छोड़ाय, हो किसनमा के !
देखिते देखैत बीत गेल चारि पहर राति,
तारा नुका गेल, भेल भिन्सर, हो किसनमा के ।
दूध भात खेता ग्राब बच्चा हमर, हो किसनमा के ।
राम राज हैत सब हैब खुशहाल, हो किसनमा के ।
ग्रपन भेल राज पाट ग्रपन सरकार,
ग्रपने हाथे हम लिखब लिलार, हो किसनमा के ।
बात सब साँच ग्रछि, बहैत ग्रछि बिहारि ।
गाँव गाँव में पंचायत के होइ ग्रछि प्रचार, हो किसनमा के ।

५४

ग्रँगरेजों की बिदाई

जैबा के त गेल ग्रँगरेज बड़ा दुख दऽक गेल ।
लड़इ के लेल हिन्दुस्तान में पाकिस्तान बना क गेल ।
नौग्राखाली, चानापुर, ग्रो ढाका में लड़ा क गेल ।
काशी बम्बई मराठा में छुड़िया चला क गेल ।
हिन्दू-मुसलमान भाइ-भाइ दुनू में लड़ा क गेल ।
पटना ग्रो भागलपुर में ग्रागि फुकबा क गेल ।
सोना चाँदी तामा पीतल सब किछु लै क गेल ।
दमड़ी के कागज ग्रोकर नमरी बना क गेल ।
चाउर गहूम चना मटर सब किछु लै क गेल ।
भारत में जड़इ खातिर मोमबत्ती जड़ा क गेल ।
चीनी ग्रो किराशन तेल क कन्ट्रोल करा क गेल ।
पैसा जे चलेल क तइ में छेद करा क गेल ।

५५

बूढ़े का ब्याह

भारी जुलुम देखइ छी शादी लगन बुढ़ारी में !
पाकल पाकल दाढ़ी में ना !

बुढ़बा छल बड़ शौकीन, लड़िकी खोजै कमसीन,
रुपया गने तेरह सौ तीन, धरे पेटा री में,
पाकल पाकल दाढ़ी में ना !
अगुआ सँ कैलनि पुछारी, मँगलनि एक हजार अगारी !
बुढ़बा खोजै लगलनि सन्दूक ओ पेटारी में,
पाकल पाकल दाढ़ी में ना !
एक हजार रुपया लै क साथ, बुढ़बा मोंछ पर फेरै हाथ !
नैना कनखिया चलाबे अपना घर-दुआरो में !
पाकल पाकल दाढ़ी में ना !
बुढ़बा सजि गेला बरात, लड़िकी जानल ई सब बात,
ऊ तअ भागि पड़ेलइ बहिन के ससुरारी में,
पाकल पाकल दाढ़ी में ना !
बहिन सुनइ समझइ ई बात, शादी कैलनि देवर के साथ,
लड़िकी क बाप बनयलनि अपन मुँह अगारी में,
पाकल पाकल दाढ़ी में ना !
अगुआ क मुँह भेल हुरार, बुढ़बा रहिय गेल कुमार,
राम अशीष गनमा सुनाबइ रेलगाड़ी में,
पाकल पाकल दाढ़ी में ना !

५६

गाँधीजी का निधन

तिरहुति

बिरला भवन सँ निकसल रे, मोहन चरखा धारी।
बाम दहिन आभा मनू गाँधी रे, सँग पोती दुलारी।
सत्य बचन सत्य मारल रे, सत्य क वो पुजारी।
प्रार्थना सभा बापू गेलनि रे, 'नाथू' गोली सँ मारी।
आभा गाँधी, मनू गाँधी रोबथि रे, रोबथि नर-नारी।
नेहरू रोबथि पछतावथि रे, सब क्यौ कर्मचारी,
दुनिया जहान सब रोबथि रे, 'नाथू' अत्याचारी,
राष्ट्र क झंडा झुकावल रे, मन में दुख भारी,
तीस जनवरी दिन लागल रे, रैन अन्धियारी।
'गोनर' तिरहुत गाओल रे, बापू सरँग सिधारी !

५७

नेताजी

कार्तिक पूर्णमासिक में लागइ सोनपुर मेलबा, हाय रे जियरा !
कहाँ गेलइ बबुआ सुभाष, हाय रे जियरा !
खोजैत खोजैत हम भेली हलकनमा, हाय रे जियरा !
कहाँ गेलइ बबुआ सुभाष, हाय रे जियरा !
उठू उठू भारत माता, धरिऔ ने सगुनमा, हाय रे जियरा !
कहाँ गेलइ बबुआ सुभाष, हाय रे जियरा !

५८

भूदान

जनता सरकार सँ कानून भेल जारी,
गाँव के बाबू सब, चलइता आब कोदारी ।
कतेक के राज गेल, कतेक क जमींदारी,
अइ साल कानून भेल जाएत आब खेतबारी ।
पूरी छूटल हलुआ छूटल; पाँच पाँच तरकारी ।
मुश्किल सँ खाय कें मिलत सतुआ खेसारी ।
जनता सरकार सँ कानून भेल जारी ।

५९

श्रमदान

माघ, फागुन, चैत, बैशाख महीना कोशी बान्धइ लेल,
भेल हलचल !
पूँजीपति, धनवान, मजदूर, किसान भाइ,
छिट्टा कोदारि ले चलचल !
जेठ असाढ़ सावन कोसी बढ़े,
भादों में सब के फसिल दहे,
बरसत वै, घरदह वै, भोजन खातिर सग क्यौ होइ लल्ल ।
छिट्टा कोदरि ले चल चल !
आसिन कातिक कर्जा ल क खाइ छी,
अगहन, पूस धान चाउर लेल ललाइ छी,
बाध में जाइ छी, बड़ पचताइ छी,

फिकिर सँ सब कें गाल चोटकल !
छिट्टा कोदारि ले चल चल !
जे क्यौ छी विद्यार्थी बाबू,
श्रमदान क हिम्मति देखाबू,
यश लूटि बाबू घर चलि आबू,
कुरता उतारू झिन्ना मलमल !
छिट्टा कोदारि ले चल चल !
'गोनर' कहे बाहर नइ जाएब,
घरे रहब खूब अन्न उपजाएब,
बैल राखब, जोतब खूब हल !
छिट्टा कोदारि ले चल चल !

(ए) अन्य विविध गीत

सामान्य गीत

९०

शिशुगीत

हलही गे, झलही गे ! गोला बरद खेत खाइछौ गे !
कतय गे ? डाह पर गे ! हाँकि दहिन गे, रोमि दहिन गे !
बबा गेलइ परदेसिया गे !
की की लेलइ सनेसिया गे !
लाले लाले बिछिया लै लइ,
कल्हुआ तर पहिराबइ छइ,
सासु गोर लागइ छइ, गोतनी के ठुनकाबै छइ !
ननदि के बइलाबइ छइ !

मँइयाँ गे मइँयाँ, अँकटा खेत हम गेलिअइ गे मइँयाँ !
अँकटा निखोरि हम खेलिअइ गे मइँयाँ !
पेटहू दरद जे भेलइ गे मइँयाँ,
सोंठि पीपरि तों खइह हे धीआ !
पेटहू दरद छूटि जेतअ हे धीआ !
सोंठि पीपरि हम खेलउँ गे मइँयाँ !
पेटहू दरद नइ छूटलइ गे मइँयाँ !
उजरा खस्सी तों मारिहँ हे धीआ !

काठ के कठपुरी बनाबिहँ हे धीआ !
जमइया क पैर धकअ कनिहँ हे धीआ !
जमइया क मोन पतिअबिहँ हे धीआ !
पेटहू दरद छुटि जेत अ, हे धीआ !
मइँयाँ गे मइँयाँ, अँकटा खेत हम गेलिअइ गे मइँयाँ !

६१

लोरी

नीनियाँ एलड़ बिरिनियाँ सँ,
बौआ ऐला पुरैनियाँ सँ,
बौआ के मात्रिक में की की बिकै ?
हैंठा हैंठी, रीठी बिकाय,
तइ लै बौआ रूसल जाय,
बाबा, पित्ती मिलि, बौंसँ जाय,
चल रे बौआ खेत खरिहान,
भरि सूप देबौ, देसरिया धान,
तेकरो कीन क खैहौं गूआ-पान,
पानवाली कहइ मोरा पान नइ,
बौआ कहइ मोरा दाँत नइ।

६२

बिरहा

थाना में दरखास्त द देलकइ, कहमां सँ आबड़ चपरसिया।
हाथ में हथकड़िया देलकइ, डाँर में हो रसरिया।
ठुमुकि ठुमुकि के पियबा रोबइ, फाटइ मोर कलेजबा।
केकरो काटे बाजूबंद, केकरो काटे नथिया,
मूंगा के बाजूबंद, मोती के काटे नथिया,
बारह बजे के मेला रहइ, गंगा असननमा।
सखियन के हुमेला रहइ, गंगा असननमा।
ई सतुआ तैयारी के लिअइ पीसिलेलिअइ चटनिया,
सतुआ पिसइते मोरा डोले ला बदनमा,
डाक बंसी बाजे, पियबा गोद में सँ भागे,
जा क सिद्धरी कलूउआ लै के ठार !

६३

निर्गुण

हँ रे, बड़ रे जतन सँ सुगा एक पोसल,
माखन दूधबा पिलाय !
हँ रे से हो सुगबा बिरिछिया चढ़ि बइसल,
पिंजरा रे धरती लोटाय !
कहमां सँ हंसा आग्रोल ? कहमा समाग्रोल, हो राम ?
कि ग्राहो रामा हो, कोने गढ़ कयल मोकाम ?
कवन लपटाग्रोल, हो राम !
सुरुपुर सँ हंसा आग्रोल, नरपुर समाग्रोल, हो राम !
कि ग्राहो राम हो, काया गढ़ कयल मोकाम !
मायाहि लपटाग्रोल, हो राम !

६४

कीर्त्तन

ग्रहाँ पैदल एतेक दूर सँ ऐलेउ कोना ?
ग्रहाँ के जे माय बाप बड़ निदरदी ।
एहन मुनी सँगे रहलउ कोना ?
ग्रहाँ क जे हाथ पैर कमल क फूल सन,
ग्रौंठा सँ पाथर उड़ैलउ कोना ?
राजा जनक जी कें जज्ञ सुफल कैलउ,
ऐहन धनुखा ग्रहाँ तोड़लहुँ कोना ?
ग्रहाँ सिया बिग्राहि घर लेलउ कोना ?
ग्रहाँ पैदल एतेक दूर सँ ऐलउ कोना ?

६५

उदासी

एते दिन ग्राहे कृष्ण सँगहिं गमग्रोलहुँ, ग्राइ कियै जाइछी बिदेस ?
ऐते दिन ग्राहे कृष्ण बसिया बजौलहुँ, ग्राइ कियै जाइछी बिदेस ?
ग्राजु क दिन दुर्दिन भेलइ हे सखि सब, तँ हम जाइछी ।
दस पाँच सखि सब गाछ कदमतर, करुना कैने छथि ठाढ़ !
घुरियो ने ताकइ कृष्ण, फिरियोने ताकइ, कृष्ण जी के छतिया कठोर !

भनहि विद्यापति सुनू निरमोहिया, सखि सभदिन ने बुझाय !
जाइयौ सखि सब गोखुला नगरिया, फेरो आएब एहि ठाम !

६६

ग्वालरि

नन्द नंदनि जगत्र बंदनि, भगति जनिका सारथी !
भला, भगत जनिका सारथी !
होंहि कृपा कृपालु माधव, तोहें चरन के आरती !
भला, तोहें चरन के आरती !
काछनी बहु काछि लेलन्हि, तिलक शोभनि लिलाट री !
भला, तिलक शोभनि लिलाट री !
सिर मटुकी हाथ बँसुली, लोटथि जमुनाक तीर री !
भला, लोटथि जमुनाक तीर री !
गीत गुंजरि अधिक सुन्नरि, रासमंडल ठाढ़ री !
भला, रासमंडल ठाढ़ री !

६७

नवान्ह

कातिक गव सँ उपजल धान ।
ठकबक बाभन ठकनहि जाय ।
बाभन घर मोरा कन्या कुमारि,
गैया क गोबर सँ अँगना निपाय,
गैया क गोबर कुम्हर क फूल,
सिन्नूर पिठार लय गोबर धराय,
अगहन सन मध्य उपजल धान,
चूरा-गुड़ लै करब लवान !

६८

तुलसी-उद्यापन

कौने बाँस बीट रोपल, कौने काटल ?
किनका धर्म उचार, अकास दीप लेसल ?
किनकर रोपल कुस, कि कोन उजाड़ल ?
फलाँ धर्म उचार अकास दीप लेसल ?

फलाँ कुस लगाओल, हुनि काटल,
मासक मास उचार, धर्म पुनि ठानल।
कथि के दीप बनाओल, कथि क बाती देल,
कौने लेसल ?
प्रहलाद अकासे दीप लेसल,
सोना क दीप बनाओल, पाट क बाती देल।
फलाँ हाथ धराय, अकास दीप लेसल,
सोना के सिंहासन आनल, आनि बैसावल,
पंडित बेद पढ़ाय, मास कातिक भेल !

विशेष गीत (आंशिक रूप में)

कथा-गीत

६९

लोरिक

घोंघा सन आँखि; छीटा सन कपार।
लटभरि जे टीकी लागइ, डेढ गज सीना; मुट्ठी डाँर।
अस्सी हाथ धोती कुलपेंच लागइ ।
नब्बे हाथ पगिया राउत के ठेंठे होइयै आब।
सखी सब, बहिनपा सब निचारइ अहि ठाम।
सुनलइ रे बहिनी, नहिरा सासुर सबकोइ आब।
एहन मरद दानब दुनिया गे संसार।
एरइ चनमा के जब ठीठरा परइ हजाम;
से ठीठरा जब दौड़ल जाइ कोचिन ओइ ठाम।
सात गो जब रानी राजा तोरो रनबास।
एक गो रानी चननिया; हरदी नइ बाजार।
एकरो नइ गोरे सुरतिया, हेतइ आब।

७०

सलहेस

दुनिया घूमैइ हम एलियै,
घर पाछु अरबा मोरंग लागइ,
कनिको मोरंग जे बे करबइ,

मौरंग के माँझ में।
मोरंग राज माताजी चलि जैब,
तब माता सलहेस कहइछै यौ—
'सुन सुन सलहेस सुनिबे करिले,
मौरंग राज मति जइयो, बेटा !
जादू मोटरी मोरंग बसइ छइ;
सती मालिनिया मौरंग में बसइयै;
जाहि घड़ी मोरंग में जैब,
जादू मारि भेड़ा बनादेत,
गल्ला में तोरा डोरी लगा के,
बान्हत खुट्टा में !

७१

दीना-भद्री

तेसरि बेरि सलहेस कहलथिन्ह,
सत हमर ओ बात यार राखू।
तेसरि बेरि सत से फोटरा धैलक,
दीनाराम के देलक धरती में खँसाय।
दीनाराम के धरितहिं भद्रिक ठेहुनी केहुनी छुटि गेल।
मरल दुनु भाइ कटैया,
जाहि मुँहें धैलक फोटरा गीदर जेठ भाइ के,
ताहि मुँहें धरौ हमरा के।

७२

रन्नूसरदार

सोना कलस पर कमला मैया, हँसइ छइ बिकरार।
मैया, हँसइ छइ बिकरार; छप छप छप।
अस्सी मोन क हाथ कुदारी, बिजलौका सनक धार।
आगू आगू माँइट कोरइ छइ, रन्नू सरदार।
मैया हँसइ छइ बिकरार, जय जय कमला ! छप छप छप !
धौना करइ गंगा मैया मिला धार से धार।
दइए दहिन बहिना कमला; अप्पन कमल के हार।
दअ दे बहिन तिरहुतनी; रन्नू सरदार !

परिशिष्ट-२

ग्रंथ-सूची

परिशिष्ट—२

ग्रंथ-सूची

हिन्दी

१. कृष्णदेव उपाध्याय : भोजपुरी ग्राम गीत, पहला और दूसरा भाग-हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, सं० २०००

२. देवेन्द्र सत्यार्थी : बेला फूले आधीरात, राजहंस प्रकाशन, दिल्ली, सन् १९४८ ई०

३. देवेन्द्र सत्यार्थी : धरती गाती है, राज कमल प्रकाशन लि०, दिल्ली सन् १९४८ ई०

४ देवेन्द्र सत्यार्थी : धीरे बहो गंगा, " "

५. रामनरेश त्रिपाठी : कविता कौमुदी-ग्राम गीत, तीसरा भाग, नवनीत प्रकाशन, लिमिटेड, बम्बई ७, सन् १९५५ ई०

६. रामइकबाल सिंह 'राकेश' : मैथिली लोकगीत (द्वितीय संस्करण) हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, सन् १९५५ ई०

७. राम किशोरी श्रीवास्तव : हिन्दी - लोकगीत, साहित्य भवन, लिमिटेड, प्रथम बार, सन् १९४६ ई०

८. श्याम परमार : भारतीय लोक साहित्य, राज कमल प्रकाशन, दिल्ली, सन् १९५४ ई०

९. श्री कृष्णदास : लोकगीतों की सामाजिक व्याख्या, साहित्य भवन, लिमिटेड, इलाहाबाद, सन् १९५६ ई०
१०. श्री चन्द्र जैन : विन्ध्य प्रदेश के लोकगीत : करमा : राज्यपाल एण्ड सन्स, काश्मीरी गेट, दिल्ली, सन् १९५४ ई०
११. सत्येन्द्र : ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन, साहित्य रत्न भंडार, आगरा, प्रथम संस्करण, सन् १९४९ ई०
१२. सीता देवी : धूल धूसरित मणियाँ, नेशनलपब्लिशिंग हाउस, नयी सड़क, दिल्ली, सन् १९५६ ई०
१३. सूर्यकरण पारीक : राजस्थानी लोकगीत, हिन्दीसाहित्य सम्मेलन, प्रयाग, सन् १९४९ ई०
१४. रवीन्द्रनाथ ठाकुर : लोक-साहित्य (बंगला) विश्व भारती शान्ति निकेतन, सन् १९५२ ई० : प्रथम वार
१५. राहुल सांकृत्यान और कृष्णदेव उपाध्याय: हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, षोडशभाग, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, सं० २०१७ वि०।
१६. कृष्णदेव उपाध्याय: लोकसाहित्य की भूमिका, साहित्य भवन, इलाहाबाद १९५७।
१७. सत्येन्द्र : मध्ययुगीन हिन्दीसाहित्य का लोकतात्त्विक अध्ययन, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, १९६१।
१८. सत्येन्द्र : लोकसाहित्य-विज्ञान, शिवलाल अग्रवाल, एण्ड सन्स, आगरा १९६२

पत्र-पत्रिकाएँ

१. लोक संस्कृति : सम्मेलन पत्रिका विशेषांक : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, सं० २०१०
२. लोकगीत : परम्परा, (विशेषांक) चोपासनीशोध-संस्थान, जोधपुर, सं० २०१३
३. जनपद, खंड एक अंक १, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, सं० २००९
४. दक्षिण भारत : दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास, अप्रैल' ५४ जुलाई' ५४; मई' ५७; जुलाई' ५७

५. समाज : समाज विज्ञान परिषद् काशीविद्यापीठ, जुलाई' ५६, अक्टूबर' ५६, वाराणसी ।

६. राष्ट्रभारती : राष्ट्रभाषा - प्रचार-समिति, वर्धा, जुलाई' ५४

७. साहित्य सन्देश : साहित्य रत्नभण्डार, आगरा, अक्टूबर' ५२, जनवरी' ५५, ५६ ।

८. अवन्तिका : आर० ब्लॉक ६।७ पटना, जुलाई' ५४, मई ५६

९. मिथिला-मिहिर : मिथिलांक, १९३६ : (राज प्रेस, दरभंगा) बिहार,

अँगरेजी

1. Archer, W. C. : The Blue Groves, George Allen and Unwin, London, 1940.
2. Burne, C. S.: The Hand Book of Folklore, New Rev. enl. ed. Pub. of the Folklore Society, London, 1914.
3. Chatterjee, S. K.: Origin and Development of Bengali Language 2 Vols, 1927.
4. Chatterjee, S. K. : Varnaratnakar of Jyotirishwar Thakur, Royal Asiatic Society of Bengal Park Street, Culcutta, 1640.
5. Charchward Albert : Origin and Humen Race, George Allen and Unwins Ltd,. London, 1921.
6, Child, S. G. : English Scottish Popular Ballads, O. U. P. 1936.
7. Crooke, W. : Introduction to Popular Religion and Folk-lore of North India. A New Ed. Rev. Illas 2r. West Minister, 1896.
8. Satyarthi, Devendra, : Meet my people, Chetana Prakashan, Hyderabad, 1954.
9. Dubey, S, C. : Field songs of Chattish garh. The Universal Publishers Litd,. Lucknow, 1951.
10. Elwin, Varrier and Hivale : Folksongs of Maikal Hills, Oxford University Press, Madras, 1944.
11, Elwin, Varrier : Folk songs of Chattishgarh, Oxfort University Press, Madras, 1946.

12. Elwin Varrier : Myths of Middle India, Oxford University Press, Madras, 1943.

13. Fox, Strangway, A. H. :--Music of Hindustan, The clarendon Press, London, 1914.

14. Frazer, Sir J. C. : The Golden Bough. N. Y. Macmillan & Co. (Abridged ed,) 1953.

15. Grierson, Sir, G. *A.* : An Introduction to the Maithili Language of North Bihar part 1 & II. Asiatic Society, Culcutta, part 1 & II , 1882.

16. Grierson Sir, G, A. : Behari Folk Songs : Some Bhojpuri Folk songs. ed. & Tr. Hertford, 1887.

17, Grover, C. E. : Folk Songs of Southren India, Madras, 1871.

18. Gummere, F. B. : Popular Ballalds, London, Archibald Constable & Co., 1907.

19. Hutton, I. H. : A Primitive philosophy of life, Oxford, London, 1938.

20. Howard, W. Odum : Understanding Society, The Macmillan Co., New York, 1947.

21. Hoebel, E. Adamson : Man in the Primitive World, Megraw Hill Book Co., London, 1949.

22. Indian Antiquary, Journal : Asiatic Society, Culcutta (Snake Biter) 1882.

23. Kunj Bihari Das : A study of Orissan Folklore Vishwa Bharati Shanti Niketan, west Bengal, 1953.

24. Men in India—Vol. I No. I June, 1921.
Vol. I No. 3 Sept. 1921.

25. Martirengo, C. E. : Essays in the Study of Folk Songs, Every-Man's library—Dutton, 1914.

26. Morgan Lewis, H. : Ancient Society, Bharati library, 145 Cornwallis Street, Culcutta, 1947.

27. Melville, J. Herskovits : Man and His works, Alfred New-York, 1949.

28. Melinowski, B. : The Sexual life of savage, North West Melanesia, Routhledge & Sons Litd., London, 1939.
29. Melinowski, B : Magic, Science and Religion, Edited by Joseph Needhan, London, 1925.
30. Maria Leach : Standard Dictionary of Folklore, Vols 2, New York, 1949.
31. Mishra Jayakant : Introduction to the Folk literature of Mithila, Part I & II, Allahabad University, Allahabad 1950-51.
32. Ralph Linton : The Cultural Background of Personality, Keganpaul, Trench Trubnor & Co. Ltd. London, 1947.
33. Sen, D. C. : Folk literature of Bengal, University of Calcutta, 1920.
34. Sen, D. C. : Eastern Bengal Ballads Mymensingh (Vol. I & II) Calcutta University, 1220.
35. Sen, D. C. : Glimpses of Bangal life, Calcutta University, 1925.
36. Temple, R C. : The Legends of the Punjab, Bombay Educating Society Press & London, Tribuner & Co. 1884-85,
37, Thakur, Upendra : History of Mithila, Vol. I & II Mithila Research Institute, Darbhanga, Bihar, 1956.
38. Rivers, W.H.R. : Psychology and Ethnology, London, Kegan Paul, Trech, Tribener & Co, Ltd., 1926.
39. Sherreff, A.G. : Hindi Folk Songs; Blackwell, 1936.
40. Wells, H.G. : The Science of Life,Cassel & Co. London, 1931
41. Mitra, Sarat Chandra : (A select list).
    I. Bihari life in Bihari nursery rhyms, Calcutta, 1903.
    II. Santali life in Satali Folk Songs, Bombay, 1924.
    III. The Magical conflict in Santali, Bangali, and Naga Folklore, Ranchi, 1929.
    IV. The Dog bride in Santali and Lepcha Folklore, **Patna,** 1928.

42. Henry Frank Fort : Before Psychology.

43. Marett R. R. : Psychology and Folklore

44. Lewis Spence : The out lines of Mythology.

45. Franz Boas : The Mind of Primitive Man.

46. Brown, J. A C : The Evolution of Society-

47. Sylvia & John Kolb : A Treasury of Folk Songs, Bantom Book, New York, 1948

48. Cline Downes & Elie Siegmeister : A Treasury of American Folksongs, Albred A Knoff New York, 1943

49. Norman Lord Brand ford Boni M : Fire-Side book of Folk Songs, Simon & Shuster, New York, 1947